सरस्वती सीरीज़ संस्करण १९८५

प्रकाशक
हिन्द पॉकिट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड शाहदरा
दिल्ली ११००३२

SURANGAMA (Novel) by Shivani

सरस्वती सीरीज़ संस्करण १९८५

प्रकाशक
हिन्द पॉकिट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड शाहदरा
दिल्ली ११००३२

SURANGAMA (Novel) by Shivani

वर्नमेण्ट-हाउस चले गए हैं।"

मुझे पता नहीं मैं स्वयं ही उनसे मिलने आई हूं।"

सुरगमा का रूखा स्वर उन्हें और भी वाचाल बना गया।

'आई सी आई सी—आपको उनका पुराना परिचय है शायद!"

उनकी गिद्धदृष्टि में कुतूहल की सहस्र किरणें एकसाथ फूट उठीं। उस भद्र प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही सुरगमा फिर लॉन के सीमान्त पर लगे एक म वृक्ष की सुवृहत छाया में खड़ी हो गई। वहीं पर अर्द्ध वृत्ताकार घेरे में बैठी हाती महिलाओं की कई जोड़ी आंखें उसे बड़े विस्मय से घूरने लगीं। उनमें से क के हाथ में एक लम्बा-सा कागज था, लगता था वही उस दल का नेतृत्व कर ही है और अपनी कोई दरख्वास्त लेकर मन्त्रीजी से मिलने आई है। वह उस ीड़ से भी दूर छिटककर बरामदे की ओर बढ़ ही रही थी कि एक नाटा-सा यक्ति मिलने वालों की भीड़ में उसे ही ढूंढता उसकी ओर चला आ रहा था, क्षमा कीजिएगा आपको रुकना पड़ा। मैं मन्त्रीजी का पी० ए० हूं, बड़ी देर से ापको ढूंढ रहा था आप यहां क्यों खड़ी रह गईं? आइए आइए मंत्रीजी ापसे अन्दर के कमरे में ही मिलेंगे।"

वह बिना कुछ कहे उसके साथ-साथ चलने लगी। एक बार फिर दौड़कर घर ाग जाने की तीव्र इच्छा उसके अन्तर्मन को झकझोर उठी। क्यों आ गई थी वह हां? कैसी भीड़ थी, लग रहा था मिलने वालों की भीड़ निरन्तर बढ़ती ही जा ही है। देखते ही देखते कितनी ही रंग बिरंगी कारें वर्दीधारी पुलिस अफसर, हिलाएं बरामदा घेरकर खड़ी हो गई, कोई चादर ओढ़े निपट देहातिन कोई ालिन बुर्काधारिणी कोई ओठों को रंगे बटुआ झुलाती अधैर्य से खड़ी देख रही ी कोई झकाझक स्वच्छ बगुला के पंख-सी श्वेत साड़ी में समाज-सेवा का जीवन्त वज्ञापन बनी बड़े अन्तरंगतापूर्ण अधिकार से पी० ए० से पूछ रही थी 'अरे भई कब मिलेंगे दिनकर जी? कल तो फोन पर सुबह ही चले आने को कहा था न्होंने।"

कितनी खद्दर की तिरछी टोपियां थीं—कितने खद्दर के कुर्ते—पान से रंगी कितनी कुटिल बत्तीसियां।

पी० ए० उसे एक सुदीर्घ, टेढ़ी मेढ़ी सकरी गैलरी से ले जाता अनर्गल बोलता चला जा रहा था, असल में आज मंत्री जी का एकदम ही पैक्ड प्रोग्राम है दो-दो

वर्नमेण्ट-हाउस चले गए हैं !"

मुझे पता नहीं मैं स्वयं ही उनसे मिलने आई हूं।"

सुरंगमा का रूखा स्वर उन्हें और भी वाचाल बना गया।

'आई सी आई सी—आपको उनका पुराना परिचय है शायद !"

उनकी गिद्धदृष्टि में कुतूहल की सहस्र किरणें एकसाथ फूट उठीं। उस अभद्र प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही सुरंगमा फिर लॉन के सीमान्त पर लगे एक आम वृक्ष की सुवृहत छाया में खड़ी हो गई। वहीं पर अर्द्ध वृत्ताकार घेरे में बैठी हाती महिलाओं की कई जोड़ी आंखें उसे बड़े विस्मय से घूरने लगीं। उनमें से एक के हाथ में एक लम्बा-सा कागज था, लगता था यही उस दल का नेतृत्व कर रही है और अपनी कोई दरख्वास्त लेकर मन्त्रीजी से मिलने आई है। वह उस भीड़ से भी दूर छिटककर बरामदे की ओर बढ़ ही रही थी कि एक नाटा-सा व्यक्ति मिलने वालों की भीड़ में उसे ही ढूंढ़ता उसकी ओर चला आ रहा था, क्षमा कीजिएगा आपको रुकना पड़ा। मैं मन्त्रीजी का पी० ए० हूं, बड़ी देर से आपको ढूंढ रहा था आप यहां क्यों खड़ी रह गईं? आइए आइए मन्त्रीजी आपसे अन्दर के कमरे में ही मिलेंगे।"

वह बिना कुछ कहे उसके साथ-साथ चलने लगी। एक बार फिर दौड़कर घर भाग जाने की तीव्र इच्छा उसके अन्तर्मन को झकझोर उठी। क्यों आ गई थी वह यहां? कैसी भीड़ थी, लग रहा था मिलने वालों की भीड़ निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। देखते ही देखते कितनी ही रंग बिरंगी कारें वर्दीधारी पुलिस अफसर, महिलाएं बरामदा घेरकर खड़ी हो गइं, कोई चादर ओढ़े निपट देहातिन कोई मलिन बुर्काधारिणी कोई ओठों को रंगे बटुआ झुलाती अधैर्य से घड़ी देख रही थी कोई झकाझक स्वच्छ बगुला के पंख-सी श्वेत साड़ी में समाज-सेवा का जीवन्त विज्ञापन बनी बड़े अन्तरंगतापूर्ण अधिकार से पी० ए० से पूछ रही थी 'अरे भई कब मिलेंगे दिनकर जी? कल तो फोन पर सुबह ही चले आने को कहा था उन्होंने।"

कितनी खद्दर की तिरछी टोपियां थीं—कितने खद्दर के कुर्ते—पान से रंगी कितनी कुटिल बत्तीसियां।

पी० ए० उसे एक सुदीर्घ, टेढ़ी मेढ़ी सकरी गैलरी से ले जाता अनर्गल बोलता चला जा रहा था, असल में आज मन्त्री जी का एकदम ही पैक्ड प्रोग्राम है दो-दो

गई है ! उसका कलेजा काप उठा, यह तेज नरपुगव का था या नरभक्षी का !

'जी मेरे पिता पहाड़ी हैं मा बगाली थी," कहने के साथ ही उसकी दोनों हथेलिया पसीने से तर हो गई। एक माह पूर्व यह प्रश्न पूछा जाता तो उत्तर यह नही होता मा के लिए तब वह क्या भूतकाल का प्रयोग करती ? किन्तु मा होती तो वह इस अवाछित इण्टरव्यू के लिए यहा आती ही क्यो ?

ओह तब ही यही मैं सोच रहा था, मैं बगाल मे बहुत रहा हू, मिस जोशी ! यह नाम और कोई रख ही नही सकता। कभी बुद्धदेव बसु मेरे भी प्रिय कवि थे। इस कविता की पक्तिया मुझ भी बहुत प्रिय थी

छोट्टो घर खानी
मने की पड़े सुरगमा ?
मने की पडे मने की पड़े ?
जानालाय नील आकाश झरे
सारा दिन रात हावाय झड़े
सागर दाला

(उस छोटे-से कमरे की याद है सुरगमा ?
बोलो, क्या अब कभी उस कमरे की याद आती है ?
जहा की खिड़की से नीलाकाश
बरसता कमरे मे रँग आता था
सारे दिन रात तूफान
समुद्र झकझोर जाता था।)

वही गुनगुनाहट फिर एक बार उसकी बहुरूपिया हसी मे खो गई ! कसे स्निग्ध स्नेही स्मित का आह्वान था इस बार ! सुरगमा का सारा भय दूर हो गया उस भोले निष्कपट शिशु की-सी हसी ने उसकी सारी घबराहट दूर कर दी।

'आप जा सकती हैं मिस जोशी, आपका नाम ही आपका परिचय दे गया है। आप निश्चय ही मेरी पुत्री की सुयोग्य शिक्षिका सिद्ध होगी। मैं बहुत व्यस्त रहता हू। आपने तो देख ही लिया होगा। बाहर कैसी भीड लगी है। नित्य यही मेला लगा रहता है, यही भीड। मेरे शुष्क जीवन को साहित्य बहुत पहले ही छोड चुका है। आप जाए मिस जोशी मेरे पी० ए० आपको मेरी पुत्री से मिला देंगे।

गई है ! उसका कलेजा काप उठा, यह तेज नरपुगव का था या नरभक्षी का !

'जी मेरे पिता पहाडी हैं मा बगाली थी," कहने के साथ ही उसकी दोनो हथेलिया पसीने से तर हो गईं। एक माह पूर्व यह प्रश्न पूछा जाता तो उत्तर यह नही होता मा के लिए तब वह क्या भूतकाल का प्रयोग करती ? किन्तु मा होती तो वह इस अवाछित इण्टरव्यू के लिए यहा आती ही क्यो ?

ओह तब ही यही मैं सोच रहा था, मैं बगाल मे बहुत रहा हू, मिस जोशी ! यह नाम और कोई रख ही नही सकता। कभी बुद्धदेव बसु मेरे भी प्रिय कवि थे। इस कविता की पक्तिया मुझे भी बहुत प्रिय थी

छोट्टो घर खानी
मने की पड़े सुरगमा ?
मने की पडे मने की पड़े ?
जानालाय नील आकाश झरे
सारा दिन रात हावाय झड़े
सागर दाला

(उस छोटे-से कमरे की याद है सुरगमा ?
बोलो, क्या अब कभी उस कमरे की याद आती है ?
जहा की खिड़की से नीलाकाश
बरसता कमरे मे रँग आता था
सारे दिन रात तूफान
समुद्र झकझोर जाता था।)

वही गुनगुनाहट फिर एक बार उसकी बहुरूपिया हसी मे खो गई ! कैसे स्निग्ध स्नेही स्मित का आह्वान था इस बार ! सुरगमा का सारा भय दूर हो गया उस भोले निष्कपट शिशु की-सी हसी ने उसकी सारी घबराहट दूर कर दी।

'आप जा सकती हैं मिस जोशी, आपका नाम ही आपका परिचय दे गया है। आप निश्चय ही मेरी पुत्री की सुयोग्य शिक्षिका सिद्ध होगी। मैं बहुत व्यस्त रहता हू। आपने तो देख ही लिया होगा। बाहर कैसी भीड लगी है। नित्य यही मेला लगा रहता है, यही भीड। मेरे शुष्क जीवन को साहित्य बहुत पहले ही छोड चुका है। आप जाए मिस जोशी मेरे पी० ए० आपको मेरी पुत्री से मिला देंगे।

"जी हा।"

'कौन कौन-से विषय पढना चाहोगी मुझसे ?" सुरगमा की बुद्धिदीप्त प्रखर दृष्टि मे तैर रहा गहन आत्मविश्वास सामने बैठी उसकी भावी शिष्या को सतर बना गया। भावी कठोर अनुशासन के चाबुक की झसक जैसे उसने हवा में लहराती देख ली थी।

"फिजियस, कैमिस्ट्री, ऐंड मैथ्स।"

"ठीक है, मैं परसों से तुम्हें पढाने आऊगी शाम को ६ बजे। इज दैट आल राइट ?"

'जी ६ बजे तो मैं रेलवे क्लब में तैरना सीखने जाती हू।" सुखद सध्या मे किशोर मित्रो के साहचय का सम्भावित विछोह उसके स्वर को रुआसा बना गया।

आप सुबह नही आ सकतीं मिस, या फिर चार बजे ?'

'नहीं' स्वर मे घन की-सी दृढ खनक थी। उस नही का अथ था केवल नही।

"मैं बैंक मे नौकरी करती हू। पाच बजे से पहले कही आ-जा नहीं सकती। इफ इट सूटस यू वेल एण्ड गुड नहीं तो अपने पिता जी से मेरी ओर से क्षमा माग देना।"

वह फिर एक क्षण भी बि नपनी नवीन छात्रा की ओर देखे, पदा ाकर बाहर चली गई थी। मिनी क. खून खौल उठा। ह्वाट चीक ! किससे कैसे बात की जाती हैं, यह भी नही जानती क्या !

जिस मिनी को सचिव मुख्य मचिवों की पत्निया पान के पत्ते-सा फेरती थी उसके *कैशोय को पीछे ठेल समवयसिनी के रूप म स्वीकार कर* उसे अपनी गोष्ठियो में आमन्त्रित करती थीं यहा तक कि विदेशिनी नन्स भी जिसके पिता के पद की महत्ता को स्वीकार कर उसके अबाध्य आचरण को देखकर अनदेखा कर देती, उसीको यह दो कौडी की मास्टरनी अपनी उन्नत नासिका हवा मे उठाती बिना हाथ जोडे ही चली गई। नही पढेगी वह इस अहकारी लड्की स। लडकी ही तो लग रही थी वह। न जाने किस हिन्दी-स्कूल की पढी होगी एस० सी० का मैथ्स पढाएगी तो पहले ही दिन चक्करघिन्नी खाकर गिर पडेगी। शक्ल-सूरत की अच्छी है तो क्या हुआ। अध्यापिका बनने क्यों आ गई ? फिल्म इन्स्टीटयूट

"जी हा !"

'कौन कौन-से विषय पढना चाहोगी मुझसे ?" सुरगमा की बुद्धिदीप्त प्रखर दृष्टि मे तैर रहा गहन आत्मविश्वास सामने बैठी उसकी भावी शिष्या को सतर बना गया। भावी कठोर अनुशासन के चाबुक की झसक जैसे उसने हवा में लहराती देख ली थी।

"फिजिक्स, कैमिस्ट्री, ऐंड मैथ्स।"

"ठीक है, मैं परसों से तुम्हें पढाने आऊगी शाम को ६ बजे। इज दैट आल राइट ?"

'जी ६ बजे तो मैं रेलवे क्लब में तैरना सीखने जाती हू।" सुखद सध्या मे किशोर मित्रो के साहचय का सम्भावित विछोह उसके स्वर को रुआसा बना गया।

आप सुबह नही आ सकतीं मिस, या फिर चार बजे ?'

'नही' स्वर मे घन की-सी दृढ खनक थी। उस नही का अथ था केवल नही।

"मैं बैंक मे नौकरी करती हू। पाच बजे से पहले कही आ-जा नहीं सकती। इफ इट सूटस यू वेल एण्ड गुड न्हीं तो अपने पिता जी से मेरी ओर से क्षमा माग देना।"

वह फिर एक क्षण भी दि नपनी नवीन छात्रा की ओर देखे, पदा ाकर बाहर चली गई थी। मिनी क. खून खौल उठा। ह्वाट चीक ! किससे कैसे बात की जाती हैं, यह भी नही जानती क्या !

जिस मिनी को सचिव मुख्य सचिवों की पत्निया पान के पत्ते-सा फेरती थी उसके कैशोय को पीछे ठेल समवयसिनी के रूप म स्वीकार कर उसे अपनी गोष्ठियो में आमन्त्रित करती थीं यहा तक कि विदेशिनी न स भी जिसके पिता के पद की महत्ता को स्वीकार कर उसके अबाध्य आचरण को देखकर अनदेखा कर देती, उसीको यह दो कौडी की मास्टरनी अपनी उन्नत नासिका हवा मे उठाती बिना हाथ जोडे ही चली गई। नही पढेगी वह इस अहकारी लडकी स। लडकी ही तो लग रही थी वह। न जाने किस हिन्दी-स्कूल की पढी होगी एस० सी० का मैथ्स पढाएगी तो पहले ही दिन चक्करघिन्नी खाकर गिर पडेगी। शक्ल-सूरत भी अच्छी है तो क्या हुआ। अध्यापिका बनने क्यों आ गई ? फिल्म इन्स्टीटयूट

अरजी देकर वह भागी भागी अपनी सहपाठिनी मीरा के घर गई थी। मीरा के पिता मेडिकल कालेज मे रीडर थे, *उन्होंने सुरगमा को उसकी मा का मत्यु-दण्ड* सुनाया था। हड्डियो की मज्जा मे भी ल्युकोमिया का विष फैल चुका था। सारकोमा मे रोगी के जीवन की आशा करना व्यर्थ है बेटी, वसे कानपुर या बम्बई ले जाकर देख लो।" मा के कॉलेज की सहृदय अध्यापिकाओं ने उसे एकान्त मे बहुत समझाया था। मा की प्रिन्सिपल भी बगाली थी उन्होंने उसे फण्ड का रुपया भी दिलवा दिया था किन्तु फिर भी मा के उस राजरोग की दामी चिकित्सा उसके लिए असम्भव हो उठी थी। नित्य तीसरे-चौथे दिन रक्त चढ़ाया जाता, किन्तु नियति उसम किसी कुटिल ग्वाले की ही भांति फिर पानी मिला देती। स्वय राजलक्ष्मी भी अपने असाध्य रोग की विषम स्थिति जान गई थी। सुरगमा जब मां को लेकर कलक्त्ता गई तब उसके मन में एक क्षीण आशा और भी थी। कभी कलकत्ते के पास ही उसके नाना का बहुत बड़ा कारोबार था, आज तक कठिन से कठिन विपत्ति आने पर भी मा ने कभी वर्षों पूव छूट गए पितगह के प्रति कोई ममता नहीं दिखाई थी। क्या पता, इस बार मा उसे नाना का पता देकर मिलने भेज ही दे। किन्तु राजलक्ष्मी अपने पिता के कठोर स्वभाव को खूब पहचानती थी। उनकी दृष्टि मे उसका अपराध अक्षम्य था, वैभव मे लालिता राजलक्ष्मी जब पिता के कठोर अनुशासन की धज्जियां उड़ाकर अपने म्यूज़िक टयूटर क साथ भागी थी तब उसकी वयस थी केवल सत्रह वष। कानून की दृष्टि मे वह नाबालिग थी। राजा प्रबोधरजन रायचौधरी ने अपनी उस इकलौती पुत्री को ढूढने म पैसा पानी की तरह बहा दिया था। किन्तु गोविन्दपुरवा के जिस अज्ञातप्राय ग्राम मे गजानन जोशी, उनके लाडों की पत्नी राजलक्ष्मी को लेकर अपना हनीमून मना रहा था, वहा राजा प्रबोधरजन के लाख-लाख सिपाही भी उसे नही ढूढ सकते थे। कैसा विचित्र रहा होगा मा का जीवन! कभी-कभी सुरगमा को मा का रहस्यमय अतीत अन्यमनस्का बना जाता। कहा फ्रेंच गवर्नेस मदाम क्रिस्टीन का अनुशासन, पिता के मोनोग्राम अकित कटलरी में साहबी छोटा हाजरी बीसियो दास दासिया, चार चार घोड़ाजुती वह फिटन जिसे उसके नाना न कलकत्ते की बडी गौहरजान से खरीदा था। जब वह छोटी थी, तब कभी-कभी रग मे आने पर मा उसे अपने शैशव के विलास-वैभव की कहानियां सुनाती जैसे दूसरी ही मा बन उठती। वह फिर लखनऊ के गर्ल्स कॉलेज की अध्यापिका

अरजी देकर वह भागी भागी अपनी सहपाठिनी मीरा के घर गई थी। मीरा के पिता मेडिकल कालज मे रीडर थे, उन्होंने सुरगमा को उसकी मा का मत्यु-दण्ड सुनाया था। हड्डियो की मज्जा मे भी ल्युकोमिया का विष फैल चुका था। सारकोमा मे रोगी के जीवन की आशा करना व्यर्थ है बेटी, वसे कानपुर या बम्बई ले जाकर देख लो।" मा के कॉलेज की सहृदय अध्यापिकाओं ने उसे एकान्त मे बहुत समझाया था। मा की प्रिन्सिपल भी बगाली थी उन्होंने उसे फण्ड का रुपया भी दिलवा दिया था किन्तु फिर भी मा के उस राजरोग की दामी चिकित्सा उसके लिए असम्भव हो उठी थी। नित्य तीसरे-चौथे दिन रक्त चढ़ाया जाता, किन्तु नियति उसम किसी कुटिल ग्वाले की ही भाति फिर पानी मिला देती। स्वय राजलक्ष्मी भी अपने असाध्य रोग की विषम स्थिति जान गई थी। सुरगमा जब मां को लेकर कलकत्ता गई तब उसके मन में एक क्षीण आशा और भी थी। कभी कलकत्ते के पास ही उसके नाना का बहुत बडा कारोबार था, आज तक कठिन से कठिन विपत्ति आने पर भी मा ने कभी वर्षों पूव छूट गए पितगह के प्रति कोई ममता नहीं दिखाई थी। क्या पता, इस बार मा उसे नाना का पता देकर मिलने भेज ही दे। किन्तु राजलक्ष्मी अपने पिता के कठोर स्वभाव को खूब पहचानती थी। उनकी दृष्टि मे उसका अपराध अक्षम्य था, वैभव मे लालिता राजलक्ष्मी जब पिता के कठोर अनुशासन की धज्जिया उडाकर अपने म्यूजिक ट्यूटर क साथ भागी थी तब उसकी वयस थी केवल सत्रह वप। कानून की दृष्टि मे वह नाबालिग थी। राजा प्रबोधरजन रायचौधरी ने अपनी उस इकलौती पुत्री को ढूढने म पैसा पानी की तरह बहा दिया था। किन्तु गोविन्दपुरवा के जिस अज्ञातप्राय ग्राम मे गजानन जोशी, उनके लाडों की पली राजलक्ष्मी को लेकर अपना हनीमून मना रहा था, वहा राजा प्रबोधरजन के लाख-लाख सिपाही भी उसे नही ढूढ सकते थे। कैसा विचित्र रहा होगा मा का जीवन! कभी-कभी सुरगमा को मा का रहस्यमय अतीत अन्यमनस्का बना जाता। कहा फ्रेंच गवर्नेस मदाम क्रिस्टीन का अनुशासन, पिता के मोनोग्राम अकित कटलरी में साहबी छोटा हाजरी बीसियो दास दासिया, चार चार घोडाजुती वह फिटन जिसे उसके नाना न कलकत्ते की बडी गौहरजान से खरीदा था। जब वह छोटी थी, तब कभी-कभी रग मे आने पर मा उसे अपने शैशव के विलास-वैभव की कहानियां सुनाती जैसे दूसरी ही मा बन उठती। वह फिर लखनऊ के गर्ल्स कॉलेज की अध्यापिका

तक स्कूल के अस्वस्थ हेडमास्टर का कार्यभार भी उन्हें सम्भालना होगा।

कुछ ही दिनों में गजानन जोशी ने अपने रहन-सहन और आचार-व्यवहार से ग्रामवासियों को प्रभावित कर लिया। साफ-सुथरा रेशमी कुर्ता, चुन्नटदार धोती अनामिका में सोने की अंगूठी खुले सुवर्ण बटनों से झांकती यज्ञोपवीत की डोरी। मन्दिर में लगे मकड़ी के जालों को झाड़झूड़ वर्षों से मलिन शिवलिंग को सोडा से साफकर गजानन ने चमका दिया, फिर प्रातःकाल जोर-जोर से शिवस्तोत्र की आवृत्ति कर उसने कुछ ही दिनों में उस विस्मृत मन्दिर की महिमा का ऐसा प्रचार आरम्भ किया कि उसी गांव के नहीं दूर-दूर के गांवों से भी दर्शनार्थी आकर चढ़ावा चढ़ाने लगे। प्रत्येक शिवरात्रि को, वहां अब बड़ी धूम से मेला लगने लगा। कुछ ही महीनों में राजलक्ष्मी को अपने जीवन की सांघातिक भूल का आभास हो गया था। जिस व्यक्ति के चिकने चेहरे और सुकण्ठ के माधुर्य पर रीझ कर वह पिता का राजसी वैभव त्याग आई थी, उसकी मरीचिका के व्यर्थ अस्तित्व को उसका नैकट्य कुछ ही दिनों में स्पष्ट कर गया। दूसरे ही महीने उसका नवीन सहचर उसके श्याम वर्ण को लेकर जो प्रच्छन्न व्यंग्य कर गया था, उससे राजलक्ष्मी का कोमल चित्त बुरी तरह आहत हो गया था।

'तुम तो कहते थे पहाड़ में तुम्हारे पिता के कुल का बहुत बड़ा व्यवसाय है। इस सड़े से गांव में मेरा बिलकुल मन नहीं लगता। कहीं क्यों नहीं ले चलते मुझे? अपनी सेवा से मैं उन्हें प्रसन्न कर लूंगी।'

और क्या अपने व्यवहार से तुम उन्हें भले ही प्रसन्न कर लो, तुम्हारा रंग उन्हें कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। पहाड़ की तो डोमनियां भी गोरी होती हैं।"

राजलक्ष्मी सिर से पैर तक सुलग गई थी। क्या यह वही गजानन था, जिसने उसके पितृगृह के राजसी एकान्त कक्ष में उसके पैर पकड़कर कहा था—मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं जी सकता। राजलक्ष्मी, ऐसे छुपछिपकर आखिर हम कब तक मिल पाएंगे? फिर तुम्हारी उस फिरंगी मेम की तो पीठ में भी आंखें हैं। कैसी बाघिनी-सी चक्कर लगाती रहती है। परसों राजा साहब बघमान जा रहे हैं तुम्हारी बुढ़िया मेम भी अस्पताल में बीमार पड़ी है। इससे अच्छा अवसर फिर हमें कभी नहीं मिलेगा। मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है लिलुवा में मेरा एक मित्र है उसने अपनी कार देने का वायदा किया है। परसों रात को

तब स्कूल के अस्वस्थ हेडमास्टर का कार्यभार भी उन्हें ग्रम्भालना होगा।

कुछ ही दिनों में गजानन जोशी ने अपने रहन-सहन और आचार-व्यवहार से ग्रामवासियों को प्रभावित कर लिया। साफ-सुथरा रेशमी कुर्ता, चुन्नटदार धोती अनामिका में सोने की अंगूठी, धुले सुघड़ बटनों से झांकती यज्ञोपवीत की डोरी। मन्दिर में लगे मकड़ी के जालों को झाड़झूड़ बर्षों से मलिन शिवलिंग को सोडा से साफकर गजानन ने चमका दिया, फिर प्रातः काल ज़ोर-ज़ोर से शिवस्तोत्र की आवृत्ति कर उसने कुछ ही दिनों में उस विस्मृत मन्दिर की महिमा का ऐसा प्रचार आरम्भ किया कि उसी गांव के नहीं दूर-दूर के गांवों से भी दर्शनार्थी आकर चढ़ावा चढ़ाने लगे। प्रत्येक शिवरात्रि को, वहां अब बड़ी धूम से मेला लगने लगा। कुछ ही महीनों में राजलक्ष्मी को अपने जीवन की सांघातिक भूल का आभास हो गया था। जिस व्यक्ति के चिकने चेहरे और सुगठ के माधुर्य पर रीझ कर वह पिता का राजसी वैभव त्याग आई थी, उसकी मरीचिका के व्यय अस्तित्व को उसका नैकट्य कुछ ही दिनों में स्पष्ट कर गया। दूसरे ही महीने उसका नवीन सहचर उसके श्याम वर्ण को लेकर जो प्रच्छन्न व्यंग्य कर गया था, उससे राजलक्ष्मी का कोमल चित्त बुरी तरह आहत हो गया था।

'तुम तो बहुत ये पहाड़ में तुम्हारे पिता के ठन का बहुत बड़ा व्यवसाय है। इस सड़े से गांव में मेरा बिलकुल मन नहीं लगता। वहीं क्यों नहीं ले चलते मुझे? अपनी सेवा से मैं उन्हें प्रसन्न कर लूंगी।'

और क्या अपने व्यवहार से तुम उन्हें भले ही प्रसन्न कर लो, तुम्हारा रंग उन्हें कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। पहाड़ की तो डोमनियां भी गोरी होती हैं।"

राजलक्ष्मी सिर से पैर तक सुलग गई थी। क्या यह वही गजानन था, जिसने उसके पितृगृह के राजसी एकान्त कक्ष में उसके पैर पकड़कर कहा था—

मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं जी सकता। राजलक्ष्मी, ऐसे लुकछिपकर आखिर हम कब तक मिल पाएंगे? फिर तुम्हारी उस फिरंगी मेम की तो पीठ में भी आंखें हैं। कैसी बाघिनी-सी चक्कर लगाती रहती है। परसों राजा साहब बघगान जा रहे हैं तुम्हारी बुढ़िया मेम भी अस्पताल में बीमार पड़ी है। इससे अच्छा अवसर फिर हमें कभी नहीं मिलेगा। मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है लिलुवा में मेरा एक मित्र है उसने अपनी कार देने का वायदा किया है। परसों रात को

मडराती रहती। किन्तु पति के साथ आई इस नवीन दुर्गन्ध से उसे उबकाई सी आने लगती। पहले पहल वह पीकर आता तो चुपचाप सिर झुकाए चूल्हे के पास ठण्डा खाना खा मुह ढाप-ढूपकर सो जाता। क्रोध में उफनती लक्ष्मी कच्ची दीवार की ओर मुह फेर बडी देर तक नि शब्द सिसकती रहती। पर मन्दिर के चढावे की समृद्धि के साथ-साथ धीरे-धीरे गजानन का दु साहस भी बडी निलज्जता से बढता चला गया था। अब वह रात-आधी-रात को लौटता तो कभी अनर्गल बकता, कभी थाली पटक लक्ष्मी पर अकारण ही बरसने लगता। 'दिन भर पडी पडी खटिया तोडती है यह भी नही कि दिन भर हाड-तोड मेहनत कर आए मालिक को ढग से रोटी बनाकर ही दे दे। यह भी कोई खाना है ? तेरे बाप के यहा ऐसा ही खाना खाया जाता होगा—क्या ? मैं पूछता हू, पराठे बनाने मे क्या तेरे बाप का घी खच होता है ? कल ही तो गुरुसरन चौथाई टिन देसी घी का पहुचा गया है।"

सहमी-सी लक्ष्मी, एक कोने मे दुबक जाती। दूसरे दिन पराठे बनाकर रखती तो वह फिर थाली दूर पटक देता "मैं पूछता हू, यह रोज रोज पूरी-पराठे खिला-कर क्या मेरा लिवर चौपट करेगी ? जानती नहीं मेरा लिवर कमजोर है ? अपना तो रोज पूडी-पराठे खाकर मुटा रही है साली।"

कभी-कभी लक्ष्मी उसकी हिन्दी मे दी गई गालियों को समझ भी नही पाती। गजानन वर्षों बगाल मे रहा था इसीसे उसकी बँगला में एक सहज स्वाभाविकता थी किन्तु इधर उसे चिढाने वह जानबूझ कर ही हिन्दी बोलने लगा था। जिस नैन-नक्श की उसकी गौहरमासी लाख-लाख बलैया लेती थीं उसीकी दिन रात खिल्ली उडा-उडाकर उसने लक्ष्मी को ऐसी हीनभावना से ग्रस्त कर दिया था कि वह घण्टो उस रत्नखचित दपण में अपना चेहरा देखती रहती। क्या वह सचमुच ही इतनी कुत्सित है ? उसकी उज्ज्वल बडी-बड़ी आँखों की करुण तरल चाहनी ने उन्हें और भी बडी बना दिया था रक्ताल्पता की विवणता उसके चेहरे को सावला होने पर भी गेहुआ बना गई थी। शरीर पहले की अपेक्षा कृश हो गया था, किन्तु आखो मे विद्रोह की ज्वलन्त दृष्टि दिन-प्रतिदिन उग्रतर होती चली गई थी। धीरे धीरे एक ही-सी नीरस दिनचर्या में लक्ष्मी का एक वष बीत गया था। रात को असमय लौटे पति की अनिश्चित, अस्थिर डगमगाती पदचाप सुन,

मडराती रहती। किन्तु पति के साथ आई इस नवी दुर्गन्ध से उसे उबकाई सी आने लगती। पहले पहल वह पीकर आता तो चुपचाप सिर झुकाए चूल्हे के पास ठण्डा खाना खा मुह ढाप-ढूपकर सो जाता। क्रोध में उफनती लक्ष्मी कच्ची दीवार की ओर मुह फेर बडी देर तक नि शब्द सिसकती रहती। पर मन्दिर के चढावे की समृद्धि के साथ-साथ धीरे-धीरे गजानन का दु साहस भी बडी निलज्जता से बढता चला गया था। अब वह रात-आधी रात को लौटता तो कभी अनगल बकता, कभी थाली पटक लक्ष्मी पर अकारण ही बरसने लगता। 'दिन भर पडी पडी खटिया तोडती है यह भी नही कि दिन भर हाड-तोड मेहनत कर आए मालिक को ढग से रोटी बनाकर ही दे दे। यह भी कोई खाना है ? तेरे बाप के यहा ऐसा ही खाना खाया जाता होगा—क्या ? मैं पूछता हू, पराठे बनाने मे क्या तेरे बाप का घी खर्च होता है ? कल ही तो गुरुसरन चौथाई टिन देसी घी का पहुचा गया है।"

सहमी-सी लक्ष्मी, एक कोने मे दुबक जाती। दूसरे दिन पराठे बनाकर रखती तो वह फिर थाली दूर पटक देता "मैं पूछता हू, यह रोज रोज पूरी-पराठे खिला-कर क्या मेरा लिवर चौपट करेगी ? जानती नहीं मेरा लिवर कमजोर है ? अपना तो रोज पूडी-पराठे खाकर मुटा रही है साली।"

कभी-कभी लक्ष्मी उसकी हिन्दी मे दी गई गालियों को समझ भी नही पाती। गजानन वर्षों बगाल मे रहा था इसीसे उसकी बँगला में एक सहज स्वाभाविकता थी किन्तु इधर उसे चिढाने वह जानबूझ कर ही हिन्दी बोलने लगा था। जिस नैन-नक्श की उसकी गौहरमासी लाख-लाख बलैया लेती थीं उसीकी दिन रात खिल्ली उडा-उडाकर उसने लक्ष्मी को ऐसी हीनभावना से ग्रस्त कर दिया था कि वह घण्टो उस रत्नखचित दपण में अपना चेहरा देखती रहती। क्या वह सचमुच ही इतनी कुत्सित है ? उसकी उज्ज्वल बडी-बड़ी आँखों की करुण तरल चाहनी ने उन्हें और भी बडी बना दिया था रक्ताल्पता की विवणता उसके चेहरे को सावला होने पर भी गेहुआ बना गई थी। शरीर पहले की अपेक्षा कृश हो गया था, किन्तु आखो मे विद्रोह की ज्वलन्त दृष्टि दिन-प्रतिदिन उग्रतर होती चली गई थी। धीरे धीरे एक ही-सी नीरस दिनचर्या में लक्ष्मी का एक वर्ष बीत गया था। रात को असमय लौटे पति की अनिश्चित, अस्थिर डगमगाती पदचाप सुन,

जन्मजात माधुर्य और चौपाइयों का स्वाभाविक मधु! हारमोनियम मे आलाप लेकर, गजानन प्रत्येक चौपाई, दोहा, सोरठा, कवित्त को नित्य नवीन राग रागिनियो के पक्के लुभावन रस मे निचोडकर फैला देता—कभी माड, कभी दरबारी और कभी कामाद-केदार—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना
भरि आए जल राजिव नयना

चौपाई के ममस्पर्शी भावो को अभिनय-कला मे पटु जोशी पण्डित रामनामी चादर से आखें पोछ और भी सजीव बना देत। रामायण पाठ समाप्त होता तो, आखो से रामायण लगा, अधमुदे पक्ष्मो की चिलमन से वह देखत रहते कि कितना चढावा चढा है। बडी देर तक श्रद्धालु श्रोता पैर छू-छूकर बिना उनकी ओर पीठ *किए ही पीछे सरकते जाते जैसे किसी देवालय मे प्रतिष्ठित देवमूर्ति को माल्यार्पण* कर लौट रहे हो। बडी देर बाद, ध्यानमग्न बगुल की-सी ही फुर्ती से वह दक्षिणा बटोरते और प्रसाद बाट-बूट घर की ओर चल देते।

मगलवार को लक्ष्मी फिर चूल्हा नही जलाती। चिवडा, गट्टा, केले, फूट, आम, बताशे इलायची दाने और कभी-कभी तो गन्ने के रस की खीर भी चढावे मे आ जाती। वह आज तक कभी पति का रामायण-पाठ सुनने नही गई थी। एक तो ग्राम की स्त्रिया जब भी उसे देखती फुसफुसाकर न जाने आपस मे क्या-क्या *कहने लगती। उसके पलायन की रहस्य-चादर ग्रामवासियो ने स्वय ही फाड* डाली थी। उसका श्यामवर्ण हरिणी की-सी भयत्रस्त चकित दृष्टि, हिन्दी का अटपटा उच्चारण देख, वे समझ गए थे कि वह बगाली है और जोशीजी उसे किसी सम्भ्रान्त परिवार से तिडी कर लाए हैं।

ग्राम के दक्षिण की ओर एक छोटा-सा तालाब था, था तो छोटा, पर उसकी नीलाभ गहराई घातक थी। बहुत पहले उसमे गाव के ठाकुर का लडका तैरने मे डूबकर मर गया था। तब से वहा कोई तैरता नही था। ग्रामवासी वहा सिघाडे की बेल फैला दिया करते थे उसी बेल के विस्तृत अस्तित्व से सहम, अब ग्राम के दु साहसी तैराको ने भी वहा तैरना छोड दिया था। सन्ध्या घनाममान होते ही, लक्ष्मी कन्धे पर तौलिया डाल नित्य तैरने चली जाती है और घण्टे मछली-सी तैरती रहती है। यह एक दिन किसीने गजानन से कह दिया तो घर लौटते ही, उसने लक्ष्मी को मारते मारते बेदम कर दिया था।

ज"मजात माधुर्य और चौपाइयो का स्वाभाविक मधु ! हारमोनियम मे आलाप लेकर, गजानन प्रत्येक चौपाई, दोहा, सोरठा, कवित्त को नित्य नवीन राग रागिनियो के पक्के लुभावन रग मे निचोडकर फैला देता—कभी माड, कभी दरबारी और कभी कामाद-केदार—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना
भरि आए जल राजिव नयना

चौपाई के ममस्पर्शी भावो को अभिनय-कला मे पटु जोशी पण्डित रामनामी चादर से आखें पोछ और भी सजीव बना देत। रामायण पाठ समाप्त होता तो, आखो से रामायण लगा, अधमुदे पक्ष्मो की चिलमन से वह देखत रहते कि कितना चढावा चढा है। बडी देर तक श्रद्धालु श्रोता पैर छू-छूकर बिना उनकी ओर पीठ किए ही पीछे सरकते जाते जैसे किसी देवालय मे प्रतिष्ठित देवमूर्ति को माल्यार्पण कर लौट रहे हो। बडी दर बाद, ध्यानमग्न बगुल की-सी ही फुर्ती से वह दक्षिणा बटोरते और प्रसाद बाट-बूट घर की ओर चल देते।

मगलवार को लक्ष्मी फिर चूल्हा नही जलाती। चिवडा, गट्टा, केले, फूट, आम, बताशे इलायची दाने और कभी-कभी तो गन्ने के रस की खीर भी चढावे मे आ जाती। वह आज तक कभी पति का रामायण-पाठ सुनने नही गई थी। एक तो ग्राम की स्त्रिया जब भी उसे देखती फुसफुसाकर न जाने आपस मे क्या-क्या कहने लगती। उसके पलायन की रहस्य-चादर ग्रामवासियो ने स्वय ही फाड डाली थी। उसका श्यामवण हरिणी की-सी भयत्रस्त चकित दृष्टि, हिन्दी का अटपटा उच्चारण देख, वे समझ गए थे कि वह बगाली है और जोशीजी उसे किसी सम्भ्रान्त परिवार से तिड़ी कर लाए हैं।

ग्राम के दक्षिण की ओर एक छोटा-सा तालाब था, था तो छोटा, पर उसकी नीलाभ गहराई घातक थी। बहुत पहले उसम गाव के ठाकुर का लडका तैरने मे डूबकर मर गया था। तब से वहा कोई तैरता नही था। ग्रामवासी वहा सिंघाडे की बेल फैला दिया करते थे उसी बेल के विस्तृत अस्तित्व से सहम, अब ग्राम के दु साहसी तैराको ने भी वहा तैरना छोड दिया था। सन्ध्या घनायमान हाते ही, लक्ष्मी कन्धे पर तौलिया डाल नित्य तैरने चली जाती है और घण्टो मछली-सी तैरती रहती है। यह एक दिन किसीने गजानन से कह दिया तो घर लौटते ही, उसने लक्ष्मी को मारते मारते बेदम कर दिया था।

शक्ति से विधि का कोई पूर्व निर्धारित भविष्य उसे अपनी ओर खींच
छोटे से स्टेशन पर रुकी एक मालगाड़ी के खाली डिब्बे में ही वह दुबक
गई थी। सारी रात वह घोड़ी की, नींद भर उस डिब्बे में ठिठुरती रही।
पता, शराबी पति उसे ढूंढता यहीं आ जाए ?

किन्तु कोई नहीं आया। एक कठोर झटके से अपने लौह अः
हिलाती मालगाड़ी जब चली, तब विदा लेते उस स्टेशन के कोर पर
निरिया चहक रही थी। लक्ष्मी की आंखों से झर झरकर आंसू बहने लगे,
से उसका यह रूप विचित्र दिखता था।

दिन डूबे किसी बड़े स्टेशन पर रुकी और चोरों की भांति इधर-उध
लक्ष्मी नीचे उतर गई। पहली बार उसे अपनी असहाय विवशता का
हुआ और उसके दोनों पैर बुरी तरह कांपने लगे थे। इधर-उधर से आ
पटरियों के संगम पर वह हताश खड़ी थी कि दूर किसी इंजन की र
पायी। वह आंखें बन्द कर पटरी पर खड़ी हो गई। किसी ने उसे हाथ
दूर पटक दिया। दूर गिरते ही जिन पटरियों पर वह खड़ी थी, उन्हीं पर
घड़घड़ाती एक लम्बी रेलगाड़ी उसे लगभग मूर्छित कर गई।

"कौन हो तुम ? कटना ही था तो बीच यार्ड में कटने क्यों आईं ? ए
की भी देर होती तो चटनी बन जाती।"

नीली वर्दी में उसका गोरा चेहरा और भी ललछौंहा लग रहा
उसकी फीरोजवर्णी आंखें निश्चय ही किसी विदेशी की थीं।

"चोट लग गई क्या ? उठ नहीं पा रही हो ? आई एम सॉरी, पर
नहीं पटकता तो ओह माई गॉड !" वह फिर, उसे भयावह सम्भावना क
करते ही सहम उठा। "उठ पाओगी ?"

स्वीकृति में गर्दन, हिलाती-कांपती लक्ष्मी उठ गई थी।

"कहां जाओगी ? यह रायबरेली है।"

"मैं तो यहां किसी को भी नहीं जानती, इतनी रात को कहां जाऊं
यदि कृपा कर आज आश्रय दे दें," उसका स्पष्ट उच्चारण, मनो ही उस
व्यक्ति के चेहरे से, क्रोध की रेखाएं स्वयं हट गईं।

अजीब लड़की हो—यू आर सो यंग—और यह भी नहीं जानती !
जाओगी। अच्छा, चलो मेरे साथ, इधर से ही चलो, पिछवाड़े से ही !

शक्ति से विधि का कोई पूर्व निर्धारित भविष्य उसे अपनी ओर खींच रहा है। छोटे से स्टेशन पर रुकी एक मालगाड़ी के खाली डिब्बे में ही वह दुबककर बैठ गई थी। सारी रात वह भोड़ी मी, सीड भर उस डिब्बे में ठिठुरती रही थी। क्या पता, शराबी पति उसे ढूंढता वहीं आ जाए ?

किन्तु कोई नहीं आया। एक कठोर झटके से अपने लौह अजर-पंजर हिलाती मालगाड़ी जब चली, तब विदा लेते उस स्टेशन के कोर पर मोर की गिरेया चहक रही थी। लक्ष्मी की आंखों से झर झरकर आंसू बहने लगे, पितृगृह से उसका यह करुण विचित्र निराममन था।

दिन डूबे किसी बड़े स्टेशन पर रुकी और चोरों की भांति इधर-उधर देखती लक्ष्मी नीचे उतर गई। पहली बार उसे अपनी असहाय विवशता का आभास हुआ और उसके दोनों पैर बुरी तरह कांपने लगे थे। इधर-उधर से आई अनेक पटरियों के संगम पर वह हताश खड़ी थी कि दूर किसी इंजन की सर्चलाइट चमकी। वह आंखें बन्द कर पटरी पर खड़ी हो गई। किसी ने उसे हाथ पकड़कर दूर पटक दिया। दूर गिरते ही जिन पटरियों पर वह खड़ी थी, उन्हीं पर से धड़धड़ाती एक लम्बी रेलगाड़ी उसे लगभग मूर्छित कर गई।

"कौन हो तुम ? मरना ही था तो बीच यार्ड में मरने क्यों आईं ? एक सेकेण्ड की भी देर होती तो मर ही जाती।"

नीली वर्दी में उसका गोरा चेहरा और भी ललछौंहा लग रहा था और उसकी फीरोजवर्णी आंखें निश्चय ही किसी विदेशी की थीं।

"चोट लग गई क्या ? उठ नहीं पा रही हो ? आई एम सॉरी, पर तुम्हें ऐसे नहीं पटकता तो ओह माई गॉड !" वह फिर, उसी भयावह सम्भावना का स्मरण करते ही सहम उठा। "उठ पाओगी ?"

स्वीकृति में गर्दन, हिलाती-कांपती लक्ष्मी उठ गई थी।

"कहां जाओगी ? यह रायबरेली है।"

"मैं तो यहां किसी को भी नहीं जानती, इतनी रात को कहां जाऊंगी आप यदि कृपा कर आज आश्रय दे दें," उसका स्पष्ट उच्चारण, सुनते ही उस अनजान व्यक्ति में अहर से, क्रोध की रेखाएं स्वयं हट गईं।

अजीब लड़की हो—यू आर सो स्ट्रेंज—और यह भी नहीं जानती कि कहां जाओगी। अच्छा, चलो मेरे साथ, इधर से ही चलो, पिछवाड़े से ही निकलता

खाने की व्यवस्था करता हूं।"

लक्ष्मी चाहने पर भी यह नही कह सकी कि उसे बिल्कुल भूख नहीं है वह उसके खाने की चिन्ता न करे। पर वह तो उसे एकटक देखती प्याला थामना भी भूल गई थी। उस शान्त चेहरे पर शिशु की-सी सरल मुस्कान थी। आखों के नीचे सामान्य सी क्लान्ति की झाईं थी किन्तु चिकने चेहरे पर कही भी चिन्ता की एक झुर्री नही थी, आंखो के तूतिया रग की गहराई चेहरे को और भी आकर्षक बना गई थी। लक्ष्मी को एक प्याला थमा, वह स्वय दूसरा प्याला थाम, उसीके सामने धरी कुर्सी पर बैठ गया। "नाउ टेल मी," उसने अपनी उसी स्निग्ध हसी से सवार-कर पूछे गए प्रश्न से लक्ष्मी को चौंका दिया, "क्यो ऐसा करने गई थी ? जानती हो, आज केवल ईश्वर की महान अनुकम्पा ने ही तुम्हे जीवन-दान दिया है ?"

लक्ष्मी ने सर झुका लिया, उस अपरिचित दयालु मेजबान के स्वर के वात्सल्य ने उसके आहत चित्त को और भी विचलित कर दिया उसके हाथ का प्याला काप गया, होठ हिले, फिर डबडबाई आखों के गह्वर ने कण्ठ अवरुद्ध कर दिया।

"लेट इट बी—लेट इट बी—टेक इट इजी। (जाने दो—धैर्य से काम लो) जब तुम ठीक हो जाओगी तब बातें करेंगे—तुम चाय पी लो—तब तक मैं ही अपना परिचय दे दू क्यो ?" वह फिर हसा, "मेरा नाम रौबट है, रौबट म्यूरो, पिता अग्रेज थे, मा आइरिश। मेल म गाड हू इमीसे तुम जहा भी जाना चाहोगी वहा तुम्हे पहुचाने म मुझे कोई भी दिक्कत नही होगी—और तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसकी निष्कपट हसी लक्ष्मी को हाथ पकडकर किसी अबोध शिशु की भाति जैसे पृथ्वी पर पहले डगमगाते चरण धरना सिखा रही थी।

"लक्ष्मी" चाय के प्याले मे ही दृष्टि गडाकर उसने कहा।

"ओह लक्ष्मी, द गॉडेस !" उसने फिर अपनी परिहास सिक्त हसी से गम्भीर सहमी लक्ष्मी को हसाने की चेष्टा की।

लक्ष्मी का चेहरा लाल हो गया शायद उसके अस्तित्व बोध को देख, फिर वह स्वय खिसियाकर उठ गया।

"तुम हाथ-मुह धोना चाहोगी ?" उसने फिर बडी चतुरता से असमय के परिहास का विषय-परिवतन कर दिया, "आओ तुम्हें गुसलखाना दिखा दू।"

खाने की व्यवस्था करता हू।"

लक्ष्मी चाहने पर भी यह नही कह सकी कि उसे बिल्कुल भूख नहीं है वह उसके खाने की चिन्ता न करे। पर वह तो उसे एकटक देखती प्याला थामना भी भूल गई थी। उस शान्त चेहरे पर शिशु की-सी सरल मुस्कान थी। आखों के नीचे सामान्य सी क्लान्ति की झाई थी किन्तु चिकने चेहरे पर कही भी चिन्ता की एक झुर्री नही थी, आंखों के तूतिया रग की गहराई चेहरे को और भी आकर्षक बना गई थी। लक्ष्मी को एक प्याला थमा, वह स्वय दूसरा प्याला थाम, उसीके सामने धरी कुर्सी पर बैठ गया। "नाउ टेल मी," उसने अपनी उसी स्निग्ध हसी से सवार-कर पूछे गए प्रश्न से लक्ष्मी को चौंका दिया, क्यो ऐसा करने गई थी ? जानती हो, आज केवल ईश्वर की महान अनुकम्पा ने ही तुम्हे जीवन-दान दिया है ?"

लक्ष्मी ने सर झुका लिया, उस अपरिचित दयालु मेजबान के स्वर के वात्सल्य ने उसके आहत चित्त को और भी विचलित कर दिया उसके हाथ का प्याला काप गया, होठ हिले, फिर डबडबाई आखों के गह्वर ने कण्ठ अवरुद्ध कर दिया।

लेट इट बी—लेट इट बी—टेक इट इजी। (जाने दो—धैर्य से काम लो) जब तुम ठीक हो जाओगी तब बातें करेंगे—तुम चाय पी लो—तब तक मैं ही अपना परिचय दे दू क्यो ?" वह फिर हसा, "मेरा नाम रौबट है, रौबट म्यूरी, पिता अग्रेज थे, मा आइरिश। मेल म गार्ड हू इसीसे तुम जहा भी जाना चाहोगी वहा तुम्हे पहुचाने म मुझे कोई भी दिक्कत नही होगी—और तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसकी निष्कपट हसी लक्ष्मी को हाथ पकडकर किसी अबोध शिशु की भाति जैसे पृथ्वी पर पहले डगमगाते चरण धरना सिखा रही थी।

"लक्ष्मी" चाय के प्याले मे ही दृष्टि गडाकर उसने कहा।

"ओह लक्ष्मी, द गॉडेस !" उसने फिर अपनी परिहास सिक्त हसी से गम्भीर सहमी लक्ष्मी को हसाने की चेष्टा की।

लक्ष्मी का चेहरा लाल हो गया शायद उसके अस्तित्व बोध को देख, फिर वह स्वय खिसियाकर उठ गया।

"तुम हाथ-मुह धोना चाहोगी ?" उसने फिर बडी चतुरता से असमय के परिहास का विषय-परिवतन कर दिया, "आओ तुम्हें गुसलखाना दिखा दू।"

'बस ? हो गया खाना ? तुमने तो कुछ खाया ही नही, लक्ष्मी ! यह तो ठीक नही है—बट आई कैन क्वाइट अण्डरस्टैण्ड !" गोद मे धरे नैपकिन से मुह पोछ वह उठ गया।

आओ, तुम्हे तुम्हारा कमरा दिखा दू" कमरे के द्वार तक उसे पहुचाकर फिर वह तटस्थ शालीनता से द्वार खोलकर ऐसे खडा हो गया जैसे किसी साहब का बैरा हो।

सुनो लक्ष्मी," फिर वह बडे गम्भीर स्वर मे कहने लगा, "प्रत्येक मनुष्य के जीवन म कभी कभी ऐसा अवसर आता है, जब मौत के अलावा उसे और कोई रास्ता नही सूझता, किन्तु हम मनुष्यो का यह दुर्भाग्य है कि बुलाने से मौत कभी नही आती। सुबह उठोगी, तो निश्चय ही नया प्रभात तुम्हें जीवन के प्रति आशावान बना देगा। जीवन इतना बुरा नही है, लक्ष्मी ! अच्छा—सो जाओ, गुड नाइट।"

वह चला गया और उसके बूटो की कठोर पगध्वनि सीमान्त की किसी रहस्यमय दिशा मे खो गई। हडबडाकर लक्ष्मी ने चिटखनी चढा दी और कमरे के द्वार से ही लगी आरामकुर्सी पर कटे पेड-सी वह ढह गई। बहुत देर तक वह किसी सम्मोहित माध्यम-सी उसी कुर्सी पर पडी रही। फिर धीरे धीरे अचानक आ गए किसी उजाले का फोकस कमरे की सज्जा पर फैलता चला गया। कमरे की स्वामिनी निश्चय ही सुघड सलीके वाली थी। लापरवाह भाई की अटपटी गृहस्थी मे उसका वह कमरा किसी उघडे स्वेटर पर लगे नये ऊन के पैबन्द-सा ही अलग चमक रहा था। कमरे के बीचो-बीच एक गोल मेज पर क्रोशिये का मेजपोश बिछा था उसम उसीके लगाए हफ्ते भर के बासी फूल सूखने पर भी लगाने वाली की सुरुचि का परिचय दे रहे थे। दीवार पर क्वीन विक्टोरिया का बडा-सा तैल-चित्र टगा था मेण्टलपीस पर बडी सी घडी शायद किसी नीलाम से खरीदी गई थी या फिर अतीत की पीढियो के स्मृतिचिह्न रूप मे ही उसे पोंछ-पोछकर सहेज दिया गया था। घडी की दोनो जीर्ण सुइया बारह के धूमिल अक्षरो पर उसी अचल मुद्रा म खडी थीं जिसमे उन्होंने शायद युगो पूर्व बारह बजाए थे। उसीके नीचे किसीके विवाह का एक चित्र टगा था, जिसमे रौबर्ट के मुस्कराते तारुण्य को पहचानने मे लक्ष्मी को विलम्ब नहीं हुआ। उसके पास ही एक आकर्षक

'बस ? हो गया खाना ? तुमने तो कुछ खाया ही नहीं, लक्ष्मी ! यह तो ठीक नहीं है—वट आई कैन क्वाइट अण्डरस्टैण्ड !" गोद मे धरे नैपकिन से मुह पोछ वह उठ गया।

आओ, तुम्हे तुम्हारा कमरा दिखा दू" कमरे के द्वार तक उसे पहुचाकर फिर वह तटस्थ शालीनता से द्वार खोलकर ऐसे खडा हो गया जैसे किसी साहब का बैरा हो।

सुनो लक्ष्मी," फिर वह बडे गम्भीर स्वर मे कहने लगा, "प्रत्येक मनुष्य के जीवन म कभी कभी ऐसा अवसर आता है, जब मौत के अलावा उसे और कोई रास्ता नही सूझता, किन्तु हम मनुष्यों का यह दुर्भाग्य है कि बुलाने से मौत कभी नही आती। सुबह उठोगी, तो निश्चय ही नया प्रभात तुम्हें जीवन के प्रति आशावान बना देगा। जीवन इतना बुरा नही है, लक्ष्मी ! अच्छा—सो जाओ, गुड नाइट।"

वह चला गया और उसके बूटो की कठोर पगध्वनि सीमान्त की किसी रहस्यमय दिशा मे खो गई। हडबडाकर लक्ष्मी ने चिटखनी चढा दी और कमरे के द्वार से ही लगी आरामकुर्सी पर कटे पेड-सी वह ढह गई। बहुत देर तक वह किसी सम्मोहित माध्यम-सी उसी कुर्सी पर पडी रही। फिर धीरे धीरे अचानक आ गए किसी उजाले का फोकस कमरे की सज्जा पर फैलता चला गया। कमरे की स्वामिनी निश्चय ही सुघड सलीके वाली थी। लापरवाह भाई की अटपटी गृहस्थी मे उसका वह कमरा किसी उघडे स्वेटर पर लगे नये ऊन के पैबन्द-सा ही अलग चमक रहा था। कमरे के बीचो-बीच एक गोल मेज पर क्रोशिये का मेजपोश बिछा था उसमे उसीके लगाए हफ्ते भर के बासी फूल सूखने पर भी लगाने वाली की सुरुचि का परिचय दे रहे थे। दीवार पर क्वीन विक्टोरिया का बडा-सा तैल-चित्र टगा था मेण्टलपीस पर बडी सी घडी शायद किसी नीलाम से खरीदी गई थी या फिर अतीत की पीढियो के स्मृतिचिह्न रूप मे ही उसे पोंछ-पोछकर सहेज दिया गया था। घडी की दोनो जीर्ण सुइया बारह के धूमिल अक्षरो पर उसी अचल मुद्रा म खडी थीं जिसमे उन्होंने शायद युगो पूर्व बारह बजाए थे। उसीके नीचे किसीके विवाह का एक चित्र टगा था, जिसमे रौबर्ट के मुस्कराते तारुण्य को पहचानने मे लक्ष्मी को विलम्ब नहीं हुआ। उसके पास ही एक आकर्षक

गया था। ले गई गृह की पुरानी दासी माया। वह मा के मायके की दासी थी उसके साथ मदाम होतीं तो शायद मा कुछ नही कहती, पर माया थी शायद इसी-से उसके हृदय का गह्वर अन्तिम बार पुत्री के सम्मुख मुखर होकर फूट गया था 'आमाके विष दिच्छे डाकातरा खुकू आमा के विष दिच्छे" (मुन्नी ये डाकू मुझे जहर दे रहे हैं जहर।)। माया की सूजी आखें और लाल नाक देखकर भी वह अबोध मूर्खा कुछ नही समझी थी। दिन-भर मामा के यहा बिताकर वह रात को लौटी तो भागकर माया उसे छाती से चिपटाकर जोर जोर मे रोने लगी थी। रात को सोने से पहले नित्य माया ही उसे मा के कमरे मे ले जाती थी। कभी-कभी मा उसे देखकर भी चुपचाप आखें बन्द किए पड़ी रहती तो माया कहती—'दीदी खुकू ऐशेछे।" (दीदी मुन्नी आई है।) पर मा वैसी ही मुर्दा पड़ी रहती। किन्तु कभी कभी उसकी यन्त्रणा-कातर आखें द्वार की ओर टिकी प्रतीक्षा करतीं। उस दिन वह उसे बड़े लाड़ से छाती के पास खीचकर कहती "खेये छीश खुकू ? जा घुमो ऐ बारे।' (खाना खा लिया तूने ? जा अब सो जा।)

आज उसके क्षत विक्षत चित्त मे मा की एक ही करुण छवि अकित थी, भयात्त दृष्टि और वह स[illegible]ठस्वर, 'खुकू डाकातरा आमाके विष दिच्छे!' मा की मृत्यु के कुछ ही दि[illegible] की एक और स्मृति भी उसे बीच-बीच म काठ बना देती। उसके पिता [illegible] में अदभुत मासल माधुय था। उनके कमरे म एक बड़ा-सा औगन था जिसे नि[illegible] सुबह उठते ही मदाम अपने स्वच्छ झाड़न से पोंछती थी, कभी कभी झाड़न के सस्पर्श से उसके सफेद-काले अवयव मृदु झकार छोड़ अपनी टनटन से लक्ष्मी को [illegible]गा देत। वह जान जाती कि भोर हो गई है। एक दिन वह उसी परिचित टनटन के मधुर एलाम से जग गइ—तब क्या भोर हो गई थी ? पर मदाम तो उसकी पाश्व की पलग पर पड़ी खर्राटे ले रही थी। खुली खिड़की से तारो भरे आकाश को देख उसने आखें बन्द की ही थी कि उसे लगा, मा का क्षीण कण्ठ उसे पुकार रहा है— खुकू खुकू '

मा उसके पास के ही कमरे म अकेली सोती थी। वह उठकर गई तो दखा मा जगी हैं "खुकू, दरजाटा ऐकटू खुले जा मा, तोर बाबा गान कोरछे (मुन्नी, दरवाजा जरा खोल जा मा तेरे पापा गाना गा रहे हैं)।"

उसने दबे पैरो से जाकर पिता के कमरे का द्वार खोल दिया था। भारी

गया था। ले गई गृह की पुरानी दासी माया। वह मा के मायके की दासी थी उसके साथ मदाम होतीं तो शायद मा कुछ नही कहती, पर माया थी शायद इसी-से उसके हृदय का गह्वर अन्तिम बार पुत्री के सम्मुख मुखर होकर फूट गया था 'आमाके विष दिच्छे डाकातरा खुकू आमा के विष दिच्छे" (मुन्नी ये डाकू मुझे जहर दे रहे हैं जहर।)। माया की सूजी आखें और लाल नाक देखकर भी वह अबोध मूर्खा कुछ नही समझी थी। दिन-भर मामा के यहा बिताकर वह रात को लौटी तो भागकर माया उसे छाती से चिपटाकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगी थी। रात को सोने से पहले नित्य माया ही उसे मा के कमरे मे ले जाती थी। कभी-कभी मा उसे देखकर भी चुपचाप आखें बन्द किए पड़ी रहती तो माया कहती— "दीदी खुकू ऐशेछे।" (दीदी मुन्नी आई है।) पर मा वैसी ही मुर्दा पड़ी रहती। किन्तु कभी कभी उसकी यन्त्रणा-कातर आखें द्वार की ओर टिकी प्रतीक्षा करतीं। उस दिन वह उसे बड़े लाड से छाती के पास खीचकर कहती "खेये छीश खुकू? जा घुमो ऐ बारे।" (खाना खा लिया तूने? जा अब सो जा।)

आज उसके क्षत विक्षत चित्त मे मा की एक ही करुण छवि अकित थी, भयात्त दृष्टि और वह सहमा स्वर, 'खुकू डाकातरा आमाके विष दिच्छे!' मा की मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व की एक और स्मृति भी उसे बीच-बीच म काठ बना देती। उसके पिता के कठ में अदभुत मासल माधुर्य था। उनके कमरे म एक बड़ा-सा औगन था जिसे नित्य सुबह उठते ही मदाम अपने स्वच्छ झाड़न से पोंछती थी, कभी कभी झाड़न के स्पर्श से उसके सफेद-काले अवयव मृदु झकार छोड अपनी टनटन से लक्ष्मी को जगा देते। वह जान जाती कि भोर हो गई है। एक दिन वह उसी परिचित टनटन के मधुर एलाम से जग गई—तब क्या भोर हो गई थी? पर मदाम तो उसकी पार्श्व की पलग पर पड़ी खर्राटे ले रही थी। खुली खिड़की से तारो भरे आकाश को देख उसने आखें बन्द की ही थी कि उसे लगा, मा का क्षीण कण्ठ उसे पुकार रहा है— खुकू खुकू '

मा उसके पास के ही कमरे म अकेली सोती थी। वह उठकर गई तो देखा मा जगी हैं "खुकू, दरजाटा ऐकटू खुले जा मा, तोर बाबा गान कोरछे (मुन्नी, दरवाजा जरा खोल जा मा तेरे पापा गाना गा रहे हैं)।"

उसने दबे पैरो से जाकर पिता के कमरे का द्वार खोल दिया था। भारी

करेंगे—कोई तुम्हारे पास नहीं फटकेगा "

"मेरी मा से कोई घृणा नहीं करता, एक तुम्हीं उनसे घृणा करती हो!" पहली बार उसने अपने उद्दाम मुहफट शैशव की चोट से मदाम को हतप्रभ कर दिया था।

"तुम बहुत शैतान और दुष्ट लड़की हो!" मदाम का मर्कटमुखी चेहरा क्रोध से और भी लाल बन गया था।

लक्ष्मी पैर पटकती-रोती अपने कमरे मे भाग गई थी।

उस एक रात के मा के शय्या शयन के लिए वह मदाम के हज़ार-हज़ार बेंत भी सह सकती थी। कितनी दुबली थी मा, उसकी पसली की हड्डिया उसे छुरी-सी चुभती रही थी और मा चुपचाप उसे छाती से चिपटाए रही फिर स्वय ही उसने पीठ फेर ली थी। पीठ फिरी रहने पर भी वह जान गई थी कि मा रो रही है। *पापा का स्वर बड़ी देर तक उसी गाने को दुहराता रहा था*

तखन तोरे बलेछिनू रे मन

जास ने विपथे

मानली नी तखन—

खिड़की से आती, काठाल चम्पा की दमघोंट देने वाली तीव्र सुगन्ध के साथ मा की देह से आती दवाइयो की गन्ध मिलकर अब भी कभी उसके नथुने फड़का जाती। आज इस अपरिचित मेज़बान की खिड़की से आती वैसी ही पुष्प-गन्ध उसे पितृगृह के बिछुड़े अतीत की ओर खींच रही थी। कैसा आश्चर्य है कि कभी कोई जानी-पहचानी पूर्व परिचित सुगन्ध भी भूले-बिसरे धुंधले अतीत को, सद्य अंकित चित्र-सा ही स्पष्ट कर देती है। वैरानिका की दुग्धधवल शय्या के, कैंडलविक पलगपोश को लक्ष्मी ने तहा कर कुर्सी पर धर दिया। न दो ऊची तकियो के स्वच्छ गिलाफों के कलेवर पर सोने वाली अपनी कोई सिलवट छोड़ गई थी, न चादर पर। लगता था अभी-अभी किसीने दोनों हाथों से एक-एक सिलवट मिटा-कर, नये सिरे से बिस्तर लगाया है। अनजान परिवेश मे, उस बिस्तर पर लेटने में भी लक्ष्मी को हिचकिचाहट हो रही थी पर बिस्तर पर लेटते ही, अब तक स्वय उसके भय से सहमी-दुबकी नींद सहसा उसकी पलकें मूदे दे रही थी। अग-अग ऐसे टूट रहा था जैसे किसीने मार-कूटकर रख दिया हो। उसने बत्ती बुझाई

करेंगे—कोई तुम्हारे पास नहीं फटकेगा' "

"मेरी मा से कोई घृणा नहीं करता, एक तुम्हीं उनसे घृणा करती हो!" पहली बार उसने अपने उद्दाम मुहफट शैशव की चोट से मदाम को हतप्रभ कर दिया था।

"तुम बहुत शैतान और दुष्ट लड़की हो!" मदाम का मर्कटमुखी चेहरा क्रोध से और भी लाल बन गया था।

लक्ष्मी पैर पटकती-रोती अपने कमरे मे भाग गई थी।

उस एक रात के मा के शय्या शयन के लिए वह मदाम के हजार-हजार बेंत भी सह सकती थी। कितनी दुबली थी मा, उसकी पसली की हड्डिया उसे छुरी-सी चुभती रही थी और मा चुपचाप उसे छाती से चिपटाए रही फिर स्वय ही उसने पीठ फेर ली थी। पीठ फिरी रहने पर भी वह जान गई थी कि मा रो रही है। *पापा का स्वर बडी देर तक उसी गाने को दुहराता रहा था*

तखन तोरे बलेछिनू रे मन
जास ने विपथे
मानलो नी तखन—

खिडकी से आती, काठाल चम्पा की दमघोंट देने वाली तीव्र सुगन्ध के साथ मा की देह से आती दवाइयो की गन्ध मिलकर अब भी कभी उसके नथुने फडका जाती। आज इस अपरिचित मेज़बान की खिडकी से आती वैसी ही पुष्प-गन्ध उसे पितृगृह के बिछुड़े अतीत की ओर खीच रही थी। कैसा आश्चर्य है कि कभी कोई जानी-पहचानी पूर्व परिचित सुगन्ध भी भूले-बिसरे धुधले अतीत को, सद्य अकित चित्र-सा ही स्पष्ट कर देती है। वैरानिका की दुग्धधवल शय्या के, कैंडलविक पलगपोश को लक्ष्मी ने तहा कर कुर्सी पर धर दिया। न दो ऊची तकियो के स्वच्छ गिलाफों के कलेवर पर सोने वाली अपनी कोई सिलवट छोड गई थी, न चादर पर। लगता था अभी-अभी किसीने दोनों हाथों से एक-एक सिलवट मिटा-कर, नये सिरे से बिस्तर लगाया है। अनजान परिवेश मे, उस बिस्तर पर लेटने में भी लक्ष्मी को हिचकिचाहट हो रही थी पर बिस्तर पर लेटते ही, अब तक स्वय उसके भय से सहमी-दुबकी नींद सहसा उसकी पलकें मूदे दे रही थी। अग-अग ऐसे टूट रहा था जैसे किसीने मार-कूटकर रख दिया हो। उसने बत्ती बुझाई

बदलती रही थी। उस गुदगुदी शय्या में भी उसे जैसे हजार काटे चुभ रहे थे, उस पर एक अज्ञात भय की सिहरन रह-रहकर उसे कपा रही थी। कहीं आधी रात को उसका कुआरा मेजबान यदि द्वार खटखटा दे तब? किन्तु ऐसा कुछ हुआ नही।

पौ फटने से ही कुछ पूर्व उसे झपकी आ गई। जब हड़बड़ाकर उठी तब सचमुच ही कोई द्वार खटखटा रहा था। उसने हड़बड़ाकर कपड़े ठीक किए, द्वार खोला तो रौबर्ट हाथ मे चाय की ट्रे लिए मुस्करा रहा था "व्हाई एम सॉरी, तुम्हें नींद से जगा दिया पर सात बजे हैं, आठ बजे मेरी ड्यूटी है, तुम्हें फिलहाल वैरोनिका के पास छोड जाऊगा, वहा पहुचकर, तुम जहा भी जाना हो, लौटने मे तुम्हें मैं वहीं पहुचा दूगा—लो पहले चाय पी लो।"

तब क्या सुबह हो गई थी? शायद बड़ी देर में उसकी आखें झपकीं इसीसे नींद नही टूटी थी। उसने सर झुकाए ही ट्रे थाम ली। रात्रि के अस्पष्ट अन्धकार मे रौबर्ट उसकी घनकुन्तल राशि को ही देख पाया था किन्तु नवीन सूर्य की मन्द किरणें उसके सर्वांग पर छिटकीं, तो वह आश्चर्यचकित मुग्ध दृष्टि से उसे देखता रहा। सोने म जूड़ा अस्त-व्यस्त होकर शिथिल हो गया था पर फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे कोई शखचूड़ काला नाग कुण्डली मारे उसकी ग्रीवा से सट गया हो। ललाट पर स्वेद की बूदें झलक रही थीं। पीली साड़ी मुड़ी-तुड़ी होने पर भी यत्न से पहनी गई थी और शायद उसी पीले रग की पाण्डुर आभा में सुकुमार चेहरा और भी पीला लग रहा था। ट्रे लेने में, एक पल को विचलित हो गए आचल की उठी यवनिका से, उसका उद्धत यौवन क्रुद्ध सर्पिणी की-सी ही चिरी जिह्वा लपलपा गया तो रौबर्ट ने सहमकर आखें फेर लीं।

ऐसा रूप-यौवन, किस कठोर आघात से आहत हो मृत्यु का वरण करने, उस मेल ट्रेन के पहिये के औदार्य का याचक बना होगा?

चाय पीकर वह ट्रे उठा स्वय ही बेसिन में साफ करने लगा, तो पहली बार नतमुखी लक्ष्मी का बोल फूटा, "आप हट जाइए, मैं धो देती हू—"

'ओह सो काइण्ड आफ यू—पर मुझे तो यह सब नित्य करने की आदत है—व्हाई स्पायल मी।' वह हसा।

लक्ष्मी ने उसके हाथ से प्याले लेकर स्वय साफ कर दिए, फिर ट्रे उठाकर मेज पर धर आई। रौबर्ट तैयार होने चला गया। जब लौटा तब नीली वर्दी में

बदलती रही थी। उस गुदगुदी शय्या में भी उसे जैसे हजार काटे चुभ रहे थे, उस-पर एक अज्ञात भय की सिहरन रह-रहकर उसे कपा रही थी। कहीं आधी रात को उसका कुआरा मेजबान यदि द्वार खटखटा दे तब ? किन्तु ऐसा कुछ हुआ नही।

पौ फटने से ही कुछ पूर्व उसे झपकी आ गई। जब हड़बड़ाकर उठी तब सचमुच ही कोई द्वार खटखटा रहा था। उसने हड़बड़ाकर कपड़े ठीक किए, द्वार खोला तो रौबर्ट हाथ म चाय की ट्रे लिए मुस्करा रहा था "आई एम सॉरी, तुम्हें नींद से जगा दिया पर सात बजे हैं, आठ बजे मेरी ड्यूटी है, तुम्हें फिलहाल वैरोनिका के पास छोड़ जाऊगा, वहा पहुचकर, तुम जहा भी जाना हो, लौटते मे तुम्हें मैं वहीं पहुचा दूगा—लो पहले चाय पी लो।"

तब क्या सुबह हो गई थी ? शायद बड़ी देर में उसकी आखें झपकीं इसीसे नींद नही टूटी थी। उसने सर झुकाए ही ट्रे थाम ली। रात्रि के अस्पष्ट अधकार मे रौबर्ट उसकी घनकुन्तल राशि को ही देख पाया था किन्तु नवीन सूर्य की मन्द किरणें उसके सर्वांग पर छिटकीं, तो वह आश्चर्यचकित मुग्ध दृष्टि से उसे देखता रहा। सोने म जूड़ा अस्त-व्यस्त होकर शिथिल हो गया था पर फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे कोई शखचूड़ काला नाग कुण्डली मारे उसकी ग्रीवा से सट गया हो। ललाट पर स्वेद की बूदें झलक रही थीं। पीली साड़ी मुड़ी-तुड़ी होने पर भी यत्न से पहनी गई थी और शायद उसी पीले रग की पाण्डुर आभा में सुकुमार चेहरा और भी पीला लग रहा था। ट्रे लेने में, एक पल को विचलित हो गए आचल की उठी यवनिका से, उसका उद्धत यौवन क्रुद्ध सर्पिणी की-सी ही चिरी जिह्वा लपलपा गया तो रौबर्ट ने सहमकर आखें फेर लीं।

ऐसा रूप-यौवन, किस कठोर आघात से आहत हो मृत्यु का वरण करने, उस मेल ट्रेन के पहिये के औदार्य का याचक बना होगा ?

चाय पीकर वह ट्रे उठा स्वय ही बेसिन में साफ करने लगा, तो पहली बार नतमुखी लक्ष्मी का बोल फूटा, "आप हट जाइए, मैं धो देती हू—"

'ओह सो काइण्ड आफ यू—पर मुझे तो यह सब नित्य करने की आदत है—ह्वाई स्पायल मी।' वह हसा।

लक्ष्मी ने उसके हाथ से प्याले लेकर स्वय साफ कर दिए, फिर ट्रे उठाकर मेज पर धर आई। रौबट तैयार होने चला गया। जब लौटा तब नीली वर्दी में

लक्ष्मी का चेहरा फक पड गया। छि-छि, उसने क्या अन्त तक बटुआ लेकर भागनेवालियो की श्रेणी मे ही उसे रख दिया था।

रिक्शा उसे लखनऊ के जिन प्रशस्त पथो से लिए जा रहा था, उनसें लक्ष्मी का कोई पूर्व परिचय नहीं था। पिछली बार पति के साथ जब पितगृह से भागकर आई थी, तब गजानन ने उसके लम्बे घूघट को एक पल के लिए भी नही हटने दिया था। लखनऊ का स्टेशन कब आया और कब गया, वह जान भी नही पाई थी। लालबाग के लाल ईंटों के बने छोटे से बगलेनुमा मकान के पास ही रिक्शा छोड रॉबट लोहे का फाटक खोल उसे भीतर ले गया। बरामदे मे वह राबट के पीछे खडी थी कि घटी का शब्द सुन गहस्वामिनी ने द्वार खोल दिया। भाई को देखकर चिकने गौरमुखमडल पर क्षण भर को उतरी उजली हसी उसी पल भाई की अपरिचिता सगिनी को देख लिपस्टिक रजितअधरो पर ही विलुप्त हो गई। जिस सुगध का भभाका लक्ष्मी की उसकी शय्या पर ही बेसुध कर गया था उसी सुगध का आभास पाते ही वह जान गई कि यही वैरोनिका है।

"वैरोनिका, दिस इज लक्ष्मी! लक्ष्मी यह मेरी बहन है, वैरोनिका," रौबट ने ऐसी स्वाभाविकता से दोनो का एक-दूसरी से परिचय कराया, जैसे दोना ही को एक-दूसरी से मिलने का पूर्वाभास था, किन्तु कुआरे भाई के साथ उस सुन्दरी सावली हिन्दुस्तानी युवती को देखकर वैरोनिका प्रसन्न नही हुई थी, यह भाव प्रतिपल उसके कठोर चेहरे को उग्रतर बनाता और भी कठोर बना रहा था। उस श्यामवर्णी चेहरे को उसका ऐंग्लो इडियन आभिजात्य भीतर आने का निमन्त्रण नहीं दे पा रहा था।

"कम इन लक्ष्मी," रौबट का ही स्नेहसिक्त स्वर उसे किसी उत्साहित बालक के-से उत्कठित आमन्त्रण से भीतर खीच ले गया।

बहन का कमरा भाई के कमरे से कही अधिक सुव्यवस्थित था। कमरे मे लगा केन का सोफा, दीवान पर बिछा डनलप मोजेइक, फर्श की सुघडता, सबमे सुरुचि की सुस्पष्ट छाप थी। दीवार पर वैरोनिका के यौवन-काल का आदमकद चित्र टगा था, जिसमे खुले गले के नीले गाउन म उसके उत्तग यौवनदीप्त वक्षस्थल पर गार्नेट की माला के सुरमई दाने, अधरा पर गाढे लिपस्टिक की रेखा, घुटने पर धरे हाथ की लम्बी मध्यमा पर सिग्नेट अगूठी का चौकोर चमकता कत्थई

लक्ष्मी का चेहरा फक पड गया। छि-छि, उसने क्या अन्त तक बटुआ लेकर भागनेवालियो की श्रेणी मे ही उसे रख दिया था।

रिक्शा उसे लखनऊ के जिन प्रशस्त पथो से लिए जा रहा था, उनसें लक्ष्मी का कोई पूर्व परिचय नहीं था। पिछली बार पति के साथ जब पितगृह से भागकर आई थी, तब गजानन ने उसके लम्बे घूघट को एक पल के लिए भी नही हटने दिया था। लखनऊ का स्टेशन कब आया और चल गया, वह जान भी नही पाई थी। लालबाग के लाल ईंटों के बने छोटे से बगलेनुमा मकान के पास ही रिक्शा छोड रॉबट लोहे का फाटक खोल उसे भीतर ले गया। बरामदे मे वह राबट के पीछे खडी थी कि घटी का शब्द सुन गृहस्वामिनी ने द्वार खोल दिया। भाई को देखकर चिकने गौरमुखमडल पर क्षण भर को उतरी उजली हसी उसी पल भाई की अपरिचिता सगिनी को देख लिपस्टिक रजित अधरो पर ही विलुप्त हो गई। जिस सुगध का भभाका लक्ष्मी को उसकी शय्या पर ही बेसुध कर गया था उसी सुगध का आभास पाते ही वह जान गई कि यही वैरोनिका है।

"वैरोनिका, दिस इज़ लक्ष्मी! लक्ष्मी यह मेरी बहन है, वैरोनिका," रॉबट ने ऐसी स्वाभाविकता से दोनो का एक-दूसरी से परिचय कराया, जैसे दोनो ही को एक-दूसरी से मिलने का पूर्वाभास था, किन्तु कुआरे भाई के साथ उस सुन्दरी सावली हिन्दुस्तानी युवती को देखकर वैरोनिका प्रसन्न नही हुई थी, यह भाव प्रतिपल उसके कठोर चेहरे को उग्रतर बनाता और भी कठोर बना रहा था। उस श्यामवर्णी चेहरे को उसका ऐंग्लो इडियन आभिजात्य भीतर आने का निमत्रण नहीं दे पा रहा था।

"कम इन लक्ष्मी," रॉबट का ही स्नेहसिक्त स्वर उसे किसी उत्साहित बालक के-से उत्कठित आमन्त्रण से भीतर खीच ले गया।

बहन का कमरा भाई के कमरे से कही अधिक सुव्यवस्थित था। कमरे मे लगा केन का सोफा, दीवान पर बिछा डनलप मोजेइक, फर्श की सुघडता, सबमे सुरुचि की सुस्पष्ट छाप थी। दीवार पर वैरोनिका के यौवन-काल का आदमकद चित्र टगा था, जिसमे खुले गले के नीले गाउन म उसके उत्तग यौवनदीप्त वक्षस्थल पर गार्नेट की माला के सुरमई दाने, अधरा पर गाढे लिपस्टिक की रेखा, घुटने पर धरे हाथ की लम्बी मध्यमा पर सिग्नेट अगूठी का चौकोर चमकता कत्थई

वैरोनिका का उत्तेजित कण्ठस्वर लक्ष्मी को चौंका गया।

नो थैंक यू मर ' वह व्यग्य से अपनी सारी शालीनता भूल बिसर गई थी, ' मैं ऐसी मूख नही हू न जाने क्या चुरा, किस मार-मूर, किसक पाप की गठरी मेरे दरवाजे पर उतारने आई है। जहा से लाए हो, वही छोड आओ। आज तक इस मुहल्ले मे वैरोनिका म्यूरी की ओर किसीने अगुली नही उठाई। आज, जब कब्र मे जाने की घडिया गिन रही हू तब इस जवान छोकरी का पाप धोने को कह रहे हो ?"

"क्या बात कर रही हो वैरानिका, कौन तुमसे कह रहा है कि उसे सदा के लिए आश्रय दो। मैं क्या इतना मूख हू ? लडकी निश्चय ही किसी सम्भ्रान्त परिवार की है। हम-तुमसे भी साफ अग्रेजी बालती है और मैं तो किसीको भी काटे-छुरी पकडते ही उसकी ब्रीड पकड लेता हू बेचारी न जाने किस आफ्त की मारी ट्रेन से कटने जा रही थी '

तो क्या मैंने दुनिया भर के आफ्त के मारो का कोई ठेका ले रखा है ?"

वैरोनिका—आई बेग ' रौबट शायद घुटने टेककर बैठ गया था, किन्तु जितना ही धीमा स्वर रौबट का था उतने ही क्रुद्ध स्वर मे उसकी बहन गरज रही थी।

नाउ टेल मी बाबी, डिड यू गेट हर इनटू ट्रबल ? (सच बताओ बाबी, क्या तुम्हीने तो उसका सवनाश नही किया ?)"

'आई स्वीयर आई स्वीयर वैरोनिका—पर कसी बात कर रही हो तुम एकदम बच्ची है बेचारी।"

जी हा ऐसी सैकडो बच्चियो की पाप की गठरिया वैरानिका म्यूरी धो चुकी है। कम से कम बारह हफ्ते का गभ है मैं क्या बच्ची हू। पीले चेहरे और पीली आखो को दखते ही मैं जान गई थी। कहो तो अभी तुम्हारे सामने ही कबुलवा दू।'

'नहीं, नहीं,' रौबट का सकुचित कठस्वर सहसा दीन विगलित होकर फुसफुसाहट म खो गया।

जब बडी देर बाद दोनों एकसाथ बाहर आए तब लगता था, दोनो मे कोई समझौता हो गया है। रौबट का चेहरा विजय-गव से दमक रहा था, "चलो लक्ष्मी, खाना लग गया है " वैरोनिका कठोर दृष्टि से लक्ष्मी को देख फिर भीतर चली गई।

वैरोनिका का उत्तेजित कण्ठस्वर लक्ष्मी को चौंका गया।

नो थैंक यू भर ' वह व्यंग्य से अपनी सारी शालीनता भूल बिसर गई थी, ' मैं ऐसी मूख नही हू न जाने क्या चुरा, विस मार-मूर, किसक पाप की गठरी मेरे दरवाज़े पर उतारने आई है। जहा से लाए हो, वही छोड आओ। आज तक इस मुहल्ले मे वैरोनिका म्यूरी की ओर किसीने अगुली नही उठाई। आज, जब कब्र मे जाने की घडिया गिन रही हू तब इस जवान छोकरी का पाप धोने को कह रहे हो ?"

"क्या बात कर रही हो वैरानिका, कौन तुमसे कह रहा है कि उस सदा के लिए आश्रय दो। मैं क्या इतना मूख हू ? लडकी निश्चय ही किसी सम्भ्रात परिवार की है। हम-तुमसे भी साफ अग्रेज़ी बालती है और मैं तो किसीको भी काटे-छुरी पकडते ही उसकी ब्रीड पकड लेता हू बेचारी न जाने किस आफत की मारी ट्रेन से कटने जा रही थी '

तो क्या मैंने दुनिया भर के आफत के मारो का कोई ठेका ले रखा है ?"

वैरोनिका—आई बेग ' रौबट शायद घुटने टेककर बैठ गया था, किन्तु जितना ही धीमा स्वर रौबट का था उतने ही क्रुद्ध स्वर मे उसकी बहन गरज रही थी।

नाउ टेल भी बाबी, डिड यू गेट हर इनटू ट्रबल ? (सच बताओ बाबी, क्या तुम्होने तो उसका सवनाश नही किया ?)"

' आई स्वीयर आई स्वीयर वैरोनिका—पर कसी बात कर रही हो तुम एकदम बच्ची है बेचारी ! "

जी हा ऐसी सैकडो बच्चियो की पाप की गठरिया वैरानिका म्यूरी धो चुकी है। कम से कम बारह हफ्ते का गभ है मैं क्या बच्ची हू। पीले चेहरे और पीली आखो को देखते ही मैं जान गई थी। कहो तो अभी तुम्हारे सामने ही कबुलवा दू। '

'नहीं, नहीं,' रौबट का सकुचित कठस्वर सहसा दीन विगलित होकर फ़ुसफ़ुसाहट म खो गया।

जब बडी देर बाद दोनों एकसाथ बाहर आए तब लगता था, दोनो मे कोई समझौता हो गया है। रौबट का चेहरा विजय-गव से दमक रहा था, "चलो लक्ष्मी, खाना लग गया है " वैरोनिका कठोर दृष्टि से लक्ष्मी को देख फिर भीतर चली गई।

कह हाथ हिलाता निकल गया। लक्ष्मी बड़ी देर तक उसकी सुदीर्घ छाया को देखती रही थी।

"आओ, भीतर आ जाओ लक्ष्मी," लक्ष्मी चौंककर मुड़ी। भाई के जाते ही वैरोनिका का उग्र स्वर ज्वार-भाटे की उन्मुक्त तरगों की भांति उसी वेग से नम्र हो गया था।

'आओ!" उसका हाथ पकड़ वैरोनिका अकपट स्नेह से उसे भीतर ले गई। द्वार की दोनों चिटखनियां लगा उसने मूर्तिवत् अचल खड़ी लक्ष्मी की ओर स्नेह स्निग्ध दृष्टि से देख, फिर उसी मधुर स्वर मे कहा, 'आओ, मेरे बेडरूम में चलो।"

वैरोनिका के बेडरूम की भव्य सज्जा भी उसके गोल कमरे की सज्जा-सी ही सुघड थी। एक चौड़े नक्काशीदार आईना लगे पलग पर स्वच्छ बिस्तर लगा था, पलंगपोश की सपाट बिछावन से लेकर दो ऊचे तकियों के उत्तुग उभार मे रौबर्ट के बगले में लगे उसके बिस्तर का-सा यमज साम्य था।

"बैठो!" उसने अन्यमनस्क खड़ी लक्ष्मी को हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा दिया और स्वय पलग पर बैठ गई। कुछ देर तक एक अवांछित चुप्पी की घुटन का बादल कमरे मे तैर गया, फिर वैरोनिका ने ही उस मेघ को अपनी मुक्त हसी के झोंके से बहा दिया।

"क्यों लक्ष्मी, किस दुख से ट्रेन के नीचे कटने गई थीं? मैं बताऊं?" फिर वह हसकर उसे छेड़ने के से स्वर मे कहानी सी सुनाने लगी, 'तुम किसी सम्भ्रात गृह की पुत्री हो यह तो मैं तुम्हे देखते ही जान गई थी। शायद, बचपन में ही बहुत उपन्यास पढने लगी थी" अब अपनी पैनी दृष्टि लक्ष्मी के नतमुखी चेहरे पर गढ़ा, उसने अपनी अगूठियों से भरी अगुलियों की कैंची-सी बना घुटने पर धर ली, और एक नकली बनावटी लम्बी सास खींचकर फिर लक्ष्मी के अतीत का सूत्र थाम लिया, फिर तुम्हारे जीवन म शायद कोई प्रेमी आया, उपन्यासो के नायक-सा ही सुन्दर —ए डशिंग हीरो और एक दिन तुमने बिना कुछ सोचे-समझे उसे अपना सवस्व अपण कर दिया, जब उसने तुम्हारी यह अवस्था देखी, तब तुम्हे छोड़कर भाग गया क्या है ना ठीक? मैं जानती हू लक्ष्मी जानती हू। कौमार्यावस्था मे मातृत्व का बोझ कैसा दुवह होता है, कितना लज्जाजनक!" क्या स्वय अपने ही अ॰ ॰न की

कह हाथ हिलाता निकल गया। लक्ष्मी बड़ी देर तक उसकी सुदीर्घ छाया को देखती रही थी।

"आओ, भीतर आ जाओ लक्ष्मी," लक्ष्मी चौंककर मुड़ी। भाई के जाते ही वैरोनिका का उग्र स्वर ज्वार-भाटे की उन्मुक्त तरंगों की भांति उसी वेग से नम्र हो गया था।

'आओ!' उसका हाथ पकड़ वैरोनिका अकपट स्नेह से उसे भीतर ले गई। द्वार की दोनों चिटखनियां लगा उसने मूर्तिवत् अचल खड़ी लक्ष्मी की ओर स्नेह स्निग्ध दृष्टि से देख, फिर उसी मधुर स्वर मे कहा, 'आओ, मेरे बेडरूम में चलो।"

वैरोनिका के बेडरूम की भव्य सज्जा भी उसके गोल कमरे की सज्जा-सी ही सुघड़ थी। एक चौड़े नक्काशीदार आईना लगे पलग पर स्वच्छ बिस्तर लगा था, पलंगपोश की सपाट बिछावन से लेकर दो ऊंचे तकियों के उत्तुंग उभार मे रौबर्ट के बगले में लगे उसके बिस्तर का-सा प्रमज साम्य था।

"बैठो!" उसने अन्यमनस्क खड़ी लक्ष्मी को हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा दिया और स्वयं पलग पर बैठ गई। कुछ देर तक एक अवांछित चुप्पी की घुटन का बादल कमरे मे तैर गया, फिर वैरोनिका ने ही उस मेघ को अपनी मुक्त हंसी के झोंके से बहा दिया।

"क्यों लक्ष्मी, किस दुख से ट्रेन के नीचे कटने गई थीं? मैं बताऊं?" फिर वह हंसकर उसे छेड़ने के से स्वर मे कहानी सी सुनाने लगी, 'तुम किसी सम्भ्रात गृह की पुत्री हो यह तो मैं तुम्हे देखते ही जान गई थी। शायद, बचपन में ही बहुत उपन्यास पढ़ने लगी थी" अब अपनी पैनी दृष्टि लक्ष्मी के नतमुखी चेहरे पर गड़ा, उसने अपनी अगूठियों से भरी अंगुलियों की कैंची-सी बना घुटने पर धर ली, और एक नकली बनावटी लम्बी सांस खींचकर फिर लक्ष्मी के अतीत का सूत्र थाम लिया, फिर तुम्हारे जीवन मे शायद कोई प्रेमी आया, उपन्यासों के नायक-सा ही सुन्दर —एक डशिंग हीरो और एक दिन तुमने बिना कुछ सोचे-समझे उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, जब उसने तुम्हारी यह अवस्था देखी, तब तुम्हें छोड़कर भाग गया क्या है ना ठीक? मैं जानती हूं लक्ष्मी जानती हूं। कौमार्यावस्था मे मातृत्व का बोझ कैसा दुवह होता है, कितना लज्जाजनक!" क्या स्वयं अपने ही अ नि की

भी नही पूछा था। दूसरे दिन, वह न जाने कब उठकर अपने काम म जुट गई था। जब लक्ष्मी की आखें खुली तब धूप का एक तिकोना टुकडा खिडकी के बन्द पर्दों का अतिक्रमण कर मेज़ पर फल चुका था।

जग गइ लक्ष्मी ? तुम्ह इतनी प्यारी नींद आइ थी कि तुम्हे जगाने का मन ही नही हुआ। आज मेरी ड्यूटी दिन के एक बजे तक है, ढइ तक लौट आऊगी। तुम्हारे लिए रुकी हू, कल रात भी तुमने कुछ नहीं खाया। नहा-धो ला, फिर नाश्ता करेंग।"

"पर मुझे तो भूख ही नही है।" लक्ष्मी की आखें सजल हो गइ।

देखो लक्ष्मी " एप्रन बाधती वैरोनिका ने झुककर उसके चिकने बालों पर स्नेह से हाथ फरा तुम्हें अब एक और की भी चिन्ता करनी है, यह मत सोचा कि तुम अब अपने ही लिए खा-पी रही हो। जो तुम्हारे भीतर एक और प्राणी पल रहा है उसे भूखे रखन का तुम्हें कोई अधिकार नही है, उठो चलो तो जल्दी—आई एम आलरेडी लेट।'

लक्ष्मी उठकर नहाने जाने लगी तो वैरोनिका एक बडे से तौलिय मे एक रेशमी साडी ब्लाउज़, पेटीकोट भी उसे थमा गई।

'अच्छा हुआ, जो ये कपडे मेरे पास पडे थे, कभी बडे शौक से खरीदी थी, पर साडी मुझसे कभी सम्भाली नही। चार-पाच बच्चाओं को वैरोनिका म्यूरी सम्भाल सकती है पर तुम हिन्दुस्तानियों के इस छगज़ी तम्बू-कनात को नहीं। हमेशा यही लगता है कि किसीने कफन लपेट दिया है। अपने कपडे धोकर डाल देना ब्लाउज़ तुम्ह अवश्य बडा होगा पर अभी देख ही कौन रहा है। लौटते में मैं अमीनाबाद से तुम्हारे लिए कपडे लेती आऊगी, पर याद रहे तब ना! अस्पताल पहुचते ही तो सब भूल जाती हू। मिस्टर म्यूरी यह करो, सिस्टर म्यूरी वह करो अब पैरो मे इतनी ताकत रही नही। नही तो कभी एक एक साथ दिन और रात की ड्यूटी निभाई है। यानी एक दिन मे पूरे चौंसठ घण्टे "

सफेद झकाझक कलफ की गई तिरछी टोपी उसके सुनहले भूरे केशो पर ताज-सी टिकी थी, नकली बत्तीसी होने पर भी स्वच्छ हसी थी एकदम असली।

"लो, चाबी तुम रखो, तुम्हारा नाश्ता मेज पर धर गई हू—सब ठीक से खा लेना। यह नही कि अडा अधकच्चा है तो उठाकर सिंक मे बहा दो। तुम्हारे लिए ऐसा ही हाफ बाइल्ड अडा ठीक है।"

भी नही पूछा था। दूसरे दिन, वह न जाने कब उठकर अपने काम म जुट गई था। जब लक्ष्मी की आखें खुली तब धूप का एक तिकोना टुकडा खिडकी के बन्द पर्दों का अतिक्रमण कर मेज पर फल चुका था।

जग गइ लक्ष्मी ? तुम्ह इतनी प्यारी नीद आइ थी कि तुम्ह जगाने का मन ही नही हुआ। आज मेरी ड्यूटी दिन के एक बजे तक है, ढढ़ तक लौट आऊगी। तुम्हारे लिए रुकी हू, कल रात भी तुमने कुछ नहीं खाया। नहा-धो ला, फिर नाश्ता करेंग।"

"पर मुझे तो भूख ही नही है।" लक्ष्मी की आखें सजल हो गइ।

देखो लक्ष्मी " एप्रन बाधती वैरोनिका ने झुककर उसके चिकने बालों पर स्नेह से हाथ फरा तुम्हें अब एक और की भी चिन्ता करनी है, यह मत सोचा कि तुम अब अपने ही लिए खा-पी रही हो। जो तुम्हारे भीतर एक और प्राणी पल रहा है उसे भूसे रखन का तुम्हें कोई अधिकार नही है, उठो चलो तो जल्दी— आई एम आलरेडी लेट।'

लक्ष्मी उठकर नहाने जाने लगी तो वैरोनिका एक बडे से तौलिय मे एक रेशमी साडी ब्लाउज, पेटीकोट भी उसे थमा गई।

'अच्छा हुआ, जो ये कपडे मेरे पास पडे थे, कभी बडे शौक से खरीदी थी, पर साडी मुझसे कभी सम्भाली नही। चार-पाच उच्चाओं को वैरोनिका म्यूरी सम्भाल सकती है पर तुम हिन्दुस्तानियों के इस छगज़ी तम्बू-कनात को नहीं। हमेशा यही लगता है कि किसीने कफन लपेट दिया है। अपने कपडे धोकर डाल देना ब्लाउज़ तुम्ह अवश्य बडा होगा पर अभी देख ही कौन रहा है। लौटते में मैं अमीनाबाद से तुम्हारे लिए कपडे लेती आऊगी, पर याद रहे तब ना! अस्पताल पहुचते ही तो सब भूल जाती हू। मिस्टर म्यूरी यह करो, सिस्टर म्यूरी वह करो अब पैरो मे इतनी ताकत रही नही। नही तो कभी एक एक साथ दिन और रात की ड्यूटी निभाई है। यानी एक दिन मे पूरे चौंसठ घण्टे "

सफेद झकाझक कलफ की गई तिरछी टोपी उसके सुनहले भूरे केशो पर ताज-सी टिकी थी, नकली बत्तीसी होने पर भी स्वच्छ हसी थी एकदम असली।

"लो, चाबी तुम रखो, तुम्हारा नाश्ता मेज पर धर गई हू—सब ठीक से खा लेना। यह नही कि अडा अधकच्चा है तो उठाकर सिंक मे बहा दो। तुम्हारे लिए ऐसा ही हाफ बाइल्ड अडा ठीक है।"

के चिबुक तक उठा लिया और दपतू उग्र सुचिक्कन स्तन-युगल पर भयानक दंत नख-क्षतो के नीले उभरे चक्त्ते वैरोनिका को सहमा गए।

लक्ष्मी, हृदयहीन पति की पाशविकता का पुष्ट प्रमाण देकर मेज पर ही सर रखकर सिसकने लगी।

वैरोनिका, बडी देर तक, सिसकियो से कापती पीठ पर फैले उसके घुघराले केशो पर हाथ फेरती रही।

लक्ष्मी, डोण्ट श्राई माई चाइल्ड! अब तुम्हे कोई भय नहीं है। शायद ईसू ने जान-बूझकर ही तुम्हे मेरे पास भेजा है। आज तक चार सौ निन्यानबे शिशु पृथ्वी पर लाई हू—पाच सौ पूरे करने के पहले—शायद वह मेरी कठिन परीक्षा लेना चाह रहा है। तुम्हें अब कही नहीं जाना होगा। तुम मेरे पास ही रहोगी।" उसे अभयदान देकर फिर वैरोनिका रात भर नही सो पाई थी। उसके गृह मे अचानक किसी आधी सी आ गई उस सुदरी विजातीय किशोरी को देखकर क्या उसके कुतूहली प्रतिवेशी चुप रह पाएंगे? आज तक उसकी प्रतिष्ठा, उसका सुनाम किसी भी प्रकार की टिप्पणी का लक्ष्य नही बने थे, किन्तु कुछ ही महीनों मे लक्ष्मी की अवस्था के स्पष्ट होने पर, क्या उसकी प्रतिष्ठा वैसी ही अम्लान रह पाएगी? आधी रात को ही वह जान गई थी कि देखा, उसकी बगल मे सोई लक्ष्मी की आखों मे भी नींद नही उतरी है।

'लक्ष्मी!" उसने पुकारा।

हू।"

'नीद नही आ रही है क्या?"

लक्ष्मी निरुत्तर पडी रही।

लक्ष्मी, मुझे अभी-अभी एक बात सूझी है मानोगी?"

'कहिए!"

अधकार ही म उसका हाथ टटोलकर वैरोनिका ने थाम लिया "

तुम्हारी अवैध सतान का भविष्य अब भी सभाला जा सकता है लक्ष्मी," वैरोनिका अब उत्तेजित होकर पलग ही पर बैठ गई थी। मैं जानती हू, यह एक अत्यत अभद्र, हृदयहीन प्रस्ताव है, पर तुम रौबट से विवाह कर लो, लक्ष्मी!"

लक्ष्मी का सर्वांग काप उठा था। यह क्या कह रही थी वह!

"हा लक्ष्मी, यही एकमात्र पथ है जो अब तुम्हें और तुम्हारी भावी सतान को

के चिवुक तक उठा लिया और स्वत् उग्र सुचिक्कन स्तन-युगल पर भयानक दंत नख-क्षतो के नीले उभरे चक्त्ते वैरोनिका को सहमा गए।

लक्ष्मी, हृदयहीन पति की पाशविकता का पुष्ट प्रमाण देकर मेज पर ही सर रखकर सिसकने लगी।

वैरोनिका, बडी देर तक, सिसकियो से कापती पीठ पर फैले उसके घुघराले केशो पर हाथ फेरती रही।

लक्ष्मी, डोण्ट क्राई माई चाइल्ड ! अब तुम्हे कोई भय नहीं है। शायद ईसू ने जान-बूझकर ही तुम्हे मेरे पास भेजा है। आज तक चार सौ निन्यानबे शिशु पृथ्वी पर लाई हू—पाच सौ पूरे करने के पहले—शायद वह मेरी कठिन परीक्षा लेना चाह रहा है। तुम्हें अब कही नहीं जाना होगा। तुम मेरे पास ही रहोगी।" उसे अभयदान देकर फिर वैरोनिका रात भर नही सो पाई थी। उसके गृह मे अचानक किसी आधी सी आ गई उस सुदरी विजातीय किशोरी को देखकर क्या उसके कुतूहली प्रतिवेशी चुप रह पाएंगे ? आज तक उसकी प्रतिष्ठा, उसका सुनाम किसी भी प्रकार की टिप्पणी का लक्ष्य नही बने थे, किन्तु कुछ ही महीनों मे लक्ष्मी की अवस्था के स्पष्ट होने पर, क्या उसकी प्रतिष्ठा वैसी ही अम्लान रह पाएगी ? आधी रात को ही वह जान गई थी कि देखा, उसकी बगल मे सोई लक्ष्मी की आखों मे भी नींद नही उतरी है।

'लक्ष्मी !" उसने पुकारा।

हू।"

'नीद नही आ रही है क्या ? "

लक्ष्मी निरुत्तर पडी रही।

लक्ष्मी, मुझे अभी-अभी एक बात सूझी है मानोगी ?"

'कहिए !"

अधकार ही म उसका हाथ टटोलकर वैरोनिका ने थाम लिया था,

तुम्हारी अवैध सतान का भविष्य अब भी सभाला जा सकता है लक्ष्मी," वैरोनिका अब उत्तेजित होकर पलग ही पर बैठ गई थी। मैं जानती हू, यह एक अत्यत अभद्र, हृदयहीन प्रस्ताव है, पर तुम रोबट से विवाह कर लो, लक्ष्मी !"

लक्ष्मी का सर्वांग काप उठा था। यह क्या कह रही थी वह !

"हा लक्ष्मी, यही एकमात्र पथ है जो अब तुम्हें और तुम्हारी भावी सतान को

'तुम्हे इस व्यक्ति की पत्नी बनना स्वीकार है ?" स्वीकार है" नतमुखी लक्ष्मी का धड़कता हुन्य उत्तर के साथ-साथ बाहर छिटका जा रहा था। उसका आद्र स्वर स्वच्छ होन पर भी, चेहरा करुण रुदन की यन्त्रणा से भी अधिक कातर लग रहा था। उसे लग रहा था कि स्वय नियति इसी क्षण उसके जीवन को एक अमोघ निर्देश से सचालित कर रही है।

विवाह के शब्द-समूह उच्चारित करने मे उसके प्रत्येक स्वर मे विवश यन्त्रणा की झकार थी। दानो वडी-वडी काली आखें पल-पल में विस्फारित होती आकण बनी जा रही थीं। लगता था, देवस्थल मे प्रतिष्ठित कोई प्रतिमा ही अपने पाषाण-अधर खोल, बीच-बीच में बुदबुदा रही है। उसके स्वर के साथ-साथ रौबट का गम्भीर स्वर वज्र-सा बज रहा था, तब दोना आखें बन्द किए, लक्ष्मी मन ही मन बुदबुदा रही थी—

विध्यस्था विध्यनिलया दिव्यस्थान निवासिनी।

योगिनी योगमाताश्च, चडिका प्रणमाम्यहम ।।

चिररोगिणी जननी का वही स्वर उसके कानों मे कह रहा था, जखन विपद पडबी खुकू माके एई मन्त्र जापे डाकीश, देखबी सगे-सगे तोर विपद केटे गेछे।" (जब जब विपत्ति आए मुन्नी मा को इसी मन्त्रजाप से पुकारना देखना तेरी सब विपत्ति कट जाएगी।) मा का सिखाया वही मन्त्र वह बार-बार दुहरा रही थी।

अगुली दो बेटी।" फादर ओनूर का शान्त स्वर सुन उसने चौंककर आखें खोली "रौबट तुम्हे अब अगूठी पहनाएगा।"

और फिर लक्ष्मी उसी गम्भीर मुद्रा में गिरजे से लक्ष्मी म्यूरी बनकर वही से रौबट के साथ स्टेशन चली गई थी। वैरोनिका उन्हें छोड़ने आई थी और जब ट्रेन चली तब वह धीर गति से चल रही गाडी के साथ-साथ चलती कहने लगी 'रौबट मैं जानती हू, तुमने आज मेरे लिए कितना बडा त्याग किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इस त्याग की पावनता को सदा अक्षुण्ण रखोगे।'

जीवन भी कैसे अलौकिक आश्चर्यों से भरा है। जिस गृह के द्वार पर वह दो दिन पूर्व आश्रय की भीख मागने खडी थी आज वह उसी गृह की स्वामिनी बनन पर भी, वह उसी असहायता से काप रही थी।

'तुम्हे इस व्यक्ति की पत्नी बनना स्वीकार है ?" स्वीकार है" नतमुखी लक्ष्मी का धड़कता हृदय उत्तर के साथ-साथ बाहर छिटका जा रहा था। उसका आद्र स्वर स्वच्छ होन पर भी, चेहरा करुण रुदन की यन्त्रणा से भी अधिक कातर लग रहा था। उसे लग रहा था कि स्वय नियति इसी क्षण उसके जीवन को एक अमोघ निर्देश से सचालित कर रही है।

विवाह के शब्द-समूह उच्चारित करने मे उसके प्रत्येक स्वर मे विवश यन्त्रणा की झकार थी। दोनो बडी-बडी काली आखें पल-पल में विस्फारित होती आकण बनी जा रही थीं। लगता था, देवस्थल मे प्रतिष्ठित कोई प्रतिमा ही अपने पाषाण-अधर खोल, बीच-बीच में बुदबुदा रही है। उसके स्वर के साथ-साथ रौबट का गम्भीर स्वर वज्र-सा बज रहा था, तब दोना आखें बन्द किए, लक्ष्मी मन ही मन बुदबुदा रही थी—

विध्यस्था विध्यनिलया दिव्यस्थान निवासिनी।
योगिनी योगमाताश्च, चडिका प्रणमाम्यहम ।।

चिररोगिणी जननी का वही स्वर उसके कानों मे कह रहा था, जखन विपद पडबी खुकू माके एई मन्त्र जापे डाकीश, देखबी सगे-सगे तोर विपद केटे गेछे।" (जब जब विपत्ति आए मुन्नी मा को इसी मन्त्रजाप से पुकारना देखना तेरी सब विपत्ति कट जाएगी।) मा का सिखाया वही मन्त्र वह बार-बार दुहरा रही थी।

अगुली दो बेटी।" फादर ओनूर का शान्त स्वर सुन उसने चौंककर आखें खोली "रौबट तुम्हे अब अगूठी पहनाएगा।"

और फिर लक्ष्मी उसी गम्भीर मुद्रा में गिरजे से लक्ष्मी म्यूरी बनकर वही से रौबट के साथ स्टेशन चली गई थी। वैरोनिका उन्हें छोड़ने आई थी और जब ट्रेन चली तब वह धीर गति से चल रही गाडी के साथ-साथ चलती कहने लगी 'रौबट मैं जानती हू, तुमने आज मेरे लिए कितना बडा त्याग किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इस त्याग की पावनता को सदा अक्षुण्ण रखोगे।'

जीवन भी कैसे अलौकिक आश्चर्यों से भरा है। जिस गृह के द्वार पर वह दो दिन पूर्व आश्रय की भीख मागने खडी थी आज वह उसी गृह की स्वामिनी बनन पर भी, वह उसी असहायता से काप रही थी।

मटोल, मक्खन की बट्टी से गढ़े गए भरे-भरे हाथ-पैर। तब कौन कह सकता था कि वैरोनिका का वही गुलगोथना बेटा एक दिन उसका सबसे बड़ा सरदद बन उठेगा! चार पाच दिन के बाद ही हमे उसकी विचित्र गतिविधि देखकर कुछ अटपटा सा लगने लगा। जिन सु दर नीली पुतलियो ने हमे पहले ही दिन मोह लिया था, वे निरन्तर काच की गोलियों-सी घूमने लगी। गोलमटोल चेहरे की भावहीनता, क्रमश स्पष्ट होती चली गई। दिन प्रतिदिन उस भोले द तहीन शिशु का चेहरा किसी दन्तहीन अनुभवी वद्ध का-सा सिकुड़ता चला गया। एक दिन हम दोना जान गए कि वह नामल नहीं है। उसके साथ के बच्चे, घुटनों चलते—आसपास धरी चीजो पर लपकने लगे थे और वह अपनी लटटू-सी घूमती पुतलियों से हमे घूरता हमारे कलेजे में हिमखण्ड बनाता जा रहा था। बुआ के कहने से वैरोनिका ने अपनी नर्सिंग की ट्रेनिंग पूरी कर ली थी। दिन भर अब वह माइक को आया के पास छोड़ अपनी ड्यूटी पर जाने लगी। नाइट-ड्यूटी पर जाती तो मैं उसकी देखभाल करता। कभी अकेले निस्तब्ध रात्रि मे उसकी भयावह भाव-शून्य दृष्टि, हडा-सा सिर और मौन्स्टर की-सी हसी मुझे भयभीत कर जाती। पर धीरे धीरे हम दोनों ने उसके अस्वाभाविक अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। मैं अब उसके भूख से रोने को पहचानने लगा था, उसके करवट चेने के रोने की भाषा नैपी गीले होने का क्रन्दन सब कुछ पहचान मैं कभी दूध की बोतल उसके मुह से लगा देता, कभी करवट बदल देता और कभी नैपी बदल उसकी नन्ही अचल विवश देह को अपनी देह का आश्वासन दे सुला भी देता। मुझे तो आज भी यही लगता है कि वह वैरोनिका से अपने पूर्वजन्म की कोई कठोर शत्रुता निभाने ही आया था। चौबीस सुदीघ वर्षों तक वह निरन्तर उसके जीवन को भी अपने जीवन-सा ही निष्प्राण अर्थहीन बनाता रहा। वह तब तक उसके सुख का माग अवरुद्ध किए पड़ा रहा जब तक उसका यौवन जलकर खाक नही हो गया। जब वह गया तब उसकी अभागिनी जननी के दग्ध यौवन की राख ही शेष थी। वैरोनिका अपूर्व सु दरी थी, एक से एक बाके जवान, उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे, किन्तु उसके उस अमानुष पुत्र का पिता बनने का साहस एक भी नही सजो पाया। जब माइक की मृत्यु हुई तब उसका शरीर, बेड-सोर के भयानक व्रणो से छलनी हो चुका था। दुग घ के भभाके से त्रस्त हो, कभी-कभी मुझे वैरोनिका की उपस्थिति में ही नाक पर रूमाल धरना पड़ा। पर वैरोनिका मास

मटोल, मक्खन की बट्टी से गढ़े गए भरे-भरे हाथ-पैर। तब कौन कह सकता था कि वैरोनिका का वही गुलगोथना बेटा एक दिन उसका सबसे बडा सरदद बन उठेगा! चार पाच दिन के बाद ही हमे उसकी विचित्र गतिविधि देखकर कुछ अटपटा सा लगने लगा। जिन सुन्दर नीली पुतलियो ने हमे पहले ही दिन मोह लिया था, वे निरन्तर काच की गोलियों-सी घूमने लगी। गोलमटोल चेहरे की भावहीनता, क्रमश स्पष्ट होती चली गई। दिन प्रतिदिन उस भोले दन्तहीन शिशु का चेहरा किसी दन्तहीन अनुभवी वृद्ध का-सा सिकुडता चला गया। एक दिन हम दोना जान गए कि वह नामल नहीं है। उसके साथ के बच्चे, घुटनों चलते—आसपास धरी चीज़ो पर लपकने लगे थे और वह अपनी लटटू-सी घूमती पुतलियों से हमे घूरता हमारे कलेजे में हिमखण्ड बनाता जा रहा था। बुआ के कहने से वैरोनिका ने अपनी नर्सिंग की ट्रेनिंग पूरी कर ली थी। दिन भर अब वह माइक को आया के पास छोड अपनी ड्यूटी पर जाने लगी। नाइट-ड्यूटी पर जाती तो मैं उसकी देखभाल करता। कभी अकेले निस्तब्ध रात्रि मे उसकी भयावह भाव-शून्य दृष्टि, हडा-सा सिर और मौन्स्टर की-सी हसी मुझे भयभीत कर जाती। पर धीरे धीरे हम दोनों ने उसके अस्वाभाविक अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। मैं अब उसके भूख से रोने को पहचानने लगा था, उसके करवट लेने के रोने की भाषा नैपी गीले होने का क्रन्दन सब कुछ पहचान मैं कभी दूध की बोतल उसके मुह से लगा देता, कभी करवट बदल देता और कभी नैपी बदल उसकी नन्ही अचल विवश देह को अपनी देह का आश्वासन दे सुला भी देता। मुझे तो आज भी यही लगता है कि वह वैरोनिका से अपने पूर्वजन्म की कोई कठोर शत्रुता निभाने ही आया था। चौबीस सुदीर्घ वर्षों तक वह निरन्तर उसके जीवन को भी अपने जीवन-सा ही निष्प्राण अर्थहीन बनाता रहा। वह तब तक उसके सुख का भाग अवरुद्ध किए पडा रहा जब तक उसका यौवन जलकर खाक नही हो गया। जब वह गया तब उसकी अभागिनी जननी के दग्ध यौवन की राख ही शेष थी। वैरोनिका अपूर्व सुन्दरी थी, एक से एक बाके जवान, उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे, किन्तु उसके उस अमानुष पुत्र का पिता बनने का साहस एक भी नही सजो पाया। जब माइक की मृत्यु हुई तब उसका शरीर, बेड-सोर के भयानक व्रणो से छलनी हो चुका था। दुर्गन्ध के भभाके से त्रस्त हो, कभी-कभी मुझे वैरोनिका की उपस्थिति में ही नाक पर रूमाल धरना पडा। पर वैरोनिका मास

था, अन्त की मर्मान्तक पीड़ा में, दोनों घुटने तब भी उसी मुद्रा में मुड़े-तुड़े ऊपर उठे रह गए थे। बड़ी कोशिश से मैंने उन्हें सीधा किया। वैरोनिका पागल-सी हो गई थी कभी मुझपर बरसती, कभी आया पर, रौबर्ट, तुम्हीं मुझे जबरदस्ती सिनेमा ले गए थे—पता नहीं, जाने से पहले मेरा बच्चा मुझसे क्या कहना चाहता था।'

'जन्म से ही मूक-बधिर मेरा भानजा उससे अन्त समय कह ही क्या सकता था? पर शायद वह ठीक ही कह रही थी। उसकी निरन्तर घूमती पुतलियों में कभी कभी सचमुच ही वाणी उभर आती थी। कभी वह उन्हीं आंखों से हमारे गले लिपटता हंसता, हमसे रूठता और हमें मनाता था। क्या पता जाते-जाते उन्हीं आंखों से अपनी मां से कुछ कह ही जाता। उसकी मौत के बाद वैरोनिका एकदम ही टूट गई। उसका बेटा ही उससे नहीं छिना उसके उस बर्बर प्रेमी का स्मृति चिह्न भी उससे सदा के लिए छिन गया जिसे वह शायद आज भी उतना ही प्रेम करती है, जितना तीस वर्ष पूर्व करती थी। फिर धीरे धीरे मेरी उस कमठ बहन ने ज़िन्दगी से जूझने के लिए जो गर्दन उठाई वह आज तक नहीं झुकाई। मैंने कहा था कि वह जब भी कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेती है तब उसकी वही दैवी शक्ति उसकी जीभ पर आकर बैठ जाती है। जब उसने अपना यह विचित्र प्रस्ताव मेरे सम्मुख रखा तब मेरा पहला शब्द यही था— नहीं वैरोनिका, तुम्हारा दिमाग सचमुच ही सठिया गया है—'सेनाइल डिके' इसे ही कहते हैं।'

'नहीं बॉबी' उसका दृढ़ स्वर थप्पड़ सा मेरा मुंह बन्द कर गया था, 'ईश्वर की यही इच्छा है और उसकी इच्छा महान है।'

जानती हो मैं तीस वर्ष का हूं और वह लड़की शायद सत्रह की भी नहीं है।'

'जानती हूं।'

'और यह भी जानती हो वैरोनिका कि यह किसी की पत्नी है? क्या यह अन्याय नहीं है? क्या यह उसकी विवश परिस्थितियों का फायदा उठाना नहीं है? तुमसे यदि कोई कहे कि तुम किसी विजातीय से विवाह कर अपना धर्म परित्याग कर दो, तो क्या तुम मान जाओगी? वह भी ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे दो दिन पहले तक तुमने कभी देखा भी नहीं था।'

सब जानती हूं बाबी!" उसका कण्ठस्वर उतना ही शान्त था, पर मैं बार-

था, अन्त की ममी तक पीड़ा में, दोनों घुटने तब भी उसी मुद्रा में मुड़े-तुड़े ऊपर उठे रह गए थे। बड़ी कोशिश से मैंने उन्हें सीधा किया। वैरोनिका पागल-सी हो गई थी कभी मुझपर बरसती, कभी आया पर, रौबर्ट, तुम्हीं मुझे जबरदस्ती सिनेमा ले गए थे—पता नहीं, जाने से पहले मेरा बच्चा मुझसे क्या कहना चाहता था।'

'जन्म से ही मूक-बधिर मेरा भान्जा उससे अन्त समय कह ही क्या सकता था ? पर शायद वह ठीक ही कह रही थी। उसकी निरन्तर घूमती पुतलियों में कभी कभी सचमुच ही वाणी उभर आती थी। कभी वह उन्हीं आंखों से हमारे गले से लिपटता हसता, हमसे रूठता और हम मनाता था। क्या पता जाते-जाते उन्हीं आंखों से अपनी मां से कुछ कह ही जाता। उसकी मौत के बाद वैरोनिका एकदम ही टूट गई। उसका बेटा ही उससे नहीं छिना उसके उस बचपन प्रेमी का स्मृति चिह्न भी उससे सदा के लिए छिन गया जिसे वह शायद आज भी उतना ही प्रेम करती है, जितना तीस वर्ष पूर्व करती थी। फिर धीरे धीरे मेरी उस कमठ बहन ने ज़िन्दगी से जूझने के लिए जो गर्दन उठाई वह आज तक नहीं झुकाई। मैंने कहा था कि वह जब भी कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेती है तब उसकी वही दैवी शक्ति उसकी जीभ पर आकर बैठ जाती है। जब उसने अपना यह विचित्र प्रस्ताव मेरे सम्मुख रखा तब मेरा पहला शब्द यही था— नहीं वैरोनिका, तुम्हारा दिमाग सचमुच ही सठिया गया है—'सैनाइल डिके इसे ही कहते हैं।'

' नहीं बॉबी ' उसका दृढ स्वर थप्पड़ सा मेरा मुंह बन्द कर गया था, 'ईश्वर की यही इच्छा है और उसकी इच्छा महान है।'

जानती हो मैं तीस वर्ष का हूं और वह लड़की शायद सत्रह की भी नहीं है।'

' 'जानती हूं।'

' और यह भी जानती हो वैरोनिका कि वह किसीकी पत्नी है ? क्या यह अन्याय नहीं है ? क्या यह उसकी विवश परिस्थितियों का फायदा उठाना नहीं है ? तुमसे यदि कोई कहे कि तुम किसी विजातीय से विवाह कर अपना धर्म परित्याग कर दो, तो क्या तुम मान जाओगी ? वह भी ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे दो दिन पहले तक तुमने कभी देखा भी नहीं था।'

सब जानती हूं बाबी !" उसका कण्ठस्वर उतना ही शान्त था, पर मैं बार-

के बहुमूल्य पात्र को ऐसे सहेजकर रख रहा हो कि वह टूट न जाए।

उसके जाते ही लक्ष्मी ने द्वार बन्द किया, फिर हृदय में सहसा अंकुर-सा उभरा। न जाने कौन-सा विकार उसे दर्पण के सम्मुख खींच ले गया। दर्पण पर दृष्टि पड़ते ही स्वयं उसका अबोध चित्त उससे कैफियत मांगने लगा तो वह खिसिया गई। हाथ ही से उड़े बिखरे बालों की पाटी बिठा उसने साड़ी ठीक की। वेरोनिका ने ही उसे वह नन्हे सितारों-जड़ी सफेद साड़ी पहना दी थी—"हमारे यहां, नववधू श्वेत परिधान ही धारण करती है, लक्ष्मी।" गले में फिर उसने सोने की क्रॉस-जड़ी अपनी दिवंगता जननी की चेन पहनाकर कहा था, 'इसे कभी मत खोलना, यह ममी की है, उनकी बड़ी इच्छा थी कि बॉबी की वधू को अपने हाथ से यह चेन पहनाएंगी।"

रॉबर्ट ने द्वार खटखटाया तो लक्ष्मी चौंकी। "कौन ?" उसने पूछा।

मैं हूं, तुम्हारा पति!" रॉबर्ट के उत्तर के साथ ही उसकी दबी हंसी की धमक सुनकर लक्ष्मी ने द्वार खोल दिया।

रॉबर्ट की निष्पाप ठिठोली से उसके कपोल ऐसे दग्ध हुए जा रहे थे कि जी में आ रहा था, नोचकर दूर फेंक दे।

भीतर आ, हाथ के दोनों ठोंगे मेज पर धर, वह लक्ष्मी के गम्भीर-आरक्त चेहरे को देख हंसकर कहने लगा, "बुरा मान गईं क्या ? जानती हो मैंने ऐसा क्यों कहा ? एक बार महारानी विक्टोरिया के पति प्रिन्स एलबर्ट अपने कमरे के द्वार बन्द कर किसी काम में लगे थे। महारानी आईं और उन्होंने पति का द्वार खटखटाया

" 'कौन ?' उसने पूछा।

'क्वीन आफ इंग्लैण्ड!' स्वर में राजमहिषी की कड़क थी।

' 'कौन ?

विक्टोरिया!' स्वर कुछ नम्र पड़ा।

" कौन ?' अब प्रश्न के स्वर में शाही अकड़ थी।

' 'तुम्हारी पत्नी!'

' उसी क्षण द्वार खुल गया। इसीसे, मैंने सोचा, व्यर्थ ही खतरा क्यों मोल लूं ? पहले ही क्यों न कह दूं—तुम्हारा पति!'

के बहुमूल्य पात्र को ऐसे सहेजकर रख रहा हो कि वह टूट न जाए।

उसके जाते ही लक्ष्मी ने द्वार बन्द किया, फिर हृदय में सहसा अंकुर-सा उभरा। न जाने कौन-सा विचार उसे दर्पण के सम्मुख खींच ले गया। दर्पण पर दृष्टि पड़ते ही स्वयं उसका अबोध चित्त उससे कैफियत मांगने लगा तो वह खिसिया गई। हाथ ही से उड़े बिखरे बालों की पाटी बिठा उसने साड़ी ठीक की। वेरोनिका ने ही उसे वह नन्हे सितारों-जड़ी सफेद साड़ी पहना दी थी—"हमारे यहां, नववधू श्वेत परिधान ही धारण करती है, लक्ष्मी।" गले में फिर उसने सोने की क्रॉस-जड़ी अपनी दिवंगता जननी की चेन पहनाकर कहा था, ' इसे कभी मत खोलना, यह ममी की है, उनकी बड़ी इच्छा थी कि बॉबी की बहू को अपने हाथ से यह चेन पहनाएंगी।"

रोबर्ट ने द्वार खटखटाया तो लक्ष्मी चौंकी। "कौन ?" उसने पूछा।

मैं हूं, तुम्हारा पति!" रोबर्ट के उत्तर के साथ ही उसकी दबी हंसी की खनक सुनकर लक्ष्मी ने द्वार खोल दिया।

रोबर्ट की निष्पाप ठिठोली से उसके कपोल ऐसे दग्ध हुए जा रहे थे कि जी में आ रहा था, नोचकर दूर फेंक दे।

भीतर आ, हाथ के दोनों ठोंगे मेज पर धर, वह लक्ष्मी के गम्भीर-आरक्त चेहरे को देख हंसकर कहने लगा, "बुरा मान गई क्या ? जानती हो मैंने ऐसा क्यों कहा ? एक बार महारानी विक्टोरिया के पति प्रिन्स एलबर्ट अपने कमरे के द्वार बन्द कर किसी काम में लगे थे। महारानी आई और उन्होंने पति का द्वार खटखटाया

" 'कौन ?' उसने पूछा।

'क्वीन आफ इंग्लैण्ड !' स्वर में राजमहिषी की कड़क थी।

' कौन ?

विक्टोरिया !' स्वर कुछ नम्र पड़ा।

" कौन ?' अब प्रश्न के स्वर में शाही अकड़ थी।

' 'तुम्हारी पत्नी !'

' उसी क्षण द्वार खुल गया। इसीसे, मैंने सोचा, व्यर्थ ही खतरा क्यों मोल लूं ? पहले ही क्यों न कह दूं—तुम्हारा पति !'

सका मन नही कर रहा था। इस बीच उसने रौबट के अव्यवस्थित गृह की
ाया पलट कर दी थी। रौबट के जाते ही वह उसकी एक पुरानी कमीज को
ास मे लपेट ऊची दीवारों पर लगे मकडी के जालों को साफ करने मे जुट गई
ी फिर एक एक कर उसने पख बिजली के बल्ब तस्वीरों के काच चमकाए,
त्रटियो पर से कपडे हटाकर उन्हे तहाया फिर जब कुछ करने को नही रहा तब
गीचे का झाड झखाड साफ करने म जुट गई। रौबट लौटा तो झकाझक चमक
रह कमरो की सुव्यवस्था देख दोनो हाथ कमर पर धर हसकर कहने लगा,
वाह लक्ष्मी जी म आ रहा है तुमसे कहू अब तुम लखनऊ मत जाओ।"

फिर अचानक ही उसे लगा वह कोई गलत बात कह गया है। 'वैरोनिका
कह रही थी तुम इण्टर कर चुकी हो वह जितनी जल्दी हो सके तुम्हारा दाखिला
यूनिवर्सिटी म कराना चाहती है। ठीक ही है एक बार यूनिवर्सिटी ज्वाइन कर
लोगी तो तुम्हारी पढाई का सिलसिला लगा रहेगा

पर जब लखनऊ जाने के दिन ताला लगाकर लक्ष्मी रौबट के साथ चलने
को उद्यत हुई तब स्वय ही तीन दिन की ममता उसके पैरों मे बेडिया बन लिपट
गई। उसे उस क्षण अपने चित्त की दुबलता पर क्षोभ भी हुआ था। जिसके साथ
उसने कभी जीवन के अच्छे बुरे पूरे तीन सौ पैंसठ दिन बिताए थे जिसके प्रेम म
उन्मत्त हो वह पिता के गृह की ममता भूल बिसरकर निकल आई थी जिसकी
सन्तान उसके गर्भ मे प्रतिपल बढ रही थी उसे उसके अकृतज्ञ हृदय ने एक बार
भी याद नही किया था और इस तीन चार दिन के परिचित विदेशी की सरलता-
स्नेह का बन्धन उसे पग पग पर जकड रहा था। कल-परसो यदि इससे भी
आकर्षक कोई और अजनबी उसे टकरा गया तो क्या वह उसे भी भूल ऐसे ही
उसके पीछे चल देगी ? मार्ग भर उसका दुबल अन्त करण उसे चाबुक मारता
गया था। रौबट ने भी उसके आकस्मिक परिवतन को पकड लिया था। किसी
विस्मृत क्रन्दन की व्यथा ट्रेन म बैठते ही उसके चेहरे को म्लान कर गई थी।
रौबट को कुछ विस्मय भी हुआ था और वह विचलित भी हो गया था। तीन दिनो
म जो परिचय घनिष्ठ होता बडी स्वाभाविक अन्तरगता से उस अपरिचिता के
चेहरे को सहज बना गया था वह देखते ही देखते न जाने कहा उड गया और वह
एक बार फिर अनजान बन बैठी थी। किन्तु रौबट को उसके रूखे व्यवहार से भी
झुझलाहट नही हुई, प्रगाढ समवेदना से ही उसका हृदय पिघल उठा था। उसके

सका मन नही कर रहा था। इस बीच उसने रौबट के अव्यवस्थित गृह की काया पलट कर दी थी। रौबट के जाते ही वह उसकी एक पुरानी कमीज को घास मे लपेट ऊची दीवारों पर लगे मकडी के जालों को साफ करने मे जुट गई थी फिर एक एक कर उसने पखे बिजली के बल्ब तस्वीरों के काच चमकाए, कुर्सियो पर से कपडे हटाकर उन्हे नहाया फिर जब कुछ करने को नही रहा तब बगीचे का झाड झखाड साफ करने म जूट गई। रौबट लौटा तो झकाझक चमक रहे कमरो की सुव्यवस्था देख दोनो हाथ कमर पर धर हसकर कहने लगा, वाह लक्ष्मी जी म आ रहा है तुमसे कहू अब तुम लखनऊ मत जाओ।"

फिर अचानक ही उसे लगा वह कोई गलत बात कह गया है। 'वैरोनिका कह रही थी तुम इण्टर कर चुकी हो वह जितनी जल्दी हो सके तुम्हारा दाखिला यूनिवर्सिटी म कराना चाहती है। ठीक ही है एक बार यूनिवर्सिटी ज्वाइन कर लोगी तो तुम्हारी पढाई का सिलसिला लगा रहेगा

पर जब लखनऊ जाने के दिन ताला लगाकर लक्ष्मी रौबट के साथ चलने को उद्यत हुई तब स्वय ही तीन दिन की ममता उसके पैरो मे बेडिया बन लिपट गई। उसे उस क्षण अपने चित्त की दुबलता पर क्षोभ भी हुआ था। जिसके साथ उसने कभी जीवन के अच्छे बुरे पूरे तीन सौ पैंसठ दिन बिताए थे जिसके प्रेम म उन्मत्त हो वह पिता के गृह की ममता भूल बिसरकर निकल आई थी जिसकी सन्तान उसके गभ मे प्रतिपल बढ रही थी उसे उसके अकृतज्ञ हृदय ने एक बार भी याद नही किया था और इस तीन चार दिन के परिचित विदेशी की सरलता-स्नेह का बन्धन उसे पग पग पर जकड रहा था। कल-परसो यदि इससे भी आकषक कोई और अजनबी उसे टकरा गया तो क्या वह उसे भी भूल ऐसे ही उसके पीछे चल देगी ? माग भर उसका दुबल अन्त करण उसे चाबुक मारता गया था। रौबट ने भी उसके आकस्मिक परिवतन को पकड लिया था। किसी विस्मृत क्रन्दन की व्यथा ट्रेन म बैठते ही उसके चेहरे को म्लान कर गई थी। रौबट को कुछ विस्मय भी हुआ था और वह विचलित भी हो गया था। तीन दिनो म जा परिचय घनिष्ठ होता वडी स्वाभाविक अन्तरगता से उस अपरिचिता के चेहरे को सहज बना गया था वह देखते ही देखते न जाने कहा उड गया और वह एक बार फिर अनजान बन बैठी थी। किन्तु रौबट का उसके रूखे व्यवहार से भी झुझलाहट नही हुई, प्रगाढ समवेदना से ही उसका हृदय पिघल उठा था। उसके

बचकाना निर्दोष चेहरे को देखते ही उसका हृदय ममता से छलक उठता। उसे देखकर कौन कह सकता था कि यह चुपचाप गम्भीर लड़की किसी अकर्मण्य शराबी का हाथ पकड़ घर से निकल पड़ी होगी? उसके भावी प्रसव की चिन्ता भी कभी-कभी वरोनिका को सहमा देती। उसने एक से एक कठिन प्रसव निबटाए थे किन्तु जब भी उसकी दृष्टि उस दुबल लड़की के उभार पर पड़ती, वह मन ही मन त्रास बना, ईसू का स्मरण करती। कहीं इसे कुछ हो गया तब? किन्तु अन्त तक कुछ हुआ नहीं था।

लक्ष्मी तुम्हारे इसी लेबर से अधिक समय तो शायद किसी डेन्टिस्ट को दाँत उखाड़ने में लगता होगा।' बाद में उसने उससे हँसकर कहा था। अपनी नवजात नन्ही चुहिया-सी कन्या को देखकर जब लक्ष्मी ने विरक्ति से मुँह फेर लिया तब वेरोनिका ने उसे डाँटकर कहा था क्या कर रही हो लक्ष्मी? ला दूध पिलाओ इसे।'

नहीं-नहीं मर जाने दो इसे—मैं दूध नहीं पिलाऊँगी" पुत्री का देखते ही उसके पिता का कुटिल चेहरा उसकी आँखों में तैर गया था।

'पागलपन मत करो लक्ष्मी देखो भगवान ने तुम्हें कैसी प्यारी बच्ची दी है—एक दिन तुम इसीका मुँह देखकर जीवन का सब दुख-कष्ट भूल जाओगी। भगवान की दी गई वस्तु का अपमान करना महापाप है लक्ष्मी!' उसे समझा बुझाकर वरोनिका घर लौट आई थी और अपनी मोटी डायरी के पृष्ठ में उसने लिखा था

रौबर्ट और लक्ष्मी का पुत्री-लाभ
जन्म—क्रिसमस के प्रात काल
वजन—पाँच पाउण्ड
रंग—उज्ज्वल

वही पाँच पाउण्ड की क्षीणकाया कन्या जब हृष्ट-पुष्ट हो सात महीने में ही घुटनों चलकर बैठने लगी तब लक्ष्मी सचमुच ही अपने अतीत की व्यथा भूल-बिसर गई।

वेरोनिका ने, न जाने कितनी बार उसके नाम बदल दिए थे, कभी ब्यूटी, कभी बोनी और कभी एम्बर, पर लक्ष्मी ने, तीसरे ही दिन उसका नाम धर दिया

बचकाने निर्दोष चेहरे को देखते ही उसका हृदय ममता से छलक उठता। उसे देखकर कौन कह सकता था कि यह चुपचाप गम्भीर लड़की किसी अकर्मण्य शराबी का हाथ पकड़ घर से निकल पड़ी होगी? उसके भावी प्रसव की चिन्ता भी कभी-कभी वरोनिका को सहमा देती उसने एक से एक कठिन प्रसव निबटाए थे किन्तु जब भी उसकी दृष्टि उस दुबल लड़की के उभार पर पड़ती, वह मन ही मन त्रास बना, ईसू का स्मरण करती। कहीं इसे कुछ हो गया तब? किन्तु अन्त तक कुछ हुआ नहीं था।

लक्ष्मी तुम्हारे इसी लेबर से अधिक समय तो शायद किसी डेन्टिस्ट को दांत उखाड़ने में लगता होगा।' बाद में उसने उससे हंसकर कहा था। अपनी नवजात नन्ही चुहिया-सी कन्या को देखकर जब लक्ष्मी ने विरक्ति से मुह फेर लिया तब वेरोनिका ने उसे डांटकर कहा था क्या कर रही हो लक्ष्मी? ला दूध पिलाओ इसे।'

नहीं-नहीं मर जाने दो इसे—मैं दूध नहीं पिलाऊंगी" पुत्री को देखते ही उसके पिता का कुटिल चेहरा उसकी आंखों में तैर गया था।

'पागलपन मत करो लक्ष्मी देखो भगवान ने तुम्हें कैसी प्यारी बच्ची दी है—एक दिन तुम इसीका मुंह देखकर जीवन का सब दुख-कष्ट भूल जाओगी। भगवान की दी गई वस्तु का अपमान करना महापाप है लक्ष्मी!' उसे समझा बुझाकर वरोनिका घर लौट आई थी और अपनी मोटी डायरी के पृष्ठ में उसने लिखा था

रोबर्ट और लक्ष्मी का पुत्री-लाभ
जन्म—क्रिसमस के प्रात काल
वजन—पांच पाउण्ड
रंग—उज्ज्वल

वही पांच पाउण्ड की क्षीणकाया कन्या जब हृष्ट-पुष्ट हो सात महीने में ही घुटनों चलकर बैठने लगी तब लक्ष्मी सचमुच ही अपने अतीत की व्यथा भूल-बिसर गई।

वेरोनिका ने, न जाने कितनी बार उसके नाम बदल दिए थे, कभी ब्यूटी, कभी बौनी और कभी एम्बर, पर लक्ष्मी ने, तीसरे ही दिन उसका नाम धर दिया

को उपके पाश्व के पलग मे सुला लक्ष्मी गोल कमरे में परीक्षा की कापिया जाच रही था। कापिया जाचते-जाचते उसे समय का ध्यान ही नहीं रहा। सहसा घटी देखी तो बारह बज गए थे। वह उठकर बत्ती बुझाने आ ही रही थी कि उसे लगा किसी ने द्वार पर मृदु आघात किया है।

'कौन ?" चौककर उसने पूछा। कोई उत्तर न पाकर उसने बत्ती बुझाने स्विच की ओर हाथ बढाया ही था कि फिर द्वार पर दस्तक हुई। दूर कहीं कुत्ता भौंका और साथ ही द्वार की दरार से बाहर हिल रही किसी छाया का आभास पाकर वह उठ गई।

कौन है बोलते क्यों नहा ? मार्ग्रेट हो क्या ?" प्रतिवेशी पादरी की गूगी नौकरानी, मार्ग्रेट प्राय ही रात-बेरात कभी दूध और कभी जामन मागने ऐसे ही द्वार खटखटाकर चुपचाप खडी हो जाती थी।

कौन है ?" इस बार लक्ष्मी का झुझलाया स्वर सुनकर वैरोनिका भी जग गई 'कौन है लक्ष्मी ?" उसने पूछा।

वही मार्ग्रेट होगी और कौन हो सकता है इतनी रात ! रोज आधी रात का वही तो ऐसे कुण्डी खटखटाकर, गूगी बनी खडी हो जाती है। पता नहीं, कैसे इसकी बिल्ली रोज आधी रात को आकर इटके साहब का दूध पी जाती है। कौन है ? जब तक तू हू' नहीं करेगी, मैं आज दरवाजा नहीं खोलूगी, मार्ग्रेट—कौन है ?"

"मैं हू तुम्हारा पति ' उस परिहासिक्त हसी की मीठी खनक लक्ष्मी के पाच वष पूव के स्मृति द्वार की अर्गला खटखटा गई। उसे लगा, वह सिर से पैर तक काप रही है। बिना द्वार खोले ही उसने बन्द कपाटों पर अपना चकराता सर रख दिया।

अब तो खोलो, कितनी देर बाहर ठण्ड में खडा रखोगी ? कह तो दिया—मैं हू तुम्हारा पति !

लक्ष्मी ने द्वार खोल दिया।

दीवार पर पड रही आगतुक की सुदीघ छाया क्रमश निकट आई, छोटी होती चली गई। वह हसता-हसता उसके सम्मुख खडा हो गया। लम्बा ओवरकोट, वही आकषक स्निग्ध चेहरा, अधरों पर द्विधास्नात स्मित, और फीरोजी पुतलियो

को उसके पार्श्व के पलंग में सुला लक्ष्मी गोल कमरे में परीक्षा की कापियां जांच रही थी। कापियां जांचते-जांचते उसे समय का ध्यान ही नहीं रहा। सहसा घड़ी देखी तो बारह बज गए थे। वह उठकर बत्ती बुझाने जा ही रही थी कि उसे लगा किसी ने द्वार पर मृदु आघात किया है।

'कौन ?" चौंककर उसने पूछा। कोई उत्तर न पाकर उसने बत्ती बुझाने स्विच की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि फिर द्वार पर दस्तक हुई। दूर कहीं कुत्ता भौंका और साथ ही द्वार की दरार से बाहर हिल रही किसी छाया का आभास पाकर वह उठ गई।

कौन है बोलते क्यों नहीं ? मार्ग्रेट हो क्या ?" प्रतिवेशी पादरी की गूंगी नौकरानी, मार्ग्रेट प्रायः ही रात-बेरात कभी दूध और कभी जामन मांगने ऐसे ही द्वार खटखटाकर चुपचाप खड़ी हो जाती थी।

कौन है ?" इस बार लक्ष्मी का झुंझलाया स्वर सुनकर वैरोनिका भी जग गई 'कौन है लक्ष्मी ?" उसने पूछा।

वही मार्ग्रेट होगी और कौन हो सकता है इतनी रात ! रोज आधी रात का वही तो ऐसे कुण्डी खटखटाकर, गूंगी बनी खड़ी हो जाती है। पता नहीं, कैसे इसकी बिल्ली रोज आधी रात को आकर इसके साहब का दूध पी जाती है। कौन है ? जब तक तू 'हूं' नहीं करेगी, मैं आज दरवाजा नहीं खोलूंगी, मार्ग्रेट— कौन है ?"

"मैं हूं तुम्हारा पति ' उस परिहासयसिक्त हंसी की मीठी खनक लक्ष्मी के पांच वर्ष पूर्व के स्मृति द्वार की अर्गला खटखटा गई। उसे लगा, वह सिर से पैर तक कांप रही है। बिना द्वार खोले ही उसने बन्द कपाटों पर अपना चकराता सर रख दिया।

अब तो खोलो, कितनी देर बाहर ठण्ड में खड़ा रखोगी ? कह तो दिया— मैं हूं तुम्हारा पति !

लक्ष्मी ने द्वार खोल दिया।

दीवार पर पड़ रही आगंतुक की सुदीर्घ छाया क्रमशः निकट आई, छोटी होती चली गई। वह हंसता-हंसता उसके सम्मुख खड़ा हो गया। लम्बा ओवरकोट, वही आकर्षक स्निग्ध चेहरा, अधरों पर द्विधास्नात स्मित, और फीरोजी पुतलियों

रहा था।

वह हँस 'क्या तुम्हें ि बीमार रेग रहा है क्या ?

वरोनिका ने अपना पतला ओठ भी~ लिए क्रोध आने पर उसकी यह भंगिमा रौबर्ट और ~मी दोनों पहचानते थे।

इन पाच वर्षों में तुमने मेरी उम्र दस वर्ष घटा दी है बॉबी जानते हो ?' और फिर वह उ ा को नहीं रोक सकी वहीं कुर्सी पर बैठ दोनों हाथों में मुह छिपा बुरी तरह हर र्ष ' न जाने कितने महीनों से सो नहीं पाई हू। कभी भी जोड़ द्वार खटखटा ~ ग ता यही सोचती थी ि तुम आ गए और निश्चय ही तुम्हारा एक्सिडेंट हो गया होगा और लोग जू म नचपथ तुम्हारी लाश लाए होंगे।'

वाह क्या बढ़िया बात सोचती थी मे~ लिए! पर यह तो तुम्हारी पुरानी आदत थी वैरोनिका! मुझे जब कभी स्कूल से लौटने में देर होती तब भी तुम्हें यही धनास सूझती थी।'

पाच साल, पूरे पाच साल, जरा सोचो तो भी!" वैरोनिका रुमाल में नाक सिनकती स्वगत बोलती चली जा रही थी जैसे उसने रौबर्ट की बात ही न सुनी हो। जस्ट थिंक आफ इट---जिस बहू ने तुम्हें पाच साल की उम्र से पाला उसे दूसरा बढ़िया तोहफा तुम भला दे ही क्या सकते थे! मेरी न सोचता, इस गरीब लड़की का भी क्या तुम्हें ध्यान नहीं आया? पास पड़ोस भी तो है यह तो है नहीं कि हम रेगिस्तान में रहती हूँ। समाज को थोड़े ही ि ा तक छला जा सकता है दादी हमेशा नहीं। सब पूछते थे---यह कैसा विवाह किया है रौबर्ट ने! गिर्जे से लौटकर, फिर बहू का मुह ही नहीं देखा!'

अच्छा-अच्छा अब बहुत हो गया कुछ दिलाजोगी मिलाजोगी नहीं क्या?'

नौकरी? नौकरी को क्या लात मार दी तूने?" ~ ोनि ा ने कई वर्षों से उबलते प्रश्न का उफान बढ़ ही नहा रहा था, रलवे की नौकरी में ग्रेच्युटी ही तो मिलती है, उसे भी गवा दिया तूने अब बुढ़ापा कैसे काटेगा? वरोनिका क्या अमर बूटी खाकर आई है?'

"मुझे गोआ में बहुत अच्छी नौकरी मिल गई है वेरोनि ा तुम्हें मेरी नौकरी की चिन्ता नहीं करनी होगी।'

दूसरे दिन, लक्ष्मी कॉलेज गई तो रौबट सो रहा था। जब वह लौटी तब रौबट सुरगमा को गोद में लिए तस्वीरों की किताब दिखा रहा था। उसे देखते ही सुरगमा भागकर आ गई, "मा-मा जानती हो कौन आया है ? मेरे डैडी आए हैं, कहते हैं मुझे आज घुमाने ले चलेंगे "

लक्ष्मी का चेहरा लाल पड़ गया, 'अच्छा-अच्छा, छोड़ मेरी साडी, भीतर भी आने दोगी या नहा ?" लक्ष्मी ने द्वार अवरुद्ध किए खडी सुरगमा को हाथ पकडकर हटा दिया।

"और जानती हो, आण्टी क्या कह रही हैं ? कहा है न, आज मे मैं न तुम्हारे पास सोऊगी, न आण्टी के पास ! मैं डैडी के साथ सोऊगी " उसका नन्हा भोला चेहरा आनन्द से उल्लसित हो उठा था।

लक्ष्मी का कलेजा धडकने लगा। तब क्या अभी भी वैरोनिका उस अबोध बच्ची के माध्यम से उसे रौबट की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा कर रही थी ?

'आओ लक्ष्मी मैंने तुम्हारे लिए चाय बना दी है, वैरानिका अभी नहीं लौटी, पीकर देखो कैसी बनी है ! गोवा म रहकर, चाय बनाना खूब सीख गया हू।"

'डैडी, अब तो मा भी आ गई घुमाने कब ले चलोगे ?" सुरगमा ऐसी अन्त रगता स उसकी गोद मे चढकर मचलने लगी जैसे वर्षों से उसे जानती हो।

"मैं तुम्हें जरूर ले चलूगा डार्लिंग पर अभी नहीं—आण्टी अस्पताल से आ जाए तब !"

'जा अभी बाहर जाकर खेल देख तेरी दोस्त आई है ' सुरगमा पहले मा की झिडकी सुनकर सहमी फिर रौबट को कुतूहल से देख रही अपनी ही समवयसिनी एक बालिका को देखते ही कूदती भाग गई।

"तू भी चलेगी अगाथा ?" उसकी कच्ची दूधिया आवाज स्पष्ट होकर कमरे तक चली आई ' मेरे डैडी आएँ हैं आज मुझे सौफ्टी खिलाने गज ले जाएगे ।'

'लक्ष्मी !" रौबट के गम्भीर स्वर ने लक्ष्मी का हाथ कपा दिया, थोडी-सी चाय उसकी साडी पर छलक गई, आखें नीची ही किए वह रुमाल से उसे पोछने लगी।

'जानती हो, मैं क्यों आया हू ?"

दूसरे दिन, लक्ष्मी कॉलेज गई तो रौबट सो रहा था। जब वह लौटी तब रौबट सुरगमा को गोद में लिए तस्वीरों की किताब दिखा रहा था। उसे देखते ही सुरगमा भागकर आ गई, "मा-मा जानती हो कौन आया है ? मेरे डैडी आए हैं, कहते हैं मुझे आज घुमाने ले चलेंगे "

लक्ष्मी का चेहरा लाल पड गया, 'अच्छा-अच्छा, छोड मेरी साडी, भीतर भी आने दोगी या नहा ?" लक्ष्मी ने द्वार अवरुद्ध किए खडी सुरगमा को हाथ पकडकर हटा दिया।

"आर जानती हो, आण्टी क्या कह रही हैं ? कहा है न, आज मे मैं न तुम्हारे पास सोऊगी, न आण्टी के पास ! मैं डैडी के साथ सोऊगी " उसका नन्हा भोला चेहरा आनन्द से उल्लसित हो उठा था।

लक्ष्मी का कलेजा धडकने लगा। तब क्या अभी भी वैरोनिका उस अबोध बच्ची के माध्यम से उसे रौबट की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा कर रही थी ?

'आओ लक्ष्मी मैंने तुम्हारे लिए चाय बना दी है, वैरानिका अभी नहीं लौटी, पीकर देखो कैसी बना है ! गोभा म रहकर, चाय बनाना खूब सीख गया हू।"

'डैडी, अब तो मा भी आ गई घुमान कब ले चलोगे ?" सुरगमा ऐसी अन्त रगता स उसकी गोद मे चढकर मचलन लगी जैसे वर्षों से उसे जानती हो।

"मैं तुम्हें जरूर ले चलूगा डालिंग पर अभी नहीं—आण्टी अस्पताल से आ जाए तब !"

'जा अभी बाहर जाकर खेल देख तेरी दोस्त आई है ' सुरगमा पहले मा की झिडकी सुनकर सहमी फिर रौबट को कुतूहल से देख रही अपनी ही समवयसिनी एक बालिका को देखते ही कूदती भाग गई।

"तू भी चलेगी अगाथा ?" उसकी कच्ची दूधिया आवाज स्पष्ट होकर कमरे तक चली आई 'मेरे डैडी आएँ हैं आज मुझे सोफ्टी खिलाने गज ले जाएगे ।'

'लक्ष्मी !" रौबट के गम्भीर स्वर ने लक्ष्मी का हाथ कपा दिया, थोडी-सी चाय उसकी साडी पर छलक गई, आखें नीची ही किए वह रुमाल से उसे पोछने लगी।

'जानती हो, मैं क्यों आया हू ?"

रहा हू। शायद, उसी क्षण मैं तुम्हे प्यार करने लगा था, जब तुम विभ्रान्त दृष्टि से क्रमश निकट आती इजन की सर्चलाइट को देखती, निर्भीक खडी थी। तुम्हारे उस अद्भुत चेहरे को मैं कब्र म जाने तक नहीं भूल सकता—ओह माई गाड।"

"डैडी-डैडी चलोगे न अब तो ? आण्टी आ गई।" उल्लसित सुरगमा अपनी सकुचाई सहेली को द्वार पर ही छोड भागकर रौबट स लिपट गई।

"क्यों नही चलूगा स्वीटहार्ट, पर पहले देख तो ले आण्टी क्या-क्या लाई है—क्या पता, शायद मेरे लिए भी एक फाइवस्टार लाई हो !"

'बडो के लिए थोडी ना चाकलेट लाई जाती हैं क्यों ना आण्टी ?"

वैरोनिका के आते ही लक्ष्मी उसके हाथ से टोकरी लेकर भीतर चली गई। पाच वर्षों तक अण्डरग्राउण्ड चले गए भाई को देखते ही वैरोनिका का चेहरा बदल जाता था। बार बार वह शायद प्रतिवेशियों को सुनाने, कभी लक्ष्मी को पुकारती, कभी सुरगमा को।

"लक्ष्मी, रौबट के कपडे निकाल देना, सुरगमा उतरो नीचे, अब अपने डैडी की गोदी मे चढने के लिए तुम बहुत बडी हो गई हो, उतरो-उतरो—परेशान मत करो डैडी को !"

स्वय लक्ष्मी के चेहरे मे वैरोनिका तीन-चार ही दिनों में अद्भुत परिवतन लक्ष्य कर रही थी। रौबट के प्रत्यागमन से वह अप्रसन्न नहीं हुई थी, फिर भी उस गम्भीर चट्टान से चेहरे के एक भी शिलाखण्ड को तोडकर वह भीतर नहीं झाक पा रही थी। रौबट के आने के दूसरे ही दिन लक्ष्मी अपनी मेज, बकसा पुस्तकें उठाकर, वैरोनिका के कमरे मे ले आई थी, आज तक वही कमरा उसकी स्टडी' थी। दीवारों मे रौबट की तस्वीरों को वह अब भी नित्य आचल से झाड-पोंछ आती किसीमे वह फुटबाल टीम की ट्रॉफी के साथ मुस्करा रहा था, किसी तैराकी प्रतियोगिता मे प्रथम आकर, वह बडा-सा कप हाथ मे लिए खडा था। उसके सहसा बिना वैरोनिका की अनुमति लिए ही सामान अपने कमरे मे ले आना, वरोनिका को अच्छा नही लगा था, पर वह मुह खोलकर कुछ कह नहीं पाई थी। कहा था उसकी निर्दोष पुत्री ने, "मा तुम क्या डैडी के कमरे मे नहीं सोओगी ?" लक्ष्मी का अपदस्थ चेहरा देख वैरोनिका का चेहरा कौतुकमिश्रित स्मित से रग गया था—आख का चश्मा, तीखी नाक पर ही खिसका उसने बडे स्नेह से सुरगमा को देखकर कहा था, "अब उत्तर दो लक्ष्मी !' बहुत बकर-बकर करना सीख गई है—चल कपडे बदल !"

रहा हू। शायद, उसी क्षण मैं तुम्हे प्यार करने लगा था, जब तुम विभ्रान्त दृष्टि
से क्रमश निकट आती इजन की सचलाइट को देखती, निर्भीक खडी थी। तुम्हारे
उस अद्भुत चेहरे को मैं कब्र म जाने तक नहीं भूल सकता—ओह माई गाड।"
डैडी-डडी चलोगे न अब तो ? आण्टी आ गई।" उल्लसित सुरगमा अपनी
सकुचाई सहेली को द्वार पर ही छोड भागकर रोबट स लिपट गई।
क्यों नही चलूगा स्वीटहाट, पर पहले देख तो ले आण्टी क्या-क्या लाई है—
क्या पता, शायद मेरे लिए भी एक फाइवस्टार लाई हो !"
'डडो के लिए थोडी ना चाकलेट लाई जाती है क्यों ना आण्टी ?"
वेरोनिका के आते ही लक्ष्मी उसके हाथ से टोकरी लेकर भीतर चली गई।
पाच वर्षों तक अण्डरग्राउण्ड चले गए भाई को देखते ही वेरोनिका का
चेहरा बदल जाता था। बार बार वह शायद प्रतिवेशियों को सुनाने, कभी लक्ष्मी
को पुकारती, कभी सुरगमा को।
"लक्ष्मी, रोबट के कपडे निकाल देना, सुरगमा उतरो नीचे, अब अपने डैडी
की गोदी मे चढने के लिए तुम बहुत बडी हो गई हो, उतरो-उतरो—परेशान मत
करो डैडी को।"
स्वय लक्ष्मी के चेहरे मे वेरोनिका तीन-चार ही दिनों में अद्भुत परिवतन
लक्ष्य कर रही थी। रोबट के प्रत्यागमन से वह अप्रसन्न नहीं हुई थी, फिर भी
उस गम्भीर चट्टान से चेहरे के एक भी शिलाखण्ड को तोडकर वह भीतर नहीं
झाक पा रही थी। रोबट के आने के दूसरे ही दिन लक्ष्मी अपनी मेज, बक्सा
पुस्तकें उठाकर, वेरोनिका के कमरे मे ले आई थी, आज तक वही कमरा उसकी
स्टडी' थी। दीवारों मे रोबट की तस्वीरों को वह अब भी नित्य आचल से झाड-
पोंछ आती जिसीमे वह फुटबाल टीम की ट्रॉफी के साथ मुस्करा रहा था, किसी
तैराकी प्रतियोगिता मे प्रथम आकर, वह बडा-सा कप हाथ मे लिए खडा था।
उसके सहसा बिना वेरोनिका की अनुमति लिए ही सामान अपने कमरे मे ले
आना, वेरोनिका को अच्छा नही लगा था, पर वह मुह खोलकर कुछ कह नहीं
पाई थी। कहा था उसकी निर्दोष पुत्री ने, "मा तुम क्या डैडी के कमरे मे नहीं
सोओगी ?" लक्ष्मी का अपदस्थ चेहरा देख वेरोनिका का चेहरा कौतुकमिश्रित
स्मित से रग गया था—आख का चश्मा, तीखी नाक पर ही खिसका उसने बडे
स्नेह से सुरगमा को देखकर कहा था, "अब उत्तर दो लक्ष्मी।'
'बहुत बकर-बकर करना सीख गई है—चल कपडे बदल।"

लाते, और दिन-भर उसके साथ तितलिया पकडते। फिर दोनों बाप-बेटी, रौबर्ट की पुरानी कापी मे वर्षों पहले चिपकी दिवगता तितलियो की रगीली ऐतिहासिक देह के साथ, नई-नई तितलियों को पिन से चिपकाते। पर मा न जाने कैसी हो गई थी—जब देखो तब डाटती रहती थी। उस दिन भी मा ने उसे डाट-डपटकर स्कूल के लिए तैयार किया, फिर स्वय तैयार होने लगी। नित्य मा ही उसे स्कूल पहुचाती थी—वह नाश्ता कर रही थी, और रौबर्ट अपने कमरे मे सो रहा था। वैरोनिका, अपने कलफ किए श्वेत किरीट को बालो पर सजा रही थी, वहीं से वह, सुरगमा का प्रिय गाना गाकर, उसे मनाने की चेष्टा भी करती जा रही थी

डेजी डेजी गिव युअर आसर डू—
आई एम हाफ क्रेजी ऑल फॉर द लव ऑफ यू

पर रूठी सुरगमा का चेहरा लटका ही था, आज उसका स्कूल जाने को मन ही नही कर रहा था। लक्ष्मी नित्य कॉलेज जाने से पहले अपने कमरे की खिडकिया बन्द करती थी, उस दिन भी तैयार होकर वह खिडकी बन्द करने जा ही रही थी कि चौंककर ऐसे पीछे हट गई, जैसे उसका पैर फन उठाए डसने को उद्यत किसी विषधर पर पड गया हो। रिक्शा से उतर जो व्यक्ति इधर-उधर देख किसी मकान को पहचानने की चेष्टा कर रहा था, उसकी दृष्टि स्वय उसी चेहरे पर पड गई, जिसे वह इतने वर्षों से ढूढ रहा था। बिजली की गति से पलटकर लक्ष्मी ने खिडकी बन्द कर दी। एक पल को ही शायद दोनों की आंखें चार हुई थी, फिर भी, उस कामान्ध दृष्टि की टपकती लार लक्ष्मी को भिगो गई थी। दोनों हाथो से सर थामे वह किंकर्तव्यविमूढा बनी पलग पर बैठी यह भी भूल गई कि खिडकी बन्द करने पर भी उसका द्वार खुला है। उसी खुले द्वार से उसका दुर्भाग्य जब तीव्र आ[illegible]ोंके-सा आकर, उसके सम्मुख खडा हो गया—तब भय से उसकी घिग्घी बध गई, वह चीख भी नहीं पाई थी कि आगतुक ने द्वार पर चिटखनी चढा उसे बांहों में भीच लिया, किन्तु उस बन्धन में प्रेम का उल्लास नहीं था, था केवल प्रतिशोध का औद्धत्य।

'कुलटा, तुझे आज नहीं छोड़ूगा, चाहे फासी पर ही लटकना पड़े।"

सहसा शेरनी की ही भांति उछलकर क्रुद्धकाया लक्ष्मी ने सिरहाने धरा टेबल-लैम्प खींचकर उसके ललाट पर दे मारा। एक क्षण को उस कामान्ध पशु

लाते, और दिन-भर उसके साथ तितलियां पकड़ते। फिर दोनों बाप-बेटी, रौबर्ट की पुरानी कापी में वर्षों पहले चिपकी दिवंगता तितलियों की रंगीली ऐतिहासिक देह के साथ, नई-नई तितलियों को पिन से चिपकाते। पर मां न जाने कैसी हो गई थी—जब देखो तब डांटती रहती थी। उस दिन भी मां ने उसे डांट-डपटकर स्कूल के लिए तैयार किया, फिर स्वयं तैयार होने लगी। नित्य मां ही उसे स्कूल पहुंचाती थी—वह नाश्ता कर रही थी, और रौबर्ट अपने कमरे में सो रहा था। वैरोनिका, अपने कलफ किए श्वेत किरीट को बालों पर सजा रही थी, वहीं से वह, सुरंगमा का प्रिय गाना गाकर, उसे मनाने की चेष्टा भी करती जा रही थी

डेज़ी डेज़ी गिव युअर आंसर डू—

आई एम हाफ क्रेज़ी ऑल फॉर द लव ऑफ यू

पर रूठी सुरंगमा का चेहरा लटका ही था, आज उसका स्कूल जाने को मन ही नहीं कर रहा था। लक्ष्मी नित्य कॉलेज जाने से पहले अपने कमरे की खिड़कियां बन्द करती थी, उस दिन भी तैयार होकर वह खिड़की बन्द करने जा ही रही थी कि चौंककर ऐसे पीछे हट गई, जैसे उसका पैर फन उठाए डसने को उद्यत किसी विषधर पर पड़ गया हो। रिक्शा से उतर जो व्यक्ति इधर-उधर देख किसी मकान को पहचानने की चेष्टा कर रहा था, उसकी दृष्टि स्वयं उसी चेहरे पर पड़ गई, जिसे वह इतने वर्षों से ढूंढ रहा था। बिजली की गति से पलटकर लक्ष्मी ने खिड़की बन्द कर दी। एक पल को ही शायद दोनों की आंखें चार हुई थीं, फिर भी, उस कामान्ध दृष्टि की टपकती लार लक्ष्मी को भिगो गई थी। दोनों हाथों से सर थामे वह किंकर्तव्यविमूढ़ा बनी पलंग पर बैठी यह भी भूल गई कि खिड़की बन्द करने पर भी उसका द्वार खुला है। उसी खुले द्वार से उसका दुर्भाग्य जब तीव्र आं[illegible] के झोंके-सा आकर, उसके सम्मुख खड़ा हो गया—तब भय से उसकी घिग्घी बंध गई, वह चीख भी नहीं पाई थी कि आगंतुक ने द्वार पर चिटखनी चढ़ा उसे बांहों में भींच लिया, किन्तु उस बन्धन में प्रेम का उल्लास नहीं था, था केवल प्रतिशोध का औद्धत्य।

'कुलटा, तुझे आज नहीं छोड़ूंगा, चाहे फांसी पर ही लटकना पड़े!"

सहसा शेरनी की ही भांति उछलकर कृशकाया लक्ष्मी ने सिरहाने धरा टेबल-लैम्प खींचकर उसके ललाट पर दे मारा। एक क्षण को उस कामान्ध पशु

लक्ष्मी अपनी अर्द्धनग्न देह के प्रति अस्वाभाविक रूप से उदासीन बनी पागलों की भांति छत को घूर रही थी। रौबट को कूदते देख भी वह उसी अचल मुद्रा में पड़ी पलक झपकाती रही। जिस रौबट ने कभी उसकी उल्लथ टखनी भी नहीं देखी थी, उसीके सम्मुख उसका उघड़ा यौवन दया की भीख माग रहा था। द्वार खुलते ही वैरोनिका लक्ष्मी की दुरवस्था देख चीख पड़ी

"कौन हो तुम ?" रौबट का गोरा चेहरा तमतमाकर लाल हो गया।

मदान्ध गजानन ने मुस्कराकर कुछ कहने की चेष्टा की, किन्तु क्षण-भर को उतरा नशा फिर उसकी मुंदी जा रही पलको पर हावी हो गया।

'सुना नहीं क्या ? कौन हो तुम ?' इस बार क्रोध से थरथर काप रहे रौबट ने उसकी गदन पकड़कर उठाने की चेष्टा की, किन्तु निर्जीव मांस का लोथड़ा निश्चेष्ट मुद्रा मे फिर कुर्सी पर ढल गया, फिर उसने आंखें खोलीं और विचित्र दृष्टि से रौबट को घूरा

"मैं कहता हू, तुम कौन हो साले, मुझसे यह पूछ्‌ने वाले ? यह मेरी पत्नी है राजलक्ष्मी—आहा हा—क्या नाम है ! हमारे ससुर साहब की जाने मन कलकत्ते की गौहरबाई का दिया नाम।" फिर वह नशे मे दुलदुलकर हिल रही अपनी देह को हिला हिलाकर विकृत स्वर मे हसा, "राजा प्रबोधरंजन बहादुर के राज्य की लक्ष्मी को हम अपनी गृहलक्ष्मी बनाकर ले आए, कुछ समझे साहब ? अपने इस लगूरी चेहरे से हमें मत डराओ साहब, गजानन जोशी ने ऐसे बीसियों साहब देखे हैं—तुम गोरे साहब लोग तो प्रेम-व्रेम खूब समझते हो, अब तुम्हीं बताओ पूरे पाच साल बाद हमारी मेमसाहब हमको मिली तो प्यार नही करते तो क्या चौखट चढ़ाकर टाग देते ?"

लड़खड़ाते अटपटे स्वर में अपने दुराचरण की कैफियत देकर उसने फिर आखें मूंद ली, और दोनों टांगें लम्बी कर कुर्सी पर ऐसे पसर गया जैसे वही गृहस्वामी हो।

रौबट को इस बार उसकी निलज्ज चोरी और सीनाजोरी विक्षिप्त कर गई। उसने झुककर फिर उसकी गदन थाम उसे खड़ा कर दिया और एक घूसा मारा। फिर तो उसी घूसे के साथ जसे रौबट को स्वयं नशा चढ़ गया। उन्मत्त बना वह दायें-बायें उसे मारता चला गया। उसी अप्रत्याशित प्रहार का आघात गजानन को पस्त कर गया। एक झटके से उसने अपने को छुड़ाया और उछलकर

लक्ष्मी अपनी अद्धनग्न देह के प्रति अस्वाभाविक रूप से उदासीन बनी पागलों की भांति छत को घूर रही थी। रौबट को कूदते देख भी वह उसी अचल मुद्रा में पड़ी पलक झपकाती रही। जिस रौबट ने कभी उसकी उल्लथ टखनी भी नहीं देखी थी, उसीके सम्मुख उसका उघड़ा यौवन दया की भीख माग रहा था। द्वार खुलते ही वैरोनिका लक्ष्मी की दुरवस्था देख चीख पड़ी

"कौन हो तुम ?" रौबट का गोरा चेहरा तमतमाकर लाल हो गया।

मदाध गजानन ने मुस्कराकर कुछ कहने की चेष्टा की, किन्तु क्षण-भर को उतरा नशा फिर उसकी मुंदी जा रही पलकों पर हावी हो गया।

'सुना नहीं क्या ? कौन हो तुम ?' इस बार क्रोध से थरथर काप रहे रौबट ने उसकी गदन पकडकर उठाने की चेष्टा की, किंतु निर्जीव मांस का लोथड़ा निश्चेष्ट मुद्रा मे फिर कुर्सी पर ढल गया, फिर उसने आंखें खोलीं और विचित्र दृष्टि से रौबट को घूरा

"मैं कहता हू, तुम कौन हो साले, मुझसे यह पूछने वाले ? यह मेरी पत्नी है राजलक्ष्मी—आहा हा—क्या नाम है ! हमारे ससुर साहब की जाने मन कलकत्ते की गौहरबाई का दिया नाम।" फिर वह नशे मे दुलदुलकर हिल रही अपनी देह को हिला हिलाकर विकृत स्वर मे हसा, "राजा प्रबोधरजन बहादुर के राज्य की लक्ष्मी को हम अपनी गृहलक्ष्मी बनाकर ले आए, कुछ समझे साहब ? अपने इस लगूरी चेहरे से हमें मत डराओ साहब, गजानन जोशी ने ऐसे बीसियों साहब देखे हैं—तुम गोरे साहब लोग तो प्रेम-वेम खूब समझते हो, अब तुम्हीं बताओ पूरे पाच साल बाद हमारी मेमसाहब हमको मिली तो प्यार नहीं करते तो क्या चौखट चढ़ाकर टाग दते ?"

लडखडाते अटपटे स्वर में अपने दुराचरण की कैफियत देकर उसने फिर आखें मूद ली, और दोनों टांगें लम्बी कर कुर्सी पर ऐसे पसर गया जैसे वही गृह-स्वामी हो।

रौबट को इस बार उसकी निलज्ज चोरी और सीनाजोरी विक्षिप्त कर गई। उसने झुककर फिर उसकी गदन थाम उसे खडा कर दिया और एक घूसा मारा। फिर तो उसी घूसे के साथ जसे रौबट को स्वय नशा चढ़ गया। उन्मत्त बना वह दायें-बायें उसे मारता चला गया। उसी अप्रत्याशित प्रहार का आघात गजानन को चतन्य कर गया। एक झटके से उसने अपने को छुड़ाया और उछलकर

कर कमरे मे आ गई वैरोनिका को फिर पीछे ढकेल गई। उसने भाई का कधा पकडकर पीछे खींचा, 'डोण्ट रौबट, देखते नहीं वह होश मे नही है ? क्या पता कही छुरा-बुरा छिपाए हो।"

गजानन ने अब हाथ पकडकर कापती-थरथराती लक्ष्मी को पलग से खींचकर खडी कर दिया था, "चल उठ, तुझसे बचा-खुचा हिसाब अब घर जाकर ही वसूल करूगा ! खबरदार जो इन किरिस्तानों का चीथडा भी साथ मे लिया !"

'लक्ष्मी !" वैरोनिका उसका नाम पुकार ही फिर स्वय चुप हो गई। लक्ष्मी ने अपनी शान्त-पीडित दृष्टि से उसकी ओर देखा—वह जैसे उससे उस सक्षिप्त अनुनय भरी पुकार ही म सब कुछ कह गई थी, 'लक्ष्मी, तुम यहा से चली जाओ, मेरी प्रतिष्ठा पर आच मत आने देना—मेरे समाज को मत जानने दो लक्ष्मी, कि मेरे भाई की पत्नी उसकी पत्नी बनने से पहले इस शराबी शोहदे की पत्नी थी।"

लक्ष्मी उठकर जाने लगी तो गजानन ने उसकी साडी पकड ली, "कहा जा रही है ?"

"मुह धोने !" कितना स्थिर कितना सयत कण्ठस्वर था लक्ष्मी का। उसके पीले कपोलों पर गजानन के कलुषित रक्त की रेखाए सूखकर जमने लगी थीं—गजानन ने उसकी साडी का छोर छोड दिया और वह धीर-मन्थर गति से बेसिन की ओर मुह धोने ऐसे बढ गई जैसे नीद से उठी हो।

जब वह मुह धो रही थी तब ही रौबट चुपचाप आकर उसके पास खडा हो गया 'लक्ष्मी क्या तुम सचमुच ही इस पशु के साथ जा रही हो ?"

लक्ष्मी ने अपना विवण चेहरा रौबट की ओर उठाया, 'हा, मैं जानती थी, एक दिन यही होगा। तुम इसे नहीं जानते। ससार का कोई भी कुकृत्य इसके लिए असम्भव नही है। मैं नही गई, तो यह यहा ऐसा नाटक खडा कर देगा कि वैरोनिका की वर्षों की प्रतिष्ठा मान-सम्मान एक पल में धूल में मिल जाएगा। मैं इतनी अकृतज्ञ नही हू। सोचा था आज तक जो मेरे जीवन मे घटा था वह एक दुःस्वप्न था। पर आज समझ गई हू कि मेरे जीवन का वह कलक जितना ही वास्तविक तब था उतना ही आज भी है और हमेशा रहेगा। छह वष पूव जब पिता के घर से इस पशु का हाथ पकडकर निकली थी, तब भी यही निश्चय किया था कि चिर दिन के लिए ही जा रही हू कभी लौटूगी नहीं आज भी यही निश्चय करके जा रही हू रौबट, कि कभी लौटूगी नहीं।" फिर वह जाते-जाते थमककर

कर कमरे मे आ गई वैरोनिका को फिर पीछे ढकेल गई। उसने भाई का कधा पकडकर पीछे खींचा, 'डोण्ट रौबट, देखते नहीं वह होश मे नही है ? क्या पता कही छुरा-बुरा छिपाए हो।"

गजानन ने अब हाथ पकडकर कापती-थरथराती लक्ष्मी को पलग से खींचकर खडी कर दिया था, "चल उठ, तुझसे बचा-खुचा हिसाब अब घर जाकर ही वसूल करूगा ! खबरदार जो इन किरिस्तानों का चीथडा भी साथ मे लिया।"

'लक्ष्मी !" वैरोनिका उसका नाम पुकार ही फिर स्वय चुप हो गई। लक्ष्मी ने अपनी शान्त-पीडित दृष्टि से उसकी ओर देखा—वह जैसे उससे उस सक्षिप्त अनुनय भरी पुकार ही म सब कुछ कह गई थी, 'लक्ष्मी, तुम यहा से चली जाओ, मेरी प्रतिष्ठा पर आच मत आने देना—मेरे समाज को मत जानने दो लक्ष्मी, कि मेरे भाई की पत्नी उसकी पत्नी बनने से पहले इस शराबी शोहदे की पत्नी थी।"

लक्ष्मी उठकर जाने लगी तो गजानन ने उसकी साडी पकड ली, "कहा जा रही है ?"

"मुह धोने !" कितना स्थिर कितना सयत कण्ठस्वर था लक्ष्मी का। उसके पीले कपोलों पर गजानन के कलुषित रक्त की रेखाए सूखकर जमने लगी थीं—गजानन ने उसकी साडी का छोर छोड दिया और वह धीर-मन्थर गति से बेसिन की ओर मुह धोने ऐसे बढ गई जैसे नीद से उठी हो।

जब वह मुह धो रही थी तब ही रौबट चुपचाप आकर उसके पास खडा हो गया 'लक्ष्मी क्या तुम सचमुच ही इस पशु के साथ जा रही हो ?"

लक्ष्मी ने अपना विवर्ण चेहरा रौबट की ओर उठाया, 'हा, मैं जानती थी, एक दिन यही होगा। तुम इसे नहीं जानते। ससार का कोई भी कुकृत्य इसके लिए असम्भव नही है। मैं नही गई, तो यह यहा ऐसा नाटक खडा कर देगा कि वैरोनिका की वर्षों की प्रतिष्ठा मान-सम्मान एक पल में धूल में मिल जाएगा। मैं इतनी अकृतज्ञ नही हू। सोचा था आज तक जो मेरे जीवन मे घटा था वह एक दुस्वप्न था। पर आज समझ गई हू कि मेरे जीवन का वह कलक जितना ही वास्तविक तब था उतना ही आज भी है और हमेशा रहेगा। छह वष पूव जब पिता के घर से इस पशु का हाथ पकडकर निकली थी, तब भी यही निश्चय किया था कि चिर दिन के लिए ही जा रही हू कभी लौटूगी नहीं आज भी यही निश्चय करके जा रही हू रौबट, कि कभी लौटूगी नहीं।" फिर वह जाते-जाते थमककर

"नहीं, मैं अपने घर जाऊँगी, मैं घर जाऊगी, मेरा घर यह नही है—यह गन्दा है, यह गन्दा है " वह फुक्का फाड़कर रो उठी थी।

"लक्ष्मी " गजानन प्रस्तर प्रतिमा सी अचल खड़ी लक्ष्मी के निकट खिसका और बड़े लाड से उसके कधे पर हाथ रखने लगा, चौंककर लक्ष्मी ने उसका हाथ दूर झटक दिया।

मुझे माफ कर दो लक्ष्मी, मैं नशे मे था। फिर इतने दिनो बाद तुम्हें पाकर मैं पागल हो गया था। तुम मेरी पत्नी हो, तुम्हारा विवाह किसी गिरजे मे हुआ हो या मसजिद म, मुझे परवाह नही, तुम जहा भी होगी, जिस अवस्था मे भी होगी मैं तुम्हे अपने साथ खीच लाऊगा, यही सोचकर मैं कल घर से निकला था। जो कुछ हुआ है, उसे अब भूल जाओ। अब के पितपक्ष मे मैंने अपनी मा को सपने मे देखा। मेरे सिरहाने खडी होकर कह रही थी—'गजुआ, तूने अज्ञानवश अपनी घर की लक्ष्मी को गवा दिया है। जब तक तू उसे ढूढकर नही लाएगा, तेरा भाग्य नही पलटेगा। मैंने उसीकी कोख मे जन्म लिया है।' यह मेरी मा है यह मैं इसे देखते ही पहचान गया, लक्ष्मी ! अब तुम्हें कोई चिन्ता नही रहेगी। मुझे म्यूजिक कॉलिज म बड़ी अच्छी नौकरी मिल गई है। दो-तीन बड़े बड़े घरो मे ट्यूशन करता हू, रेडियो-प्रोग्राम भी मिलते रहते हैं। तुझे अब सचमुच ही रानी बनाकर रखूगा लक्ष्मी, तेरा कोई भी कलक अब मेरे लिए कलक नही रहेगा।"

लक्ष्मी के चेहरे मे, अति की लम्बी कैफियत सुनकर भी कोई परिवतन नहीं हुआ।

सुरगमा कई महीनों तक उस परिवेश को ग्रहण नहीं कर पाई थी, किन्तु लक्ष्मी ने जिस स्वाभाविकता से अपने बिछुड़े पतिगृह की गृहस्थी सम्भाल ली, उसके लिए गजानन भी प्रस्तुत नहीं था। वह सुबह ही काम पर निकल जाता, लौटता तो नित्य एक पैकेट हाथ में उछालता सुरगमा को पुकारता —'देख बिटिया, क्या लाया हू आज तेरे लिए।" पहले-पहल, सुरगमा उसके लाख दुलारने पर भी उसके पास नहीं फटकती थी, पर धीरे धीरे वह उससे हिल गई। वैरोनिका भी उसे दुलारती थी, किन्तु उसके दुलार मे हमेशा एक अनुशासन की कड़क रहती। गजानन का अनुशासनहीन दुलार उसे सर पर चढा गया था, जिस भी अलभ्य वाछित वस्तु के लिए वह मचलती, गजानन तत्क्षण भागकर

"नहीं, मैं अपने घर जाऊँगी, मैं घर जाऊंगी, मेरा घर यह नही है—यह गन्दा है, यह गन्दा है" वह पुक्का फाड़कर रो उठी थी।

"लक्ष्मी" गजानन प्रस्तर प्रतिमा सी अचल खडी लक्ष्मी के निकट खिसका और बडे लाड से उसके कन्धे पर हाथ रखने लगा, चौंककर लक्ष्मी ने उसका हाथ दूर झटक दिया।

मुझे माफ कर दो लक्ष्मी, मैं नशे मे था। फिर इतने दिनो बाद तुम्हें पाकर मैं पागल हो गया था। तुम मेरी पत्नी हो, तुम्हारा विवाह किसी गिरजे मे हुआ हो या मसजिद म, मुझे परवाह नही, तुम जहा भी होगी, जिस अवस्था मे भी होगी मैं तुम्हे अपने साथ खीच लाऊगा, यही सोचकर मैं कल घर से निकला था। जो कुछ हुआ है, उसे अब भूल जाओ। अब के पितपक्ष मे मैंने अपनी मा को सपने मे देखा। मेरे सिरहाने खडी होकर कह रही थी—'गजुआ, तूने अज्ञानवश अपनी घर की लक्ष्मी को गवा दिया है। जब तक तू उसे ढूढकर नही लाएगा, तेरा भाग्य नही पलटेगा। मैंने उसीकी कोख मे जन्म लिया है।' यह मेरी मा है यह मैं इसे देखते ही पहचान गया, लक्ष्मी! अब तुम्हें कोई चिन्ता नही रहेगी। मुझे म्यूजिक कॉलिज म बडी अच्छी नौकरी मिल गई है। दो-तीन बडे बडे घरो मे टयूशन करता हू, रेडियो-प्रोग्राम भी मिलते रहते हैं। तुझे अब सचमुच ही रानी बनाकर रखूगा लक्ष्मी, तेरा कोई भी कलक अब मेरे लिए कलक नही रहेगा।"

लक्ष्मी के चेहरे मे, पति की लम्बी कैफियत सुनकर भी कोई परिवतन नही हुआ।

सुरगमा कई महीनों तक उस परिवेश को ग्रहण नहीं कर पाई थी, किन्तु लक्ष्मी ने जिस स्वाभाविकता से अपने बिछुडे पतिगृह की गृहस्थी सम्भाल ली, उसके लिए गजानन भी प्रस्तुत नहीं था। वह सुबह ही काम पर निकल जाता, लौटता तो नित्य एक पैकेट हाथ में उछालता सुरगमा को पुकारता —"देख बिटिया, क्या लाया हू आज तेरे लिए।" पहले-पहल, सुरगमा उसके लाख दुलारने पर भी उसके पास नहीं फटकती थी, पर धीरे धीरे वह उससे हिल गई। वैरोनिका भी उसे दुलारती थी, किन्तु उसके दुलार मे हमेशा एक अनुशासन की कडक रहती। गजानन का अनुशासनहीन दुलार उसे सर पर चढा गया था, जिस भी अलभ्य वाछित वस्तु के लिए वह मचलती, गजानन तत्काल भागकर

बार सोई जननी के सिरहाने से चाची पुरा उसकी यत्न से सचित गहनों की पोटली लेकर भागा, तब उस सुप्त, निर्दोष, वेदना-विधुर चेहरे पर अधसुखी आखों से ढुलके अश्रुबिन्दुओं ने उसके पापी चरणों में बेडी-सी डाल दी थी। शायद बेचारी अपने उसी कुपुत्र के कुकर्मों पर आंसू बहाती सो गई थी। आज भी पापी-कुटिल-कामी गजानन मा के उन आसुओं को नहीं भूल पाया था। कितनी सुन्दर थी उसकी मा। जब रुपाली पिछौडे का कटोरे-सा घूघट निकाल, चेहरे से भी बडी परिधि की नथ का लोलक हिलाती भैरव थान में पूजा करने जाती तब उसे लगता, उसकी मा-सी सुन्दरी पूरे गाव में कोई नहीं है न चाची, न ताई, न भाभी। उसके स्निग्ध चेहरे के अनुरूप ही उसकी मीठी-मृदुल वाणी भी थी। उसके धीमे स्वर को सुनने के लिए कभी-कभी गजानन को अपना चेहरा उसके घूघट से सटाना पडता। घर में कोई पुरुष न हो, तब भी मा के चेहरे से घूघट नहीं हटता। उस चेहरे पर गजानन ने कभी हसी नहीं देखी थी, हसती भी तो एक पल को काले मेघों से क्षण भर को निकली पहाडी धूप-सी ही मां की वह क्षणस्थायी हसी फिर गभीर गाम्भीर्य की बदली में छिप जाती। क्रोधी विलासी पिता का समृद्ध ऊन का व्यापार उसे और भी कठोर और मर्यादाहीन बना गया था। प्राय ही एक से एक सुन्दरी नैक्याणियों का आतिथ्य उसकी मां को नि शब्द निभाना पडता, उनके घिनौने साजिन्दे पान की पीक से मा का लिपा-पुता स्वच्छ आगन गन्दा कर रख देते, पर मा कभी कुछ नहीं कहती। मा की सीमाहीन सहनशीलता ने ही किशोर गजानन के उद्दण्ड हृदय में विद्रोह का प्रथम बीजारोपण किया था। उसने अनजाने ही दुराचारी जनक एव धरती-सी सहिष्णु जननी को एकसाथ दड देना आरम्भ किया—स्वय अपने अविवेकी आचरण से। पिता को दण्डित किया पत्नी के प्रति अन्यायपूर्ण आचरण के लिए और मा को दण्डित किया उस अन्याय को नि:शब्द झेलने के लिए। उसकी उद्धत दृष्टि में अन्याय से भी गुरुतर अपराध था अन्याय को नि शब्द झेलना।

देख लेना तू एक दिन मैं इस साली नैक्याण सरुली की गदन नन्दा देवी के जतिये (भैंसे)-सी झटकाकर रख दूगा!" वह मा से कहता और पुत्र का पुजीभूत क्रोध उसे त्रस्त कर उठता। पुत्र के पैर पकडकर वह सिसकने लगती, 'तुझे मेरे दूध की कसम छोरे, ऐसा मत कर ठैना कभी!"

बार सोई जननी के सिरहाने से चाबी चुरा उसकी यत्न से संचित गहनों की पोटली लेकर भागा, तब उस सुप्त, निर्दोष, वेदना-विधुर चेहरे पर बंधमुंदी आंखों से ढुलके अश्रुबिन्दुओं ने उसके पापी चरणों में बेड़ी-सी डाल दी थी। शायद बेचारी अपने उसी कुपुत्र के कुकृत्यों पर आंसू बहाती सो गई थी। आज भी पापी-कुटिल-कामी गजानन मा के उन आंसुओं को नहीं भूल पाया था। कितनी सुन्दर थी उसकी मा। जब रवाली पिछौड़े का कटोरे-सा घूंघट निकाल, चेहरे से भी बड़ी परिधि की नथ का लोलक हिलाती भैरव थान में पूजा करने जाती तब उसे लगता, उसकी मा-सी सुन्दरी पूरे गांव में कोई नहीं है न चाची, न ताई, न भाभी। उसके स्निग्ध चेहरे के अनुरूप ही उसकी मीठी-मृदुल वाणी भी थी। उसके धीमे स्वर को सुनने के लिए कभी-कभी गजानन को अपना चेहरा उसके घूंघट से सटाना पड़ता। घर में कोई पुरुष न हो, तब भी मा के चेहरे से घूंघट नहीं हटता। उस चेहरे पर गजानन ने कभी हंसी नहीं देखी थी, हंसती भी तो एक पल को काले मेघों से क्षण भर को निकली पहाड़ी धूप-सी ही मां की वह क्षणस्थायी हंसी फिर उसी गाम्भीर्य की बदली में छिप जाती। क्रोधी विलासी पिता का समृद्ध ऊन का व्यापार उसे और भी कठोर और मर्यादाहीन बना गया था। प्राय ही एक से एक सुन्दरी नैक्याणियों का आतिथ्य उसकी मां को निःशब्द निभाना पड़ता, उनके घिनौने साजिन्दे पान की पीक से मा का लिपा-पुता स्वच्छ आंगन गन्दा कर रख देते, पर मा कभी कुछ नहीं कहती। मा की सीमाहीन सहनशीलता ने ही किशोर गजानन के उद्दण्ड हृदय में विद्रोह का प्रथम बीजा-रोपण किया था। उसने अनजाने ही दुराचारी जनक एवं धरती-सी सहिष्णु जननी को एकसाथ दंड देना आरम्भ किया—स्वयं अपने अविवेकी आचरण से। पिता को दण्डित किया पत्नी के प्रति अन्यायपूर्ण आचरण के लिए और मा को दण्डित किया उस अन्याय को निःशब्द झेलने के लिए। उसकी उद्धत दृष्टि में अन्याय से भी गुरुतर अपराध था अन्याय को निःशब्द झेलना।

देख लेना तू, एक दिन मैं इस साली नैक्याण सरूली की गदन नन्दा देवी के जतिये (भैंसे)-सी झटकाकर रख दूंगा!" वह मा से कहता और पुत्र का पुंजीभूत क्रोध उसे त्रस्त कर उठता। पुत्र के पैर पकड़कर वह सिसकने लगती, 'तुझे मेरे दूध की कसम छोरे, ऐसा मत कर रैठना कभी!"

है, यह केवल गजानन ही जानता था। घास के स्तूपाकार गट्ठरों के पीछे छिप-
छिप यही सब देखता चौदह वष का किशोर पलक झपकाते ही अनुभवी युवक
बन गया था। और जिस दिन उस प्रलयकारी लोटे में उसका चुराया मा का
कंकण खन से खनका, उसके किशोर कपोलों पर सल्ली के अनुभवी पेशेवर चुम्बन
गम दहकते अगारों से ही उसे दाग गए थे। कभी जिसकी गर्दन को जतिये की
गदन-सा झटकाने की वह गवपूण घोषणा कर मा को आतंकित कर चुका था,
आज उसीके कलुषित भिक्षापात्र में मा के पावनस्पर्श से अभिसिंचित कंकण,
उसने चुराकर डाल दिया था। उसी रात को गजानन जोशी गाव छोड़कर भागा
और फिर कभी नहीं लौटा। पहले पहुचा— दिल्ली, फिर कलकत्ता। वहा ट्रेन में
गा-गाकर भीख मागने वाले एक दल ने उसे सहर्ष अपने दल का सदस्य बना
लिया। उसके कण्ठ के माधुय और पहाड़ी चेहरे की निर्दोष गढ़न में पहाड़ी सरस
फल की-सी ही मौलिक मिठास थी। उसे एक ही भजन आता था

काया का पिंजरा डोले रे

इक सास का पंछी बोले

किन्तु वही एक भजन उसकी झोली भर देता। कभी-कभी तो वह एक ही
डिब्बे से इतना कमा लेता कि दूसरे डिब्बे में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती।
एक दिन वह यही भजन भाव विभोर होकर गा रहा था, कि संगीत के एक गुणी
जौहरी ने उसे चट से परख लिया

'क्यों बेटे, गाना सीखकर उस्ताद बनेगा ?"

' बनूंगा "

और रेल के डिब्बे मे ईश्वर के-से भेजे गए उस देवदूत सहृदय गुरु ने उसे
विधिवत् गंडा बाधकर अपना शागिर्द बना लिया था। संगीत की जिन जिन दुरूह
गलियों से पार करा फिर उन्होंने उसे संगीत के जिस सर्वोच्च सोपान की ऊंचाई
पर खड़ा कर दिया वहा से नीचे झाकते ही उसका सर चकरा गया। जिस दयालु
गुरु ने अपने कण्ठ की पूरी विद्या निष्कपट औदार्य से उसके कण्ठ में उंडेल उसे
जीवन भर की जमापूजी सौंप दी थी उसे ही ठगकर वह प्रवचक एक दिन भाग
गया। उस्ताद वली मुहम्मद के कठोर अनुशासन ने उसके कण्ठ के खरे सोने को
कठिन रियाज की आग मे तपाकर निखार दिया था, खरज भरने के सुदीर्घ कठिन
रज्जु-बन्धन में उस्ताद उसे घण्टों बाधकर छोड़ देते। उसी बन्धन ने उसके

है, यह केवल गजानन ही जानता था। घास के स्तूपाकार गट्ठरों के पीछे छिप-छिप यही सब देखता चौदह वर्ष का किशोर पलक झपकाते ही अनुभवी युवक बन गया था। और जिस दिन उस प्रलयकारी लोटे में उसका चुराया मा का कंकण खन से खनका, उसके किशोर कपोलों पर सल्ली के अनुभवी पेशेवर चुम्बन गर्म दहकते अंगारों से ही उसे दाग गए थे। कभी जिसकी गर्दन को जतिये की गर्दन-सा झटकाने की वह गर्वपूर्ण घोषणा कर मा को आतंकित कर चुका था, आज उसीके कलुषित भिक्षापात्र में मा के पावनस्पर्श से अभिसिंचित कंकण, उसने चुराकर डाल दिया था। उसी रात को गजानन जोशी गांव छोड़कर भागा और फिर कभी नहीं लौटा। पहले पहुंचा— दिल्ली, फिर कलकत्ता। वहां ट्रेन में गा-गाकर भीख मांगने वाले एक दल ने उसे सहर्ष अपने दल का सदस्य बना लिया। उसके कण्ठ के माधुर्य और पहाड़ी चेहरे की निर्दोष गढ़न में पहाड़ी सरस फल की-सी ही मौलिक मिठास थी। उसे एक ही भजन आता था

काया का पिंजरा डोले रे

इक सांस का पंछी बोले

किन्तु वही एक भजन उसकी झोली भर देता। कभी-कभी तो वह एक ही डिब्बे से इतना कमा लेता कि दूसरे डिब्बे में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती। एक दिन वह यही भजन भाव विभोर होकर गा रहा था, कि संगीत के एक गुणी जौहरी ने उसे चट से परख लिया

'क्यों बेटे, गाना सीखकर उस्ताद बनेगा ?"

'बनूंगा"

और रेल के डिब्बे में ईश्वर के-से भेजे गए उस देवदूत सहृदय गुरु ने उसे विधिवत् गंडा बांधकर अपना शागिर्द बना लिया था। संगीत की जिन जिन दुरूह गलियों से पार करा फिर उन्होंने उसे संगीत के जिस सर्वोच्च सोपान की ऊंचाई पर खड़ा कर दिया वहां से नीचे झांकते ही उसका सर चकरा गया। जिस दयालु गुरु ने अपने कण्ठ की पूरी विद्या निष्कपट औदार्य से उसके कण्ठ में उड़ेल उसे जीवन भर की जमापूंजी सौंप दी थी उसे ही ठगकर वह प्रवंचक एक दिन भाग गया। उस्ताद वली मुहम्मद के कठोर अनुशासन ने उसके कण्ठ के खरे सोने को कठिन रियाज़ की आग में तपाकर निखार दिया था, खरज भरने के सुदीर्घ कठिन रज्जु-बंधन में उस्ताद उसे घण्टों बांधकर छोड़ देते। उसी बंधन ने उसके

बस्ती में खींच ले गई वहा उसके सुदर चेहरे, ओकपक पौरुष ने उसे हाथों ही हाथों मे लेकर आसमान में उछाल दिया। उन्हींक आचल थामता वह अब पहली बार राजा प्रबोधरजन की महफिल मे गाने पहुचा, तब राजलक्ष्मी को उसने पहली बार देखा। फ्राक पहनकर वह अपने बरामदे में रस्सी कूदती इधर उधर भाग रही थी। उसके आते ही वह अपनी बड़ी-बड़ी आखों मे अपरिसीम कुतूहल भरे तानपूरा थामे उस गोरे-उजले युवक को एकटक देखती रही थी

"आओ बेबी !" उसने जब उसे प्यार से बुलाया तो वह लजाकर गौहर मासी के पीछे छिप गई।

"आज तू मेरे साथ बैठकर इनका गाना सुनेगी, राजलक्ष्मी, देखना कितना बढ़िया गाते हैं। तू भी सुनाएगी ना इन्हें अपना गाना ?" गौहर मासी ने उसका हाथ पकड़कर सामने खींच लिया था।

"मुझे कौन-सा गाना आता है ?"

'अरी वही, जो तुझे तेरे पापा ने सिखाया है—

होलूद गेंदार फूल
रागा पलाश फूल
ऐनेदे, ऐनेदे, नईले—
बाधबो ना, राखबो ना, चूल

(पीले गेंदे के फूल और लाल पलाश फूल ला दे, नही तो मैं बाल नही बाधूगी।)

"बड़ी मीठी आवाज है इसकी गजानन, अच्छा गुरु मिलने पर यह निश्चय ही एक दिन पूरे बगाल का नाम रोशन करेगी, ठीक मेरी तरह, क्यों, है ना प्रबोध।"

किन्तु, राजा प्रबोधरजन का चेहरा एकदम ही विवर्ण हो गया था। लक्ष्मी ने मुड़कर देखा, चिक के पीछे उसकी रुग्णा मा खड़ी थी।

'खुकू, भीतरे आय !" (मुन्नी भीतर आ !) उस दिन उसके क्षीण कण्ठ मे न जाने कहा से वह दपपूर्ण तेज आ गया था। फिर उसके लाख सर पटकने पर भी मा ने उसे पिता की सगीत-गोष्ठी मे भाग नही लेने दिया था। कभी-कभी, उसकी मृतप्राय जननी का अनुशासन ऐसा ही कठोर बन लक्ष्मी को अपने जहाज-से पलग के पाये से बाधकर रख देता था। उत्कण होकर वह रात भर उस

बस्ती में खींच ले गई वहा उसके सुदर चेहरे, ग्राकपक पौरुष ने उसे हाथों ही हाथों मे लेकर आसमान में उछाल दिया। उन्हींक आचल थामता वह अब पहली बार राजा प्रबोधरजन की महफिल मे गाने पहुचा, तब राजलक्ष्मी को उसने पहली बार देखा। फाक पहनकर वह अपने बरामदे मे रस्सी कूदती इधर उधर भाग रही थी। उसके आते ही वह अपनी बडी-बडी आखों मे अपरिसीम कुतूहल भरे तानपूरा थामे उस गोरे-उजले युवक को एकटक देखती रही थी

"आओ बेबी !" उसने जब उसे प्यार से बुलाया तो वह लजाकर गौहर मासी के पीछे छिप गई।

"आज तू मेरे साथ बैठकर इनका गाना सुनेगी, राजलक्ष्मी, देखना कितना बढ़िया गाते हैं। तू भी सुनाएगी ना इन्हें अपना गाना ?" गौहर मासी ने उसका हाथ पकडकर सामने खींच लिया था।

"मुझे कौन-सा गाना आता है ?"

'अरी वही, जो तुझे तेरे पापा ने सिखाया है—

होलूद गेंदार फूल

रागा पलाश फूल

ऐनेदे, ऐनेदे, नईले—

बाधबो ना, राखबो ना, चूल

(पीले गेंदे के फूल और लाल पलाश फूल ला दे, नही तो मैं बाल नही बाधूगी।)

"बडी मीठी आवाज है इसकी गजानन, अच्छा गुरु मिलने पर यह निश्चय ही एक दिन पूरे बगाल का नाम रोशन करेगी, ठीक मेरी तरह, क्यों, है ना प्रबोध।"

किन्तु, राजा प्रबोधरजन का चेहरा एकदम ही विवण हो गया था। लक्ष्मी ने मुडकर देखा, चिक के पीछे उसकी रुग्णा मा खडी थी।

'खुकू, भीतरे आय !' "(मुन्नी भीतर आ !) उस दिन उसके क्षीण कण्ठ मे न जाने कहा से वह दपपूण तेज आ गया था। फिर उसके लाख सर पटकने पर भी मा ने उसे पिता की सगीत-गोष्ठी मे भाग नही लेने दिया था। कभी-कभी, उसकी मृतप्राय जननी का अनुशासन ऐसा ही कठोर बन लक्ष्मी को अपने जहाज-से पलग के पाये से बाधकर रख देता था। उत्कण होकर वह रात भर उस

कोठे मे क्या सदा कान पर जनेऊ चढ़ाकर रियाज कर पाओगे बेटा ?"

गजानन पसीना पसीना हो गया था। उस अद्भुत महिला के सम्मुख वह न जाने क्या थरथर कांपता ही रहता था। गायिका वसन्त बिना पूर्वाभ्यास के ही गाने की धृष्टता कह कर बैठ गया था ?

देखो गजानन नवाब को मैं तब से जानती हूं जब उसकी नाक टलटल बहती थी। नानी थी बलिया की डामनी और पिता थे नवाब। कहते तो हैं नवाब वाजिदअली शाह का रक्त है अभागी मे। कभी बारावकी मे नवाब की दी गई जागीर का पट्टा भी दिखाया था उसने मुझे पर है तो पूरब की।'

हसकर गौहरजान फिर बडे स्नेह से उसकी पीठ थपथपाकर खडी हो गई था। दूसरे ही दिन बोरिया बिस्तर बाध राजा साहब की कोठी चले आने मे बचा उससे तकर गौहरजान फिर पटना के किसी रईस की महफिल को धन्य करने चली गई थी। पर गजानन अपने वचन का अन्त तक पालन नही कर पाया था। उसकी पूरविया प्राणेश्वरी ने ही उसे चीरकर धर दिया था।

•

क्या नही आई तुम्हे ? छि छि इसमे तो हम रडी पतुरियो के कुरम क्यों नही बन जाते ? कम से कम अच्छी चीजें तो सुनते रहोगे। इतना रियाज, गले की यह बुलन्दी क्या जान बूझकर ही नाश मे बहाने जा रहे हो मियां ? जरा सोचो, जो गला जैजैवन्ती के ओडो रिषभ और दो दो गान्धारो को सधे सिखे घोडो की तरह हांकता अपने रियाज के चाबुक से साथ वाहवाही बटोरता है, वही न जाने किस निगोड रईस की गंवारू साहबजादी को सिखा रहा है बिलावल—तू ही अधार सकल त्रिभवन को' या फिर भूपाली या यमन! पण्डितजी सारा इल्म सीखकर, अब क्या फिर से अलिफ पर पहुचा चाओगे ? तुम्हारा यही ट्यूशन तुम्हे एक दिन कंगाल बनाकर रख देगा। अच्छा पहनना अच्छा खाना क्या यही सब लालच तुम्हे खीच रहा है ? यह सब तुम्हें यहा भी मिल सकता है। हमारी पूरी बस्ती तुम्हे सर-आखो पर रखेगी, पण्डितजी जान-बूझकर अधे कुए मे मत कूदो!

गजानन विचित्र दुविधा मे पड गया था, एक ओर जाने से पहले दी गई गौहरजान की चेतावनी उसके कानो मे गूज रही थी— देखो गजानन तुम उन कमीनियो को नहा जानते। तुम जवान हो, गुणी हो, सुन्दर हो। एक बार वहा

कोठे में क्या सदा कान पर जनेऊ चढ़ाकर रियाज़ कर पाओगे बेटा ?"

गजानन पसीना पसीना हो गया था। उस अद्भुत महिला के सम्मुख वह न जाने क्या थरथर काँपता ही रहता था। गायिका बसन्त बिना पूर्वाभ्यास के ही गाने की इच्छा दह कर फँस गया था ?

देखो गजानन, नवाब को मैं तब से जानती हूँ जब उसकी नाक टलटल बहती थी। नानी की बलिया की दामनी और पिता थे ननाव। कहते तो हैं नवाब वाजिदअली शाह का रक्त है अभागी में। कभी बारायकी में नवाब की दी गई जागीर का पट्टा भी दिखाया था उसने मुझे पर है तो पूरब की !"

हँसकर गौहरजान फिर बड़े स्नेह से उसकी पीठ थपथपाकर खड़ी हो गई थी। दूसरे ही दिन बोरिया बिस्तर बाँध राजा साहब की कोठी चले आने का वचन उससे लेकर गौहरजान फिर पटना के किसी रईस की महफिल को धन्य करने चली गई थी। पर गजानन अपने वचन का अन्त तक पालन नहीं कर पाया था। उसकी पूरबिया प्राणेश्वरी ने ही उसे बीच पर धर दिया था।

काम नहीं आई तुम्हें ? छि छि इससे तो हम रंडी पतुरियों के कुरम क्यों नहीं बन जाते ? कम से कम अच्छी चीज़ें तो सुनते रहोगे। इतना रियाज़, गले की यह बुलन्दी क्या जान बूझकर ही नाले में बहाने जा रहे हो मियाँ ? ज़रा सोचो, जा रहा जैजैवन्ती के रोज-रोज रिदम और दो दो गायकों को सधे सिखे घोड़ों की तरह हाँकता अपने रियाज़ के चाबुक से साथ वाहवाही बटोरता है, वही न जाने किस निगोड़े रईस की गँवारू साहबज़ादी को सिखा रहे हैं बिलावल—तू ही अधार सकल त्रिभुवन को' या फिर भूपाली या यमन ! पण्डितजी सारा इल्म सीखकर, अब क्या फिर से अलिफ का पहुँचा पाओगे ? तुम्हारा यही ट्यूशन तुम्हें एक दिन कंगाल बनाकर रख देगा। अच्छा पहनना, अच्छा खाना क्या यही सब लालच तुम्हें खींच रहा है ? यह सब तुम्हें यहाँ भी मिल सकता है। हमारी पूरी बस्ती तुम्हें सर-आँखों पर रखेगी, पण्डितजी जान-बूझकर अंधे कुएँ में मत कूदो !

गजानन विचित्र दुविधा में पड़ गया था, एक ओर जाने से पहले दी गई गौहरजान की चेतावनी उसके कानों में गूँज रही थी— देखो गजानन, तुम उन कमीनियों को नहीं जानते। तुम जवान हो, गुणी हो, सुन्दर हो। एक बार वहाँ

व्यक्तित्व की पराजय स्वीकारता वह लौंडियों-नौकरानियों से भी दुरदुराया जाता तो गजानन का हृदय सहानुभूति से भर आता। छोटी छोटी लड़कियां भी नवाब जान के उस गुरु को छेड़ती रहतीं, क्या पण्डितजी, आज आप सालन ला रहे हैं? नहीं। मेरे करीम ने बढ़ा गोश्त बनाकर धर दिया है ' छिमिया आंचल मुंह पर रखकर मुस्कराती।

'चल हट करमजली मैं क्या खाता हूं बड़ा गोश्त ?" नवीन सरोवी ब्राह्मण अतिथि की उपस्थिति में उस धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण का ब्रह्मतेज एक पल को भुसन नीय की लौ सा ही दप से सुलग उठता।

'क्यों उस दिन सरकार के हाथ से बोटी छीनकर कौन खा रहा था, पण्डितजी ! ' छिमिया नवाबजान की मुंहलगी लौंडी थी और जब देखो तब जानकीप्रसाद के पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती।

'देख रहे हो बेटा गजानन, आज यहां किन्ने भर की छोकरी भी जयपुर घराने के जानकीप्रसाद को बेवजह ऐसे छेड़े जा रहा है !' एक लम्बी सांस खींचकर फिर उन्होंने गजानन की लम्बी कलात्मक अंगुलियों को अपनी मुट्ठी में बन्द कर कहा था "तुम यहां से चले जाओ गजानन, रियाज़ ही करना है तो किसी मन्दिर में बैठकर करो, नहीं तो एक दिन तुम्हारी भी यही गत होगी। एक दिन तुम्हें भी ये बदजात छोकरियां सगी साली-सरहजों की तरह छेड़ने लगेंगी और तुम कुछ नहीं कह पाओगे। इस घर के नमक का यही गुण है बेटा ! रीढ़ की हड्डी को धीरे धीरे गला देता है इस नमक का जहर।"

पर जहां नवाबजान के पैरों के घुंघरू छनकते जानकीप्रसाद की पश्चात्ताप से धुंधली आंखें सूखी सोंठ-सा चेहरा गिरगिट का-सा रंग बदल लेता। झुकी कमर एकदम सतर हो जाती और वह उसे नाच सिखाने खड़े होते, तो लगता वह बूढ़ा जानकीप्रसाद नहीं, स्वर्ग से सद्य अवतरित कोई नृत्यरता अनुपम सुन्दरी अप्सरा है

आवत श्याम लचकि चले
मुरली अधर धरे
मुरली ऐसी बजी सब के
मन को हरे
आवत श्याम

पान से रक्तिम अधरों पर अनोखे स्मित का जाल फैलाता जानकीप्रसाद

व्यक्तित्व की पराजय स्वीकारता वह लौंडियों-नौकरानियों से भी दुरदुराया जाता तो गजानन का हृदय सहानुभूति से भर आता। छोटी छोटी लडकियाँ भी नवाब जान में उस गुरु को छेड़ती रहती, क्या पण्डितजी, आज आप सालन ता खाएग नहीं। मरे करीम ने बढ़ा गोश्त बनाकर धर दिया है ' छिमिया आँचल मुह पर रखकर मुस्कराती।

'चल हट करमजली मैं क्या खाता हू बडा गोश्त ?" नवीन सगोत्री ब्राह्मण अतिथि की उपस्थिति म उस धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण का ब्रह्मतेज एक पल को बुझन नीय की लौ सा ही दप स सुलग उठता।

'क्यो उस दिन सरकार के हाथ स बोटी छीनकर कौन खा रहा था, पण्डितजी!' छिमिया नवाबजान की मुहलगी लौंडी थी और जब देखा तब जानकीप्रसाद के पीछे हाथ धोकर पडी रहती।

'देख रहे हो बेटा गजानन, आज यहा बित्ते भर की छोकरी भी जयपुर घराने के जानकीप्रसाद को बेवजह ऐसे छेड़े जा रहा है!' एक लम्बी सास खींचकर फिर उन्होंने गजानन की लम्बी कलात्मक अगुलियो को अपनी मुट्ठी म बन्द कर कहा था "तुम यहा स चले जाओ गजानन, रियाज ही करना है तो किसी मन्दिर म बैठकर करो, नहीं तो एक दिन तुम्हारी भी यही गत होगी। एक दिन तुम्ह भी ये बदजात छोकरियाँ सगी साली-सरहजो की तरह छेड़ने लगेंगी और तुम कुछ नहीं कह पाओगे। इस घर के नमक का यही गुण है बेटा! रीढ़ की हड्डी को धीरे धीरे गला देता है इस नमक का जहर।"

पर जहा नवाबजान के पैरों के घुघरू छनकते जानकीप्रसाद की पश्चात्ताप से धुधली आखें सूखी सोठ-सा चेहरा गिरगिट का-सा रग बदल लेता। झुकी कमर एक दम सतर हो जाती और वह उसे नाच सिखाने खडे होते, तो लगता वह बूढ़ा जानकीप्रसाद नहीं, स्वग से सद्य अवतरित कोई नृत्यरता अनुपम सुन्दरी अप्सरा है

आवत श्याम लचकि चले
मुरली अधर धरे
मुरली ऐसी बजी सब के
मन को हरे
आवत श्याम

पान से रक्तिम अधरो पर अनोखे स्मित का जाल फैलाता जानकीप्रसाद

छिछोरी प्रेमिका के बिना एक पल नहीं रह सकता था। जब कभी उसकी यायावर प्रेमिका अपने रूप-यौवन की फेरी पर निकलती और उसको साथ चलने का आमन्त्रण देती, वह न चाहने पर भी तैयार हो जाता।

"देखो पण्डितजी" नवाबजान जाने से पहले उसका सारा उत्साह अपनी रूखी चेतावनी से ठण्डा कर देती "वहां जाकर बेमतलब ही हमसे मत उलझ बैठना। तुम जानते हो हमारी जवानी ही हमारी रोटी है वक्त-बेवक्त हमें कहीं जाना पड़े, तो लौटने पर जो मुंह में आए सो कहकर नौकरानियों के सामने हमें जलील मत करना। जिस रात को हम ड्यूटी पर गई, वह रात फिर हमारी नहीं रहती पर जिस रात को हम घर पर रहेंगी, वह बेशक पूरी तरह से तुम्हारी है। कभी कभी तुम एकदम बचपना कर बैठते हो—यही सब हमें अच्छा नहीं लगता।"

ठीक ही कह रही थी नवाब। उसका विहार या दौरा हमेशा ही गजानन का सिरदर्द बढ़ा देता था। जब कभी नवाब अपने किसी समृद्ध संगीत प्रेमी के यहां रात की महफिल का निमन्त्रण पाकर जाती गजानन मुंह फुला लेता। सारी रात वह कमरे में बेचैन करवटें बदलता रहता। जिसके लिए वह एक सम्भ्रान्त हिन्दू गृह में रहने का प्रस्ताव स्वेच्छा से ठुकरा आया था जिसके सुन्दर चेहरे को देख वह अपनी जन्मभूमि माता पिता सबको भूल गया था, वह उसे ऐसी निर्ममता से छोड़ न जाने किस अनजान बाहुपाश में बंधने चली जाती। कभी-कभी तो वह तीन चार दिन बाद घर लौटती और बिना गजानन से मिले ही कमरा बन्द कर दिन भर सोती रहती। अलस दुपहरिया ढलती तो छिमिया उसे बुलाने आती 'सरकार ने बुलाया है।'

'कह दो हमारी तबियत ठीक नहीं है।" वह बड़ी अकड़ से कहता पर फिर द्वार का सामान्य सा खटका भी उसे चौंका देता। क्या पता, शायद घबराकर स्वयं ही उसे देखने चली आए। पर वह कभी आती नहीं थी। हारकर स्वयं गजानन ही मुंह लटकाए द्वार पर भिक्षुक-सा खड़ा हो जाता। वह बड़ी ही नटखट मुस्कान से उसके निर्वीर्य पौरुष को उकसाती, 'बेहद थक गई हूं पण्डितजी।' उसकी पेशेवर धृष्ट अंगड़ाई फिर गजानन का खून खौला देती 'क्यों क्या-क्या बटोर लाई कलकत्ते की नवाबजान!" तीव्र व्यंग्य का हलाहल उसके तिर्यक अधरों को खंजर-सा तीखा बना देता।

उसकी निलज्ज सुन्दरी प्रेयसी पलंग पर पड़ी-पड़ी वैसी ही बेहयाई से

छिछोरी प्रेमिका के बिना एक पल नही रह सकता था। जब कभी उसकी यायावर प्रेमिका अपने रूप-यौवन की फेरी पर निकलती और उसको साथ चलने का आमन्त्रण देती, वह न चाहने पर भी तैयार हो जाता।

"देखो पण्डितजी" नवाबजान जाने से पहले उसका सारा उत्साह अपनी रूखी चेतावनी से ठण्डा कर देती "वहा जाकर बेमतलब ही हमसे मत उलझ बैठना। तुम जानते हो हमारी जवानी ही हमारी रोटी है वक्त-बेवक्त हम कही जाना पडे, तो लौटने पर जो मुह म आए सो कहकर नौकरानियों के सामने हमे जलील मत करना। जिस रात को हम ड्यूटी पर गइ, वह रात फिर हमारी नही रहती पर जिस रात को हम घर पर रहेगी, वह बशक पूरी तरह से तुम्हारी है। कभी कभी तुम एकदम बचपना कर बैठते हो— यही सब हम अच्छा नही लगता।"

ठीक ही कह रही थी नवाब। उसका विहार का दौरा हमेशा ही गजानन का सिरदद बढा देता था। जब कभी नवाब अपने किसी समृद्ध सगीत प्रेमी के यहा रात की महफिल का निमन्त्रण पाकर जाती गजानन मुह फुला लेता। सारी रात वह कमरे मे बेचन करवटें बदलता रहता। जिसके लिए वह एक सम्भ्रान्त हिन्दू गह मे रहने का प्रस्ताव स्वेच्छा से ठुकरा आया था जिसके सुन्दर चेहरे को देख वह अपनी जन्मभूमि माता पिता सबको भूल गया था, वह उसे ऐसी निममता से छोड न जाने किस अनजान बाहुपाश म बधने चली जाती। कभी-कभी तो वह तीन चार दिन बाद घर लौटती और बिना गजानन से मिले ही कमरा बन्द कर दिन भर सोती रहती। थलम दुपहरिया ढलती तो छिमिया उसे बुलान आती 'सरकार न बुलाया है।"

कह दो हमारी तबियत ठीक नहीं है।" वह बडी अकड से कहता पर फिर द्वार का सामान्य सा खटका भी उसे चौंका देता। क्या पता, शायद घबराकर स्वय ही उसे देखने चली आए। पर वह कभी आती नही था। हारकर स्वयं गजानन ही मुह लटकाए द्वार पर भिक्षुक-सा खडा हो जाता। वह बडी ही नटखट मुस्कान से उसके निर्वीय पौरुष को उकसाती, 'बेहद थक गई हू पण्डितजी।' उसकी पेशेवर धृष्ट अगडाई फिर गजानन का खून खौला देती 'क्यो क्या-क्या बटोर लाईं कलकत्ते की नवाबजान!" तीव्र व्यग्य का हलाहल उसके तियक अधरो को खजर-सा तीखा बना देता।

उसकी निलज्ज सुन्दरी प्रेयसी पलग पर पडी-पडी वैसी ही बेहयाई से

लोलुप प्रेमिका गगातट पर ही छूट गई है। वह स्वरलयनटिनी थी, स्वग से तरित कोई किन्नरी! पल पल अपनी नवीन छटा बिखेरती, वह उसे अपने शीकरण मन्त्र से बाधती, उसके गले म हाथ डालकर उसीकी प्रिय पक्तिया गुनाने लगती

जालिम जोबना हो
कस रखियो छिपाय
एक तो बदरा गरजे
दूजे बिजरी चमके
तीजे बलम सौतन
बिरमाए
जालिम जोबना हो

उसके मादक कण्ठ का जादू और उन झील-सी गहरी नशभरी आखो की नीलेवा गहराई म गजानन डूबने-उतराने लगता—तरुण प्रेमी की चौडी छाती पर सिर रखकर वह फिर दूसरे पद म स्वय अपने सौंदय की प्रशस्ति साकार कर देती।

इक तो पतली कमरिया
दूज तिरछी नजरिया
तीजे नैना रस बरसाए
जालिम जोबना हो
कैसे रखियो छिपाय

गजानन समय-समय पर अपमान प्रताडना की कठोर ठोकरें खाकर भी बाबजान के प्रेम म डूबता चला गया था। एक वष म ही उसके विलासपूण जीवन का प्रभाव उसके कण्ठ पर ही नहीं, उसके पूरे व्यक्तित्व पर अपनी छाप छोड गया था। जमकर रियाज करने की अब न उसे इच्छा ही रह गई थी, न समय। उधर, बाबजान के यश का सितारा बुलन्दी पर था। पुराने ढग की बनी अपनी कोठी को वह अब तुडवा फुडवाकर नये ढग का फ्लैट बनवा रही थी। इस नय निर्माण-काय का सचालन उसने बडे विश्वास से अपने नवीन प्रेमी जानकी को ही सौंप दिया था। उसीको लेकर गजानन और जानकीप्रसाद मे आए दिन चख चख होने लगी थी, धीरे धीरे वह वैमनस्य अब उग्र रूप ले

रलोलुप प्रेमिका गगातट पर ही छूट गई है। वह स्वरलयनटिनी थी, स्वग से तरित कोई किन्नरी। पल पल अपनी नवीन छटा बिखेरती, वह उसे अपने ौवरण मन्त्र से बाधती, उसके गले म हाथ डालकर उसीकी प्रिय पक्तिया गुनाने लगती

जालिम जोबना हो
मन रखियो छिपाय
एक तो बदरा गरजे
दूजे बिजरी चमके
तीजे बलम सौतन
बिरमाए
जालिम जोबना हो

उसके मादक कण्ठ का जादू और उन झील-सी गहरी मरबती आखो की निलेवा गहराई म गजानन डूबने-उतरान लगता—तरुण प्रेमी की चौडी छाती र सिर रखकर वह फिर दूसरे पद म स्वय अपने सौंदय की प्रशस्ति साकार र देती।

इक तो पतली कमरिया
दूज तिरछी नजरिया
तीजे नैना रस बरसाए
जालिम जोबना हो
मन रखियो छिपाय

गजानन समय-समय पर अपमान प्रताडना की कठोर ठोकरें खाकर भी वाबजान के प्रेम म डूबता चला गया था। एक वष म ही उसके विलासपूण वन का प्रभाव उसके कण्ठ पर ही नहीं, उसके पूरे व्यक्तित्व पर अपनी छाप ोड गया था। जमकर रियाज करने की अब न उसे इच्छा ही रह गई थी, न य। उधर, गवाबजान के यश का सितारा बुलन्दी पर था। पुरानी ढग की बनी पनी कोठी को वह अब तुडवा फुडवाकर नये ढग का फ्लैट बनवा रही थी। स नय निर्माण-काय का सचालन उसने बडे विश्वास से अपने नवीन प्रेमी जानकी को ही सौंप दिया था। उसीको लेकर गजानन और जानकीप्रसाद मे ाए दिन चख चख होने लगी थी, धीरे धीरे वह वैमनस्य अब उग्र रूप ले

निकली और उधर से स्वयं अंग्रेज लाट साहब हवाखोरी के लिए निकले। एक पल को लाट साहब के घोड़े भी खड़े होकर हिनहिनाने लगे। पता नहीं, यह उस सुभद्र का जादू था या स्वयं गौहरजान का! पर लाट साहब ने तत्काल उस अद्भुत व्यक्तित्व का सम्मान किया, अपना हैट उतारकर। जब गौहरजान की फिटन गुजर गई, तब उन्होंने अपने ए० डी० सी० से पूछा 'यह रोबदार महिला कहां की रानी है?"

निश्चय ही उस दिन उनका ए० डी० सी० मूछों ही मूछों से मुस्कराया होगा! पूरे कलकत्ता भर की उस साम्राज्ञी का परिचय पाकर लाट साहब बौखला गए थे, शाही फरमान ने उसी दिन उनका सान्ध्यकालीन भ्रमण बन्द कर दिया। इसीसे अब वह दोपहर में घूमने निकलती थी। बेचारा गजानन पण्डित घबराकर ठिठक गया।

वाह क्या सूरत बना ली है, गजानन? मैं तो तुम्हें न पहचानती तब भी जान लेती कि तुम आजकल किस बस्ती में रह रहे हो!"

गजानन का चेहरा लाल पड़ गया था।

यह मत समझना कि गौहर कुछ जानती ही नहीं! गौहर की पीठ में भी आंखें हैं, बेटा! क्यों अपना सर्वनाश कर रहे हो! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। प्रबोध की पत्नी जाती रही, उसकी बेटी अपनी बेटी-सी ही प्रिय है। उस कोठी में आने पर तुम्हारा कभी अनिष्ट नहीं होगा गजानन!'

ठीक ही कहा था गौहरजान ने! अनिष्ट उसका नहीं हुआ—हुआ था स्वयं कोठी का। इसी बीच उसकी नवाबजान से एक दिन झड़प हो गई। सीमेंट के कुछ बोरों का हिसाब नहीं मिल रहा था, एक तो उन दिनों नवाब को माईग्रेन के भयानक दौरे पड़ रहे थे। नये फ्लैट बनाने के चक्कर में उसने अंधाधुंध रुपया बहा दिया था उधर जिस वंशगत बीभत्स व्याधि को वह जर्मनी से मंगवाई गई बहुमूल्य औषधियों से दबा चुकी थी, वह अनियम के अनाचार से फिर उभर आई थी। गजानन को लेकर ही जब वह उस जर्मन डाक्टर के पास गई तब उसने करुण दृष्टि से उसे देखकर कहा था 'मुझे दुःख है मैडम यह बीमारी हमेशा दुबारा या मारने आती है या पंगु बनाने।" उस दण्ड का उर्दू तर्जुमा किए बिना ही वह फिर नवाब को लौटा लाया था।

क्या कह रहा था मुआ लंगूर?" उसने पूछा, तो गजानन ने हंसकर कहा

निकली और उधर से स्वयं अंग्रेज लाट साहब हवाखोरी के लिए निकले। एक पल को लाट साहब के घोड़े भी खड़े होकर हिनहिनाने लगे। पता नहीं, वह उस खुशबू का जादू था या स्वयं गौहरजान का! पर लाट साहब ने तत्काल उस अद्भुत व्यक्तित्व का सम्मान किया, अपना हैट उतारकर। जब गौहरजान की फिटन गुजर गई, तब उन्होंने अपने ए० डी० सी० से पूछा 'यह रोबदार महिला कहां की रानी है?"

निश्चय ही उस दिन उनका ए० डी० सी० मूछों ही मूछों में मुस्कराया होगा! पूरे कलकत्ता भर की उस साम्राज्ञी का परिचय पाकर लाट साहब चौंकते गए थे, शाही फरमान ने उसी दिन उनका सान्ध्यकालीन भ्रमण बन्द कर दिया। इसीसे अब वह दोपहर में घूमने निकलती थी। बेचारा गजानन पण्डित घबराकर ठिठक गया।

वाह क्या सूरत बना ली है, गजानन? मैं तो तुम्हें न पहचानती तब भी बता देती कि तुम आजकल किस बस्ती में रहते हो!'

गजानन का चेहरा लाल पड़ गया था।

यह मत समझना कि गौहर कुछ जानती ही नहीं! गौहर की पीठ में भी आंखें हैं, बेटा! क्यों अपना सत्यानाश कर रहे हो! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। प्रबोध की पत्नी जाती रही, उसकी बेटी अपनी बेटी-सी ही प्रिय है। उस कोठी में आने पर तुम्हारा कभी अनिष्ट नहीं होगा गजानन!'

ठीक ही कहा था गौहरजान ने! अनिष्ट उसका नहीं हुआ—हुआ था स्वयं कोठी का। इसी बीच उसकी नवाबजान से एक दिन झड़प हो गई। सीमेंट के कुछ बोरों का हिसाब नहीं मिल रहा था, एक तो उन दिनों नवाब को माईग्रेन के भयानक दौरे पड़ रहे थे। नये फ्लैट बनाने के चक्कर में उसने अन्धाधुंध रुपया बहा दिया था उधर जिस वंशगत वीभत्स व्याधि को वह जर्मनी से मंगवाई गई बहुमूल्य औषधियों से दबा चुकी थी, वह अनियम के अनाचार से फिर उभर आई थी। गजानन को लेकर ही जब वह उस जर्मन डाक्टर के पास गई तब उसने करुण दृष्टि से उसे देखकर कहा था 'मुझे दुःख है मैडम यह बीमारी हमेशा दुबारा या मारने आती है या पंगु बनाने।" उस दण्ड का उर्दू तर्जुमा किए बिना ही वह फिर नवाब को लौटा लाया था।

क्या कह रहा था मुआ लंगूर?" उसने पूछा, तो गजानन ने हंसकर कहा

स्वयं ही लटकते नीचे तक लहरा गए थे। पहले-पहले राजलक्ष्मी नित्य मदाम के साथ आती और गाना सीखकर चली जाती, फिर वह अकेली ही आने लगी। अपने गम्भीर सयमित आचरण से गजानन मदाम का विश्वास जीत चुका था। इमेज' बनाने में उस कुटिल प्रेमी ने अपनी पूर्व प्रेमिका से अद्भुत पाठ पढ़े थे। राजलक्ष्मी की संगीत शिक्षा के बीच कभी-कभी स्वयं राजा प्रबोधरंजन भी आकर बैठ जाते 'हमारी बात मानो बेटा, हमारी इस बिटिया का गला खयाल गायकी का गला नहीं है। मीठे भजन-कीर्तन, यही सब चल सकता है इसके कंठ में। देखते नहीं चौथे काले से ऊपर गाने को तैयार ही नहीं होती यह लड़की!" परिश्रमी संगीत-गुरु कितने यत्न से उनकी पुत्री को गाना सिखा रहे हैं, यह देख राजा साहब ने तीसरे ही महीने गजानन की वेतन-वृद्धि कर दी। यही नहीं, अब वह कभी-कभी उसे गजानन के साथ, इधर-उधर जमींदारी महलों में हो रहे संगीत-जलसों में भी भेज देते। उनका स्नेहपूर्ण औदार्य से दिया गया यही प्रश्रय धीरे-धीरे राजलक्ष्मी को पतन के गर्त की ओर ढकेलता चला गया। मदाम इस बीच चौकन्नी हो गई थी। उन्होंने अपने अनुशासन की लगाम खींच ली किन्तु वहां आने से पूर्व प्रेमनगरी की भूलभुलैया का गहन अध्ययन गजानन की कुटिल बुद्धि का माजकर चमका गया था। कब और कैसे कठोर अनुशासन को धता दिया जा सकता है वह सीख-पढ़कर ही आया था। नवाबजान की दृष्टि में था, वह उसकी अनेक किशोरी परिचारिकाओं को ऐसी ही भूलभुलैया से बड़ी कुशलता से सेंध लगा चांदनी रात्रि के डूबते द्विप्रहर में, गंगाघाट में नौका विहार करा लाया था। उनके अक्षत कौमार्य का चिह्न सुभग नासिका पर हिलती उनकी नथनी का लोलक, समय से चल रही किसी घड़ी के ईमानदार पेंडुलम की भांति हिलता रहता और दुनिया को ठगने वाली ठगिनी नवाबजान भी उन्हें नहीं पकड़ पाती। राजलक्ष्मी के अर्द्ध विकसित अबोध हृदय को जीतने में उस प्रेमकला में पटु प्रेमी को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। मदाम इस बीच चैतन्य हो गई थीं और उन्होंने एक दो बार राजा प्रबोधरंजन को सावधान करने की चेष्टा भी की पर राजा साहब ने हंसकर बात उड़ा दी थी, 'क्या बात कर रही हो क्रिस्टीन, लक्ष्मी एकदम बच्ची है और गजानन कैसा शरीफ लड़का है, देखतीं नहीं? आज तक मैंने उसे आंख उठाकर बातें करते भी नहीं देखा है। हमेशा नजर झुकी रहती है लड़के की!"

स्वयं ही लटकते नीचे तक लहरा गए थे। पहले-पहले राजलक्ष्मी नित्य मदाम के साथ आती और गाना सीखकर चली जाती, फिर वह अकेली ही आने लगी। अपने गम्भीर संयमित आचरण से गजानन मदाम का विश्वास जीत चुका था। 'इमेज' बनाने में उस कुटिल प्रेमी ने अपनी पूर्व प्रेमिका से अद्भुत पाठ पढ़े थे। राजलक्ष्मी की संगीत शिक्षा के बीच कभी-कभी स्वयं राजा प्रबोधरंजन भी आकर बैठ जाते 'हमारी बात मानो बेटा, हमारी इस बिटिया का गला खयाल गायकी का गला नहीं है। मीठे भजन-कीर्तन, यही सब चल सकता है इसके कंठ में। देखते नहीं चौथे काले से ऊपर गाने को तैयार ही नहीं होती यह लड़की!" परिश्रमी संगीत-गुरु कितने यत्न से उनकी पुत्री को गाना सिखा रहे हैं, यह देख राजा साहब ने तीसरे ही महीने गजानन की वेतन-वृद्धि कर दी। यही नहीं, अब वह कभी-कभी उसे गजानन के साथ, इधर-उधर जमींदारी महलों में हो रहे संगीत-जलसों में भी भेज देते। उनका स्नेहपूर्ण औदार्य से दिया गया यही प्रश्रय धीरे-धीरे राजलक्ष्मी को पतन के गर्त की ओर ढकेलता चला गया। मदाम इस बीच चौकन्नी हो गई थी। उन्होंने अपने अनुशासन की लगाम खींच ली किन्तु वहां आने से पूर्व प्रेमनगरी की भूलभुलैया का गहन अध्ययन गजानन की कुटिल बुद्धि को माजकर चमका गया था। कब और कैसे कठोर अनुशासन को धता दिया जा सकता है वह सीखकर ही आया था। नवाबजान की दृष्टि से बचा, वह उसकी अनेक किशोरी परिचारिकाओं को ऐसी ही भूलभुलैया से बड़ी कुशलता से सेंध लगा चांदनी रात्रि के डूबते द्विप्रहर में, गंगाघाट में नौका विहार करा लाया था। उनके अक्षत कौमार्य का चिह्न सुभग नासिका पर हिलती उनकी नथनी का लोलक, समय से चल रही किसी घड़ी के ईमानदार पेंडुलम की भांति हिलता रहता और दुनिया को ठगने वाली ठगिनी नवाबजान भी उन्हें नहीं पकड़ पाती। राजलक्ष्मी के अर्द्ध विकसित अबोध हृदय को जीतने में उस प्रेमकला में पटु प्रेमी को विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा। मदाम इस बीच चैतन्य हो गई थीं और उन्होंने एक दो बार राजा प्रबोधरंजन को सावधान करने की चेष्टा भी की पर राजा साहब ने हंसकर बात उड़ा दी थी, 'क्या बात कर रही हो क्रिस्टीन, लक्ष्मी एकदम बच्ची है और गजानन कैसा शरीफ लड़का है, देखतीं नहीं? आज तक मैंने उसे आंख उठाकर बातें करते भी नहीं देखा है। हमेशा नजर झुकी रहती है लड़के की!"

देता रहता और जब गला थक जाता, तब वहीं सो जाता। कभी-कभी उसे कमरे मे परसी थाली पर ही जमा कर वह उसीपर औंधा पड़ा मिलता, पर कभी नशा उतरने पर अपने ही हैंगओवर से दग्ध वह कोने मे सिमटा सिकुड़ा टुकुर टुकुर देखता रहता। एक ही शहर में रहकर भी वेरोनिका ने शायद जान बूझकर ही कभी लक्ष्मी को खोजने की चेष्टा नही की थी।

एक बार हजरतगज मे लक्ष्मी नतमस्तक खड़ी प्रसाद चढा रही थी तब ही सहसा वेरोनिका उसका स्कध स्पर्श करती वही से निकल गई थी। दोनो ने एक दूसरे को देखा पर किसीने भी चेहरे पर हृदय के एक भाव को भी नही फटकने दिया। घर लौटने पर उस दिन लक्ष्मी का मन किसी भी काम म नही लगा था। बार बार, उसे वेरोनिका की वह कठोर उदासीन मुद्रा व्याकुल करती रही थी। उसी दिन आधी रात को गजानन शराब के नशे म चूर होकर लौटा तो वह नित्य की भाति उठकर उसे खाना देने भी नही गई। सुरगमा ने ही लड़खड़ाते पिता को पलग पर लिटा दिया था। लक्ष्मी को अब सारी चिन्ता सुरगमा की थी। वह बड़ी हो रही थी, मा ने उससे अब तक कुछ भी नही कहा था किन्तु उसके रहस्यमय अतीत की सदिग्धता प्रतिपल उसके कुतूहल को उकसाती जा रही थी। शैशव की स्मृति बड़ी प्रखर होती है। वेरोनिका का स्नेहपगा वात्सल्य, लानबाग के उस बगले की ब्यूगन वोलिया की बेल फीरोजी आखो वाले डैडी की स्मृति कभी-कभी किसी बहुत पुराने ऐल्बम म लगे धुधले रगउड़े चित्रो की ही भाति उसे व्याकुल कर देते। एक दिन, अतीत के गहन अधकार मे परिचय की पग डण्डिया टटोलती सुरगमा का पथ स्वय उसके मदालस जनक के प्रलाप ने ही आलोकित कर स्पष्ट कर दिया।

बड़ी सती-सावित्री बनती है ससुरी जैसा बाप वैसी बेटी। नाम के बनते थे राजा, उनकी क्या एक गौहरजान थी? उस ससुरी मेम के साथ मिलकर अपनी पत्नी की हत्या की जब बाप ही ऐसा था तब बेटी क्यों रग नही लाती? पहले हमारी लुटिया डुबोई, फिर भागी उस फिरगी गाड के साथ—अभी भी लखनऊ की हर गली मे न जाने कितने यार हैं इसके '

सुरगमा का हाथ पकड़कर लक्ष्मी फिर बरामदे की जाफरी म खीच ले गई थी। उसके जीवन का यह विकृत कर प्रस्तुत किया गया आधा इतिहास जब पुत्री सुन चुकी थी तब अब उसे सब कुछ बता देने म ही श्रेय था। धीरे धीरे अधकार

देता रहता और जब गला थक जाता, तब वहीं सो जाता। कभी-कभी उसे कमरे मे परसी थाली पर ही वमन कर वह उसीपर औंधा पडा मिलता, पर कभी नशा उतरने पर अपने ही हैंगओवर से दग्ध वह कोने मे सिमटा सिकुडा टुकुर टुकुर देखता रहता। एक ही शहर में रहकर भी वरोनिका ने शायद जान बूझकर ही कभी लक्ष्मी को खोजने की चेष्टा नही की थी।

एक बार हजरतगज मे लक्ष्मी नतमस्तक खडी प्रसाद चढा रही थी तब ही सहसा वैरोनिका उसका स्कध स्पर्श करती वहीं से निकल गई थी। दोनो ने एक दूसरे को देखा पर किसीने भी चेहरे पर हृदय के एक भाव को भी नही फटकने दिया। घर लौटने पर उस दिन लक्ष्मी का मन किसी भी काम म नही लगा था। बार बार, उसे वैरोनिका की वह कठोर उदासीन मुद्रा व्याकुल करती रही थी। उसी दिन आधी रात को गजानन शराब के नशे म चूर होकर लौटा तो वह नित्य की भाति उठकर उसे खाना देने भी नही गई। सुरगमा ने ही लडखडाते पिता को पलग पर लिटा दिया था। लक्ष्मी को अब सारी चिन्ता सुरगमा की थी। वह बडा हो रही थी, मा ने उससे अब तक कुछ भी नही कहा था किंतु उसके रहस्यमय अतीत की सदिग्धता प्रतिपल उसके कुतूहल को उकसाती जा रही थी। शैशव की स्मृति वडी प्रखर होती है। वैरोनिका का स्नहपगा वात्सल्य, लालबाग के उस बगले की व्यूगन वोलिया की बेल फीरोजी आखो वाले डैडी की स्मृति कभी-कभी किसी बहुत पुराने ऐल्बम म लगे धुधले रगउडे चित्रो की ही भाति उसे व्याकुल कर देते। एक दिन, अतीत के गहन अधकार मे परिचय की पग डण्डिया टटोलती सुरगमा का पथ स्वय उसके मद्यालस जनक के प्रलाप ने ही आलोकित कर स्पष्ट कर दिया।

बडी सती-सावित्री बनती है ससुरी जैसा बाप वसी बेटी। नाम के बनते थे राजा, उनकी क्या एक गौहरजान थी? उस ससुरी मेम के साथ मिलकर अपनी पत्नी की हत्या की जब बाप ही ऐसा था तब बेटी क्यों रग नही लाती? पहले हमारी लुटिया डुबोई, फिर भागी उस फिरगी गाड के साथ—अभी भी लखनऊ की हर गली मे न जाने कितने यार हैं इसके '

सुरगमा का हाथ पकडकर लक्ष्मी फिर बरामदे की जाफरी म खीच ले गई थी। उसके जीवन का यह विकृत कर प्रस्तुत किया गया आधा इतिहास जब पुत्री सुन चुकी थी तब अब उसे सब कुछ बता देने म ही श्रेय था। धीरे धीरे अधकार

पक्का घर चुका हू, उस रियासत के वैभव का बगाल मे कौन नही जानता ?'

' किन्तु, ठीक दो ही वर्षों मे, काशी के उस महापण्डित की भविष्यवाणी मेरे जीवन मे साकार होकर उतर आई थी। मैंने आज तुझसे कुछ भी नही छिपाया सुरगमा जो ठोकर मैंने खाई है, उससे तुझे बचा सकू यही मैंने आज तक आचल फैलाकर मागा है। कई बार जी मे आया, लखनऊ छोडकर कही चली जाऊ, पर जाती भी कहा ? पितृगृह लौट जाने का प्रश्न ही नही उठ सकता था। जो गृह मेरी आखो के सामने ही विध्वस्त हो चुका था, उसका अस्तित्व भी शायद अब मिट चुका होगा। तेरे पिता की जन्मभूमि, मुझे कभी भी नहीं स्वीकारेगी, यह तेरे पिता मुझसे कई बार कह चुके थे। मैं तेरे ही कारण, तेरे पिता को छोडकर, कही नही गई, सोचती थी तूने ब्राह्मण की पुत्री होकर जन्म लिया है, जो तेरा पिता है उससे तुझे कभी विलग नही करूगी। जितनी ही बार मदान्ध पति का अन्याय मेरे चित्त को विद्रोही बनाता, उतनी ही बार मेरे जन्मगत सस्कार उस विद्रोह को दबा देते। मैंने अपनी मा की असीम सहनशीलता देखी है। पिता के बडे से बडे अन्याय को भी उन्होंने मृत्युपर्यन्त बिना किसी उपालम्भ के झेला था। कहती थी 'मुन्नी तेरे ही लिए मैं यहा से नही जाती। पिता के जीवित रहने पर भी यदि सन्तान किसी और के घर पले, तो इससे बडा उसका दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? "

"मुझे भूखा मार रही है तू—अरी ओ राजा साहब की राजकन्या—हाय मुझे इन मा-बेटी ने भूखा मार दिया है रे।" गजानन होश मे आकर चीखने लगा तो सुरगमा, हडबडाकर उठ गई। पिता के अविवेकी आचरण के बावजूद उसे गजानन से अनोखा लगाव था, उधर उसके लिए गजानन के प्यार का भी अन्त नहीं था। नशे मे चूर रहता तब भी सुरगमा ही उसे हाथ पकडकर पलग पर लिटा देती और जब वह नशे के गहरा घोर से चैतन्यावस्था के अस्पष्ट आलोक मे मिचमिचाई आखें खोलता, सुरगमा ही उसके बिखरे बालो मे अगुलिया फेर कर पूछती— "कैसी तबीयत है बाबा, चाय पियेंगे ?"

पुत्री के सुकुमार चेहरे मे, वर्षों पूर्व की विस्मृत जननी का वात्सल्य उसे पश्चाताप की दहन से झुलसाकर रख देता। शराब के हैंगओवर मे डूबा गजानन फिर कभी-कभी अबोध शिशु-सा सुबकने लगता, "मुझे माफ कर दे बेटी, मैं तेरा

सु ६

पक्का घर चुका हू, उस रियासत के वैभव का बगाल मे कौन नही जानता ?'

' किन्तु, ठीक दो ही वर्षो मे, काशी के उस महापण्डित की भविष्यवाणी मेरे जीवन मे साकार होकर उतर आई थी। मैंने आज तुझसे कुछ भी नही छिपाया सुरगमा जो ठोकर मैंने खाई है, उससे तुझे बचा सकू यही मैंने आज तक आचल फैलाकर मागा है। कई बार जी मे आया, लखनऊ छोडकर कही चली जाऊ, पर जाती भी कहा ? पितृगृह लौट जाने का प्रश्न ही नही उठ सकता था। जो गढ़ मेरी आखो के सामने ही विध्वस्त हो चुका था, उसका अस्तित्व भी शायद अब मिट चुका होगा। तेरे पिता की जन्मभूमि, मुझे कभी भी नहीं स्वीकारेगी, यह तेरे पिता मुझसे कई बार कह चुके थे। मैं तेरे ही कारण, तेरे पिता को छोडकर, कही नही गई। सोचती थी तूने ब्राह्मण की पुत्री होकर जन्म लिया है, जो तेरा पिता है उससे तुझे कभी विलग नही करूगी। जितनी ही बार मदान्ध पति का अन्याय मेरे चित्त को विद्रोही बनाता, उतनी ही बार मेरे जन्मगत सस्कार उस विद्रोह को दबा देते। मैंने अपनी मा की असीम सहनशीलता देखी है। पिता के बडे से बडे अन्याय को भी उन्होंने मृत्युपर्यन्त बिना किसी उपालम्भ के झेला था। कहती थी 'मुन्नी तेरे ही लिए मैं यहा से नही जाती। पिता के जीवित रहते पर भी यदि सन्तान किसी और के घर पले, तो इससे बडा उसका दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? "

"मुझे भूखा मार रही है तू—अरी ओ राजा साहब की राजकन्या—हाय मुझे इन मा-बेटी ने भूखा मार दिया है रे।" गजानन होश मे आकर चीखने लगा तो सुरगमा, हडबडाकर उठ गई। पिता के अविवेकी आचरण के बावजूद उसे गजानन से अनोखा लगाव था, उधर उसके लिए गजानन के प्यार का भी अन्त नहीं था। नशे मे चूर रहता तब भी सुरगमा ही उसे हाथ पकडकर पलग पर लिटा देती और जब वह नशे के गहरे घोर से चैतन्यावस्था के अस्पष्ट आलोक मे मिचमिचाई आखें खोलता, सुरगमा ही उसके बिखरे बालो मे अगुलिया फेर कर पूछती— "कैसी तबीयत है बाबा, चाय पियेंगे ?"

पुत्री के सुकुमार चेहरे मे, वर्षों पूर्व की विस्मृत जननी का वात्सल्य उसे पश्चाताप की दहन से झुलसाकर रख देता। शराब के हैंगओवर मे डूबा गजानन फिर कभी-कभी अबोध शिशु-सा सुबकने लगता, "मुझे माफ कर दे बेटी, मैं तेरा

सु ६

करता था, वहां से भी न जाने कितनी बार अग्रिम वेतन लेकर वह उनकी नजरों में अपने को यथेष्ट गिरा चुका था उधर राजलक्ष्मी का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला जा रहा था। महत्त्वाकांक्षिणी राजलक्ष्मी जान गई थी कि उसके स्वयं का जीवन अब बुझते दिए की लौ की ही भांति टिमटिमा रहा है, इसीसे उसका प्रत्येक क्षण अब पुत्री के भविष्य का जाल बुनने में ही व्यतीत होता था, "सुरंगमा, मेरी बड़ी इच्छा है कि तू कम्पिटीशन में बैठे।'

पर मेरी इच्छा तो नहीं है मां 'वह हंसकर तत्क्षण मां का प्रस्ताव खोटे सिक्के-सा फेर देती। लक्ष्मी का हृदय धड़कने लगता कहीं उसीकी सी कोई मूर्खता तो नहीं कर बैठी अभागी।

'तब ? क्या करेगी ? दिन रात शराबी बाप का दरवाजे से उठाकर पलंग पर लिटाती रहेगी क्या ? या मेरी तरह मास्टरनी बन जीवन भर खूंखार सिरफिरी इंस्पेक्टरनियों की धौंस सहेगी ? सुन ले लड़की, सरकारी कॉलेज की मास्टरनी बनी तो वे विभागीय शेरनियां तेरा खून पीती रहेंगी और किसी प्राइवेट कॉलेज की नौकरी की तो नरभक्षी मैनेजर तेरा जीना दूभर कर देंगे—नीरा चतुर्वेदी श्यामला मुकर्जी मीता धर सब तो तेरी युनिवर्सिटी की लड़कियां थी—आज कोई एस० डी० एम० है और कोई डिप्टी सेक्रेटरी।'

"पर मैं न नीरा हूं न श्यामला, न मीता, मैं तो सुरंगमा हूं, मां।' पुत्री की निर्दोष, निश्छल हंसी में भी उसका दृढ़ निश्चय स्पष्ट हो जाता। वह समझ जाती कि वह उसकी पुत्री नहीं उसके जन्म का सिंहलग्न बोल रहा है। रोग की व्यथा से भी अधिक व्यथा थी उसे अपनी सांसारिक बुद्धिहीना पुत्री के भविष्य की। अस्वस्थ रुग्ण शरीर को एक प्रकार से घसीटती ही वह कालेज जाती, लौटती तो लगता गिर पड़ेगी। प्रायः ही वह बिना खाए ही सो जाती है यह सुरंगमा ने देख लिया था।

'मां, इधर तुम बराबर लंघन कर रही हो एक दिन उसने सकपकाई मां को पकड़ लिया 'आईने में अपना चेहरा देखती हो कभी ?"

क्यों क्या हो गया है री मेरे चेहरे को ?' लक्ष्मी ने हंसकर बात उड़ाने की चेष्टा की किन्तु उसकी आंखें छलछला आई।

मैंने तुम्हारे लिए मीरा से कहकर कल ऐप्वाएण्टमेण्ट ले लिया है तुम कल कॉलेज नहीं जाओगी, आठ बजे मेडिकल कॉलेज पहुंचना है।'

करता था, वहां से भी न जाने कितनी बार अग्रिम वेतन लेकर वह उनकी नजरों में अपने को यथेष्ट गिरा चुका था उधर राजलक्ष्मी का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला जा रहा था। महत्त्वाकांक्षिणी राजलक्ष्मी जान गई थी कि उसके स्वयं का जीवन अब बुझते दिए की लौ की ही भांति टिमटिमा रहा है, इसीसे उसका प्रत्येक क्षण अब पुत्री के भविष्य का जाल बुनने में ही व्यतीत होता था, "सुरगमा, मेरी बड़ी इच्छा है कि तू कम्पिटीशन में बैठे।'

पर मेरी इच्छा तो नहीं है मां ' वह हंसकर तत्क्षण मां का प्रस्ताव खोटे सिक्के-सा फेर देती। लक्ष्मी का हृदय धड़कने लगता कहीं उसीकी सी कोई मूर्खता तो नहीं कर बैठी अभागी।

'तब ? क्या करेगी ? दिन रात शराबी बाप का दरवाजे से उठाकर पलंग पर लिटाती रहेगी क्या ? या मेरी तरह मास्टरनी बन जीवन भर खूंखार सिरफिरी इंस्पेक्टरनियों की धौंस सहेगी ? सुन ले लड़की, सरकारी कॉलेज की मास्टरनी बनी तो वे विभागीय शेरनियां तेरा खून पीती रहेंगी और किसी प्राइवेट कॉलिज की नौकरी की तो नरभक्षी मैनेजर तेरा जीना दूभर कर देंगे— नीरा चतुर्वेदी श्यामला मुकर्जी मीता धर सब तो तेरी युनिवर्सिटी की लड़कियां थीं—आज कोई एस० डी० एम० है और कोई डिप्टी सेक्रेटरी।'

"पर मैं न नीरा हूं न श्यामला, न मीता, मैं तो सुरगमा हूं, मां।" पुत्री की निर्दोष, निश्छल हंसी में भी उसका दृढ निश्चय स्पष्ट हो जाता। वह समझ जाती कि वह उसकी पुत्री नहीं उसके जन्म का सिंहलग्न बोल रहा है। रोग की व्यथा से भी अधिक व्यथा थी उसे अपनी सांसारिक बुद्धिहीना पुत्री के भविष्य की। अस्वस्थ रुग्ण शरीर को एक प्रकार से घसीटती ही वह कालेज जाती, लौटती तो लगता गिर पड़ेगी। प्राय ही वह बिना खाए ही सो जाती है यह सुरगमा ने देख लिया था।

'मां, इधर तुम बराबर लंघन कर रही हो एक दिन उसने सकपकाई मां को पकड़ लिया 'आईने में अपना चेहरा देखती हो कभी ?"

क्यों क्या हो गया है री मेरे चेहरे को ? ' लक्ष्मी ने हंसकर बात उड़ाने की चेष्टा की किन्तु उसकी आखें छलछला आईं।

मैंने तुम्हारे लिए मीरा से कहकर कल ऐप्वाएण्टमेण्ट ले लिया है तुम कल कॉलेज नहीं जाओगी, आठ बजे मेडिकल कॉलेज पहुंचना है।'

शासन के अनेक महत्त्वपूर्ण छोटे-मोटे पदाधिकारी उनकी मुट्ठी में बन्द रहते। उत्कोच देने और लेने की उनकी अपनी मौलिक प्रणाली थी। दोनों होनहार बेटे विभिन्न विश्वविद्यालयों से अपने काले चेहरे पर कालिख पुतवा अब घर ही में गांजे चरस का दम खींच रहे थे। पिता की उपस्थिति में ही सिगरेट का सुट्टा खींचती अन्धाधुन्ध हवा के वेग से कार भगाती मीरा सिनहा, पूरे शहर में बदनाम थी। इसीसे जब उस जैसी लड़की से सुरंगमा की मैत्री हुई तब राजलक्ष्मी मन ही मन शंकित भी हुई थी, "सुरंगमा, तेरे, साथ जो लड़की उस दिन आई थी, मुझे कुछ अच्छी नहीं बेटी," उसने एक दिन कह दिया।

"देखने में जैसी लगती है वैसी नहीं है वह मां, मीरा को तुम नहीं जानतीं—एकदम ही भोली लड़की है।"

"भोली ?" मां के स्वर में विस्मय की झलक कुछ तीखी ही हो गई थी। एक दिन वह सुरंगमा को छोड़ने आई तो खिड़की के पर्दे की ओट से लक्ष्मी उसे देर तक देखती रही थी। बैंजनी शीटसिल्क की शोख साड़ी, पट्टी से ब्लाउज का निर्लज्ज खुला गला जो कल्पना के लिए कुछ भी बाकी नहीं रख गया था, गाढ़ी लिपस्टिक और नाक पर हिल रही सोने की नन्ही-सी बाली। शायद उसी बाली का अस्तित्व उस चेहरे के स्तर को एकदम ही सस्ता बन गया था। बहुत पहले वह एक बार गौहरमासी के साथ उनकी मौसेरी बहन के लड़के के अन्नप्राशन पर सोनागाछी गई थी। गौहरमासी ने उसे खूब सिखा-पढ़ाकर कहा था—"तुई जे आमार सगे सोनागाछी गिए छिली, मा-बाबा के किछू बलीश ना, बुझली!"
(तू मेरे साथ सोनागाछी गई है यह मां-बाप को मत बतलाना, समझी!) ऐसी ही सांवले चेहरों पर नन्ही नथुनिया हिलाती न जाने कितनी किशोरियां उसे घेरकर बैठ गई थीं। एकदम वैसा ही चेहरा लगता था उसे सुरंगमा की इस तेज-तर्रार सहेली का! एक हाथ में गिलट का कड़ा था, और दूसरा हाथ स्टियरिंग व्हील पर। अंगुली पर टप-टप दमकती हीरे की अंगूठी के साथ-साथ सिगरेट के ज्वलन्त स्फुलिंग को देखकर लक्ष्मी और सहम गई थी। उसके सम्मुख खड़ी उसकी शालीन पुत्री उसका जीवन्त विरोधाभास लग रही थी। तांत की चौड़े लाल पाड़ की साड़ी, लापरवाही से बंधा शिथिल जूड़ा पतली ग्रीवा पर ढुलक गया था। अस्तगामी सूर्य की मन्द रश्मियां उसके मन्द स्मित को और भी आकर्षक बना गई थीं। सांस रोककर उसे देख रही लक्ष्मी, जैसे, अपनी ही पुत्री को नहीं

शासन के अनेक महत्त्वपूर्ण छोटे-मोटे पदाधिकारी उनकी मुट्ठी में बन्द रहते। उत्कोच देने और लेने की उनकी अपनी मौलिक प्रणाली थी। दोनों होनहार बेटे विभिन्न विश्वविद्यालयों से अपने काले चेहरे पर कालिख पुतवा अब घर ही में गांजे चरस का दम खींच रहे थे। पिता की उपस्थिति में ही सिगरेट का सुट्टा खींचती अन्धाधुन्ध हवा के वेग से कार भगाती मीरा सिनहा, पूरे शहर में बदनाम थी। इसीसे जब उस जैसी लड़की से सुरंगमा की मैत्री हुई तब राजलक्ष्मी मन ही मन शंकित भी हुई थी, "सुरंगमा, तेरे, साथ जो लड़की उस दिन आई थी, मुझे कुछ जची नहीं बेटी," उसने एक दिन कह दिया।

"देखने में जैसी लगती है वैसी नहीं है वह मा, मीरा को तुम नहीं जानतीं—एकदम ही भोली लड़की है।"

"भोली ?" मा के स्वर मे विस्मय की झलक कुछ तीखी ही हो गई थी। एक दिन वह सुरंगमा को छोड़ने आई तो खिड़की के पर्दे की ओट से लक्ष्मी उसे देर तक देखती रही थी। बैंजनी शॉटसिल्क की शोख साड़ी, पट्टी से ब्लाउज का निलज्ज खुला गला जो कल्पना के लिए कुछ भी बाकी नहीं रख गया था, गाढ़ी लिपस्टिक और नाक पर हिल रही सोने की नन्ही-सी बाली। शायद उसी बाली का अस्तित्व उस चेहरे के स्तर को एकदम ही सस्ता बना गया था। बहुत पहले वह एक बार गौहरमासी के साथ उनकी मौसेरी बहन के लड़के के अन्नप्राशन पर सोनागाछी गई थी। गौहरमासी ने उसे खूब सिखा-पढ़ाकर कहा था—"तुई जे आमार सगे सोनागाछी गिए छिली, मा-बाबा के किछू बलीश ना, बुझली!" (तू मेरे साथ सोनागाछी गई है यह मा-बाप को मत बतलाना, समझी!) ऐसी ही सांवले चेहरों पर नन्ही नथुनिया हिलाती न जाने कितनी किशोरियां उसे घेरकर बैठ गई थीं। एकदम वैसा ही चेहरा लगता था उसे सुरंगमा की इस तेज-तर्रार सहेली का! एक हाथ में गिलट का कड़ा था, और दूसरा हाथ स्टियरिंग ह्वील पर। अंगुली पर टप-टप दमकती हीरे की अंगूठी के साथ-साथ सिगरेट के ज्वलन्त स्फुलिंग को देखकर लक्ष्मी और सहम गई थी। उसके सम्मुख खड़ी उसकी शालीन पुत्री उसका जीवन्त विरोधाभास लग रही थी। तात की चौड़े लाल पाड़ की साड़ी, लापरवाही से बंधा शिथिल जूड़ा पतली ग्रीवा पर ढुलक गया था। अस्तगामी सूर्य की मन्द रश्मियां उसके मन्द स्मित को और भी आकर्षक बना गई थीं। सांस रोककर उसे देख रही लक्ष्मी, जैसे, अपनी ही पुत्री को नहीं

थी। सुरगमा की पदचाप सुनकर ही शायद वह जग गई।

"अरे तू इतनी सुबह सुबह" वह हसकर उठ बैठी और सुरगमा का हाथ खीचकर उसने पलग पर बिठा लिया।

'आज निश्चय ही मेरा दिन अच्छा कटेगा सुरगमा—चण्डीदास का पद सुना है तूने

प्रभाते उठिया जे मुख हेरीनू
दिन जावे आजी भालो।"

'सुबह? इसे तू सुबह कहती है नौ बजे तो घर ही से चली थी, उसपर रिक्शा नहीं मिला पैदल आई हू पौन घण्टा तो लगा ही होगा और तू कहती है सुबह! क्या रोज इतनी ही सुबह तक सोती है तू?"

'अरे क्या बताऊ रात को बड़ी देर हो गई थी सोने मे पापा ने अपने कुछ विदेशी मित्रो को बुलाया था, पहले सोचा तुझे बुला लू—पर बुलाने पर भी तू क्या कभी आती है? फिर भी मैं खुद जाकर तुझे पकड ही लाती, पर तेरे पापा ने बताया कि तेरी मा की तबियत बहुत खराब है।'

'मेरे पापा?" सुरगमा का चेहरा फक पड गया 'मेरे पापा कहा मिले तुझे?"

'क्यो? कल तूने ही तो उन्हें यहा भेजा था ना?"

"मैंने?" सुरंगमा आश्चर्य से उसे देखती, फिर स्वय बडबडाने लगी थी, "मेरी ही भूल थी मीरा, आई शुड हैव टोल्ड यू—पर एक बात बता, तुझसे कुछ रुपये मागकर तो नहीं ले गए?" सुरगमा का स्वर रुआसा हो गया।

"उन्होने कहा, तेरी मा के लिए, खून की कुछ बोतलें खरीदनी हैं। शनिवार के कारण बैंक बारह ही बजे बन्द हो गया था और इतवार को भी वह रुपये नहीं *निकाल पाएगे—इसीसे तूने तीन सौ रुपये मगवाए हैं।* भाग्य से मेरे बटुए मे ही तीन सौ रुपये पडे थे मैंने उठाकर दे दिए—पर क्या बात है सुरगमा, तू इतनी घबडाई क्यों लग रही है? क्या कुछ हो गया है तेरे पापा को?"

"हो जाता तो बहुत अच्छा था मीरा, शर्म आ रही है अपने पिता के लिए ऐसी बात कह रही हू। पर तुझे कैसे बताऊ, पिता होकर भी वह हमारा कितना बडा अनिष्ट कर गए हैं। अभी तो तेरा ही पता लगा और न जाने किस किस से रुपया ले गए हैं" सुरगमा की आखों से आसू बहते जा रहे थे। उसने उन्हें

थी। सुरगमा की पदचाप सुनकर ही शायद वह जग गई।

"अरे तू इतनी सुबह सुबह " वह हसकर उठ बैठी और सुरगमा का हाथ खीचकर उसने पलग पर बिठा लिया।

'आज निश्चय ही मेरा दिन अच्छा कटेगा सुरगमा—चण्डीदास का पद सुना है तूने

प्रभाते उठिया जे मुख हेरीनू
दिन जावे आजी भालो।"

'सुबह ? इसे तू सुबह कहती है नौ बजे तो घर ही से चली थी, उसपर रिक्शा नहीं मिला पैदल आई हू पौन घण्टा तो लगा ही होगा और तू कहती है सुबह ! क्या रोज इतनी ही सुबह तक सोती है तू ?"

'अरे क्या बताऊ रात को बडी देर हो गई थी सोने मे पापा ने अपने कुछ विदेशी मित्रो को बुलाया था, पहले सोचा तुझे बुला लू—पर बुलाने पर भी तू क्या कभी आती है ? फिर भी मैं खुद जाकर तुझे पकड ही लाती, पर तेरे पापा ने बताया कि तेरी मा की तबियत बहुत खराब है।'

'मेरे पापा ?" सुरगमा का चेहरा फक पड गया 'मेरे पापा कहा मिले तुझे ?"

'क्यो ? कल तूने ही तो उन्हें यहा भेजा था ना ?"

"मैंने ?" सुरंगमा आश्चर्य से उसे देखती, फिर स्वय बडबडाने लगी थी, "मेरी ही भूल थी मीरा, आई शुड हैव टोल्ड यू—पर एक बात बता, तुझसे कुछ रुपये मागकर तो नही ले गए ?" सुरगमा का स्वर रुआसा हो गया।

"उन्होने कहा, तेरी मा के लिए, खून की कुछ बोतलें खरीदनी हैं। शनिवार के कारण बैंक बारह ही बजे बन्द हो गया था और इतवार को भी वह रुपये नहीं निकाल पाएगे—इसीसे तूने तीन सौ रुपये मगवाए हैं। भाग्य से मेरे बटुए मे ही तीन सौ रुपये पड़े थे मैंने उठाकर दे दिए—पर क्या बात है सुरगमा, तू इतनी घबडाई क्यों लग रही है ? क्या कुछ हो गया है तेरे पापा को ?"

"हो जाता तो बहुत अच्छा था मीरा, शर्म आ रही है अपने पिता के लिए ऐसी बात कह रही हू। पर तुझे कैसे बताऊ, पिता होकर भी वह हमारा कितना बडा अनिष्ट कर गए हैं। अभी तो तेरा ही पता लगा और न जाने किस किस से रुपया ले गए हैं " सुरगमा की आखों से आसू बहते जा रहे थे। उसने उन्हें

स्पष्ट था कि वह मीरा को अपने गृह के विचित्र परिवेश से परिचित नहीं कराना चाहती थी। उस दिन मीरा उसके साथ गई तो बाहर से एकदम ही उभरे उस दोमजिले मकान की बनावट के विपरीत, अन्तरग कक्षों की स्वच्छता देख अवाक रह गई थी। बाहर का कमरा शायद उसके पिता का था, एक कोने में तबलों की जोडी धरी थी, दूसरी ओर तानपुरा टिका था।

कौन ?" राजलक्ष्मी का क्षीण स्वर आया। "मैं हू मा," सुरगमा का मृदु स्वर और भी नम्र हो उठा, "मीरा तुमसे मिलने आई है " कह वह उसे हाथ पकडकर मा के पास खीच ले गई। पास पास धरे दो पलगों की परिधि ने पूरे कमरे को घेर लिया था फिर भी किनारे धरे बक्सों को यत्न से ढाप-ढूप बैठने का तख्त बना दिया गया था, मीरा उसीपर बैठ गई। कुछ ही देर पूर्व अवसन्न अगरबत्ती का सन्दली धुआ अभी भी कमरे मे मण्डरा रहा था। "मा यह मीरा है! कैसी तबियत है अब ? मैं सतरे का जूस निकालकर सिराहने धर गई थी, पिया था ना, मा ?"

राजलक्ष्मी, बिना कुछ कहे चुपचाप पडी रही। मा की चुप्पी से अप्रस्तुत खडी सुरगमा सहम गई। उसे लौटने में म देर हो गई थी इसीसे क्या मां अप्रसन्न हो गई थी या मीरा की उपस्थिति उसे विरक्त कर गई थी ?

"मा," उसने बडे लाड से पुकारकर लक्ष्मी के बालों को सहलाया।

"मरने दे मुझे, मरने दे!" लक्ष्मी का सारा आक्रोश अकारण ही रुलाई मे फूट पडा, "तुम सब मुझसे ऊब गए हो, मैं जानती हू। मैंतुम सबका बोझ बन गई हू। जहर देकर मार डालो मुझे " बार-बार सिसकियों से हिलती मा की दुबल देह को थामती सुरगमा स्वय टूटती जा रही थी। फिर भी उसने हृदय के आवेग से कण्ठस्वर को जरा भी विचलित नही होने दिया।

'क्या बचपना कर रही हो मा, कौन ऊब गया है तुमसे! मैं तो काम से ही बाहर गई थी, मा!"

आवेग से फूट गई रुलाई लक्ष्मी के रोगकातर दुबल चित्त को स्वय ही हल्का कर गई। आचल से आखें पोंछ वह फिर चुपचाप लेटी रही। "कही दद है क्या ?" सुरगमा मा के यन्त्रणा-व्यथित चेहरे को फिर ऐसे दुलारने लगी, जैसे वह स्वय मा हो।

'नही," लक्ष्मी ने सिर हिला दिया।

स्पष्ट था कि वह मीरा को अपने गृह के विचित्र परिवेश से परिचित नहीं कराना चाहती थी। उस दिन मीरा उसके साथ गई तो बाहर से एकदम ही तकरे उस दोमजिले मकान की बनावट के विपरीत, अन्तरंग कक्षों की स्वच्छता देख अवाक रह गई थी। बाहर का कमरा शायद उसके पिता का था, एक कोने में तबलों की जोड़ी धरी थी, दूसरी ओर तानपुरा टिका था।

कौन ?" राजलक्ष्मी का क्षीण स्वर आया। "मैं हू मा," सुरगमा का मृदु स्वर और भी नम्र हो उठा, "मीरा तुमसे मिलने आई है " कह वह उसे हाथ पकडकर मा के पास खीच ले गई। पास पास धरे दो पलगों की परिधि ने पूरे कमरे को घेर लिया था फिर भी किनारे धरे बक्सों को यत्न से टाप-टूप बैठने का तख्त बना दिया गया था, मीरा उसीपर बैठ गई। कुछ ही देर पूव अवसन्न अगरबत्ती का सन्दली धुआ अभी भी कमरे मे मण्डरा रहा था। "मा यह मीरा है! कैसी तबियत है अब ? मैं सतरे का जूस निकालकर सिराहने धर गई थी, पिया था ना, मा ?"

राजलक्ष्मी, बिना कुछ कहे चुपचाप पडी रही। मा की चुप्पी से अप्रस्तुत खडी सुरगमा सहम गई। उसे लौटने में म देर हो गई थी इसीसे क्या मां अप्रसन्न हो गई थी या मीरा की उपस्थिति उसे विरक्त कर गई थी ?

"मा," उसने बडे लाड से पुकारकर लक्ष्मी के बालों को सहलाया।

"मरने दे मुझे, मरने दे!" लक्ष्मी का सारा आक्रोश अकारण ही रुलाई मे फूट पडा, "तुम सब मुझसे ऊब गए हो, मैं जानती हू। मैंतुम सबका बोझ बन गई हू। जहर देकर मार डालो मुझे " बार-बार सिसकियों से हिलती मा की दुबल देह को थामती सुरगमा स्वय टूटती जा रही थी। फिर भी उसने हृदय के आवेग से कण्ठस्वर को जरा भी विचलित नहीं होने दिया।

'क्या बचपना कर रही हो मा, कौन ऊब गया है तुमसे! मैं तो काम से ही बाहर गई थी, मा!"

आवेग से फूट गई रुलाई लक्ष्मी के रोगकातर दुबल चित्त को स्वय ही हल्का कर गई। आचल से आखें पोंछ वह फिर चुपचाप लेटी रही। "कही दद है क्या ?" सुरगमा मा के यन्त्रणा-व्यथित चेहरे को फिर ऐसे दुलारने लगी, जैसे वह स्वय मा हो।

'नही," लक्ष्मी ने सिर हिला दिया।

मैं मीरा के मामा की कार आई थी।

मीरा की ननिहाल में अब उसके विधुर मामा और नानी ही रहते थे। मामा के इकलौते पुत्र ने जमनी में ही विवाह कर वहीं गृहस्थी जमा ली थी। आने से पहले मीरा ने उसे मामा का पूरा हुलिया ही नहीं बताया, उनका चित्र भी सुरगमा के पास मे रख दिया— 'वैसे तो तू उन्हें बिना इसके भी पहचान लेगी पूरे कलकत्ते मे मेरे मामा-सा बदसूरत व्यक्ति तुझे ढूंढने से भी नहीं मिल सकता लाखो की भीड मे भी मामा खडे रहें तब भी कोई उनकी गधमादन-सी भीमाकार देह को पहचान सकता है।'

ठीक ही कहा था उसने। चुनी शान्तिपुरी धोती और अद्धी की चुन्नटदार बाहों वाले कुर्ते मे सोने के बटन चमकात मीरा के मामा को मा-बेटी ने एक साथ पहचान लिया था।

सुरगमा ही मा को सामान के साथ छोडकर कुछ हिचकती आगे बढी थी, "क्षमा कीजिएगा, आप ही क्या गौरप्रसन्न सिनहा हैं?"

'अरे हा-हा यह भी भला कोई पूछने की बात है? मेरी भानजी ने क्या बताया नही तुम्हें? विधाता का सारा रौ मेटीरियल बस एक यही अभागी काया गढकर शेष हो गया" नकली दातो की स्निग्ध हसी पहली ही झलक में सुरगमा का सारा सकोच बहा गई थी। लक्ष्मी को इनवैलिड चेयर में बैठा, वह उनके साथ-साथ चलते अनगल बोलते चले जा रहे थे, "अरे देखिएगा, कलकत्ते मे पैर रखते ही आपके रोग के बधन स्वय कट जाएंगे। जिस धरती में उगा पेड है उसकी जडें उसी धरती में पनपेंगी। अब ज़ोर-ज़बरदस्ती कर आम का पेड आप भले ही विलायत मे लगा दें कभी फल सकता है? राम भजो! अब मैंने ही अपने बगीचे मे सैकडों रुपये फूककर विदेशी बल्व लगाए, न जाने कहा-कहां से डैफोडिल मगाए पर सब खाक हो गए। आप लोग तो बगाली हैं क्यों जगतजननी? ऐसा ही तो लिखा था मीरा ने"

'जी हा" सुरगमा ने अवसर देख, उसी क्षण, अपना दोरगी परिचय भी साथ-साथ दे दिया था—"मेरे पिता पहाडी हैं मा बगाली!"

"ओह, इसीसे ऐसा खिला रग है तुम्हारा। मैंने तो तुम्हें दूर से देखकर ऐंग्लो इण्डियन समझा था—वैसे मीरा लिख चुकी थी—'देखो मामा, मेरी सखी

में मीरा के मामा की कार आई थी।

मीरा की ननिहाल में अब उसके विधुर मामा और नानी ही रहते थे। मामा के इकलौते पुत्र ने जर्मनी में ही विवाह कर, वहीं गृहस्थी जमा ली थी। आने से पहले मीरा ने उसे मामा का पूरा हुलिया ही नहीं बताया, उनका चित्र भी सुरंगमा के पर्स में रख दिया— 'वैसे तो तू उन्हें बिना इसके भी पहचान लेगी पूरे कलकत्ते में मेरे मामा-सा बदसूरत व्यक्ति तुझे ढूंढने से भी नहीं मिल सकता लाखों की भीड़ में भी मामा खड़े रहें तब भी कोई उनकी गंधमादन-सी भीमाकार देह को पहचान सकता है।'

ठीक ही कहा था उसने। चुनी शान्तिपुरी धोती और अद्धी की चुन्नटदार बाहों वाले कुर्ते में सोने के बटन चमकाते मीरा के मामा को मा-बेटी ने एक साथ पहचान लिया था।

सुरंगमा ही मा को सामान के साथ छोड़कर कुछ हिचकती आगे बढ़ी थी, "क्षमा कीजिएगा, आप ही क्या गौरप्रसन्न सिनहा हैं?"

'अरे हां-हां यह भी भला कोई पूछने की बात है? मेरी भानजी ने क्या बताया नहीं तुम्हें? विधाता का सारा रौ मेटीरियल बस एक यही अभागी काया गढ़कर शेष हो गया" नकली दांतों की स्निग्ध हंसी पहली ही झलक में सुरंगमा का सारा संकोच बहा गई थी। लक्ष्मी को इनवैलिड चेयर में बैठा, वह उनके साथ-साथ चलते अनर्गल बोलते चले जा रहे थे, "अरे देखिएगा, कलकत्ते में पैर रखते ही आपके रोग के बन्धन स्वयं कट जाएंगे। जिस धरती में उगा पेड़ है उसकी जड़ें उसी धरती में पनपेंगी। अब जोर-जबरदस्ती कर आम का पेड़ आप भले ही विलायत में लगा दें कभी फल सकता है? राम भजो! अब मैंने ही अपने बगीचे में सैकड़ों रुपये फूंककर विदेशी बल्ब लगाए, न जाने कहां-कहां से डैफोडिल मंगाए पर सब खाक हो गए। आप लोग तो बंगाली हैं क्यों जगतजननी? ऐसा ही तो लिखा था मीरा ने"

'जी हां" सुरंगमा ने अवसर देख, उसी क्षण, अपना दोरंगी परिचय भी साथ-साथ दे दिया था—"मेरे पिता पहाड़ी हैं मां बंगाली!"

"ओह, इसीसे ऐसा खिला रंग है तुम्हारा। मैंने तो तुम्हें दूर से देखकर ऐंग्लो इण्डियन समझा था—वैसे मीरा लिख चुकी थी—देखो मामा, मेरी सखी

फेरी वाले को ऊपर बुला वह कुछ न कुछ खरीदने के लिए मचलती और उतनी ही बार गौहरमासी उसे लाड से झिडकती—"गा इए मेये, कत आर बाजे जिनिश किनबी बौलतो !' (गवार लडकी, क्या-क्या फालतू चीजें खरीदती रहेगी, बोल तो !)

मा, तुम बहुत थक गई हो, अब लेट जाओ," सुरगमा ने उसे हाथ पकडकर जबरदस्ती पलग पर लिटा दिया तो वह हसी। मां की उज्ज्वल हसी की मरीचिका मे सुरगमा फिर भटक गई। कैसी मूख थी वह, दिन रात उसकी व्यथ कल्पना, मा को लेकर न जाने कैसी-कैसी अशुभ बातें आकने लगी थी। मा को अब कुछ नही होगा, कुछ नही। कलकत्ते का वह प्रसिद्ध मृत्युजय होमियोपैथ निश्चय ही मा को व्याधिमुक्त कर देगा।

"सुरगमा, एक बार जी मे आ रहा है, चुपचाप जाकर बाबा को देख आऊ, तुझे देखकर बाबा मेरे सब अपराध क्षमा कर दें।"

"चलोगी मा, कितनी दूर है यहा से ?"

महा उत्साह से सुरगमा की आखें चमकने लगी थी, "मैंने तो तुमसे कितनी बार कहा था मा, क्यों नहीं चलती एक बार !"

"नही," राजलक्ष्मी का उल्लसित स्वर एकदम ही बुझ गया, 'जान-बूझकर ही अपने सपनो का ससार नष्ट नही करूगी, क्या पता पहुचकर देखूगी, पापा हैं ही नही, कोई आकर कहेगा —'अरे राजा प्रबोधरजन ? उन्हें मरे तो अर्सा बीत गया।' मेरे लिए तो मेरे पापा अन्त तक जीवित ही रहेंगे—वहा पहुचकर कही देखूगी कि कोठी मे किसी कॉलेज की तख्ती लटकी है या किसी दफ्तर के बाबू लोग खटाखट टाइप कर रहे हैं—नहीं, मैं नहीं जा सकती वहा !"

नौकर के साथ चाय की ट्रे मे नाना खाद्यान्न लेकर, हाफते प्रसन्नमुख गौरबाबू हसते-हसते आ गए वाह, मेरी यह उजडी नीची मजिल बहुत दिनों बाद आबाद हुई, जगतजननी। लो चाय पी लो।"

"आपने इतनी तकलीफ क्यों की, मामा बाबू।" सुरगमा ने कहा, "मा तो कुछ खाती नही—अकेली मैं क्या इतना सब खा पाऊगी ?"

"अजी क्यो नही खाएगी मा ? एक-एक चीज सवा-सवा-लाख की छाटकर लाया हू वही सब चीजें हैं, जिनके लिए प्रवासी बगाली प्राण परदेश की धरणी मे तरसते रहते हैं। आज इतने वर्षों में तुम्हारी मा स्वदेश लौटी हैं। भौआर

फेरी वाले को ऊपर बुला वह कुछ न कुछ खरीदने के लिए मचलती और उतनी ही बार गौहरमासी उसे लाड से झिड़कती—"गा इए मेये, कत आर बाजे जिनिश किनबी बोलतो !' (गवार लड़की, क्या-क्या फालतू चीजें खरीदती रहेगी, बोल तो !)

मा, तुम बहुत थक गई हो, अब लेट जाओ," सुरगमा ने उसे हाथ पकड़कर जबरदस्ती पलग पर लिटा दिया तो वह हसी। मां की उज्ज्वल हसी की मरीचिका मे सुरगमा फिर भटक गई। कैसी मूख थी वह, दिन रात उसकी व्यथ कल्पना, मा को लेकर न जाने कैसी-कैसी अशुभ बातें आकने लगी थी। मा को अब कुछ नही होगा, कुछ नही। कलकत्ते का वह प्रसिद्ध मृत्युजय होमियोपैथ निश्चय ही मा को व्याधिमुक्त कर देगा।

"सुरगमा, एक बार जी मे आ रहा है, चुपचाप जाकर बाबा को देख आऊ, तुझे देखकर बाबा मेरे सब अपराध क्षमा कर दें।"

"चलोगी मा, कितनी दूर है यहा से ?"

महा उत्साह से सुरगमा की आखें चमकने लगी थी, "मैंने तो तुमसे कितनी बार कहा था मा, क्यों नहीं चलती एक बार ।"

"नही," राजलक्ष्मी का उल्लसित स्वर एकदम ही बुझ गया, 'जान-बूझकर ही अपने सपनो का ससार नष्ट नही करूगी, क्या पता पहुचकर देखूगी, पापा हैं ही नही, कोई आकर कहेगा —'अरे राजा प्रबोधरजन ? उन्हें मरे तो अर्सा बीत गया।' मेरे लिए तो मेरे पापा अत तक जीवित ही रहेंगे—वहा पहुचकर कही देखूगी कि कोठी मे किसी कॉलेज की तख्ती लटकी है या किसी दफ्तर के बाबू लोग खटाखट टाइप कर रहे हैं—नहीं, मैं नहीं जा सकती वहा !"

नौकरके साथ चाय की ट्रे मे नाना खाद्यान्न लेकर, हाफते प्रसन्नमुख गौरबाबू हसते-हसते आ गए वाह, मेरी यह उजडी नीची मजिल बहुत दिनों बाद आबाद हुई, जगतजननी। लो चाय पी लो ।"

"आपने इतनी तकलीफ क्यों की, मामा बाबू।" सुरगमा ने कहा, "मा तो कुछ खाती नही—अकेली मैं क्या इतना सब खा पाऊगी ?"

"अजी क्यो नही खाएगी मा ? एक-एक चीज सवा-सवा-लाख की छाटकर लाया हू वही सब चीजें हैं, जिनके लिए प्रवासी बगाली प्राण परदेश की धरणी मे तरसते रहते हैं। आज इतने वर्षों में तुम्हारी मा स्वदेश लौटी हैं। मौआर

की गाडन-पार्टी होती। उस दिन भी बडे दिन की दावत थी। बाहर ही पार्टी का आयोजन किया गया था, कि सहसा बिना किसी घन घटा के ही आकाश आच्छादित हो गया बादल का कहीं एक टुकडा भी नही, पर अधेरा घिर आया और बूदें पडने लगीं। चटपट मेजें भीतर सरकाई गइ, और सबने कहा—आज खडे खडे ही खाना-पीना होगा। बैंड बाजे वाले भी बरामदे ने एक कोने मे सिमट गए, उन दिनो की लोकप्रिय धुन बैण्ड पर बज रही थी—'ओह सान्ता डालिग, कम डाउन माई चिमनी टुनाइट '

"तब ही अचानक बिजली चमकी और इससे पहले कि लोग सम्भलते, आग का एक ज्वलन्त गोला बम गोले के-से ही विस्फोट से कटहल के पेड को चीरता-झुलसाता जमीन मे धस गया। ठीक वही, जहा कुछ ही मिनट पहले खाने की मेज लगी थी, एक बडा-सा छेद हो गया था। कई मेमसाहव बेहोश हो गइ, स्मेलिग सॉल्ट की ढूढ मच गई। मेरे पिता ने उस समय तो किसीसे कुछ नही कहा, पर अतिथि विदा हुए तो मा से बोले गौर की मा, लगता है वह बिजली मेरे भीतर भी कुछ तोड गई है छाती में तब से न जाने कैसी चिनक उठ रही है।' और फिर जब मा का ही हाथ पकड इन सीढियों से ऊपर चढ रहे थे, तब ही उनकी नजर इस दपण पर पडी, बिजली का वही धमाका इसे बीच से दरका गया था। मा कहती है कि उसे देखते ही तेरे बाबा का चेहरा एकदम फक पड गया, कहने लगे—गौर की मा अब मैं नहीं बचूगा, निश्चय ही यह दिल के घातक दौरे की भूमिका है। देख रही हो, दपण टूट गया है—दपण का टूटना मत्यु का निश्चित सकेत होता है।' मा ने उन्हे खूब डाटा और बिस्तर पर सुला छाती पर मालिश करने लगी थी। डाक्टर के आने से पहले ही, जब दावत के जूठे बतन भी मेज से नही हटाए गए थे गृह के मेजबान ने पुतलियां पलट दी। उनकी मृत्यु को आज इतने वष बीत गए, पर दपण आज भी उस मनहूस दावत का स्मृतिचिह्न बना यहा लटका है। उनका नाम इसके साथ जुडा न लटका होता तो मैं इसे कभी का उखाडकर फेंक देता। मेरा बेटा वरुण जब कभी घर आता है मैं इसे हटा देता हू। वह इस टूटे दपण से बेहद चिढता है पर अब वह आता ही कहा है। कई वर्षों से उसने हमसे रिश्ता तोड लिया है। अब रह गए हैं मैं और मा। मा की भी वयस हो गई है, इस अगहन मे नब्बे की हो जाएगी। कभी-कभी एकदम ही बहक जाती है, कुछ याद नही रहता पर जब मूड म रहता है तो कोई कह नही सकता कि नब्बे

की गार्डन-पार्टी होती। उस दिन भी बड़े दिन की दावत थी। बाहर ही पार्टी का आयोजन किया गया था, कि सहसा बिना किसी घन घटा के ही आकाश आच्छादित हो गया बादल का कहीं एक टुकड़ा भी नहीं, पर अंधेरा घिर आया और बूंदें पड़ने लगीं। चटपट मेजें भीतर सरकाई गई, और सबने कहा—आज खड़े खड़े ही खाना-पीना होगा। बैंड बाजे वाले भी बरामदे ने एक कोने मे सिमट गए, उन दिनो की लोकप्रिय धुन बैण्ड पर बज रही थी—'ओह सान्ता डार्लिंग, कम डाउन माई चिमनी टुनाइट '

"तब ही अचानक बिजली चमकी और इससे पहले कि लोग सम्भलते, आग का एक ज्वलन्त गोला बम गोले के-से ही विस्फोट से कटहल के पेड को चीरता-झुलसाता जमीन मे धस गया। ठीक वही, जहा कुछ ही मिनट पहले खाने की मेज लगी थी, एक बडा-सा छेद हो गया था। कई मेमसाहब बेहोश हो गई, स्मेलिंग सॉल्ट की ढूढ मच गई। मेरे पिता ने उस समय तो किसीसे कुछ नही कहा, पर अतिथि विदा हुए तो मा से बोले गौर की मा, लगता है वह बिजली मेरे भीतर भी कुछ तोड गई है छाती में तब से न जाने कैसी चिलक उठ रही है।' और फिर जब मा का ही हाथ पकड इन सीढियों से ऊपर चढ रहे थे, तब ही उनकी नजर इस दपण पर पडी, बिजली का वही धमाका इसे बीच से दरका गया था। मा कहती है कि उसे देखते ही तेरे बाबा का चेहरा एकदम फक पड गया, कहने लगे—गौर की मा अब मैं नहीं बचूगा, निश्चय ही यह दिल के घातक दौरे की भूमिका है। देख रही हो, दपण टूट गया है—दपण का टूटना मत्यु का निश्चित सकेत होता है।' मा ने उन्हे खूब डाटा और बिस्तर पर सुला छाती पर मालिश करने लगी थी। डाक्टर के आने से पहले ही, जब दावत के जूठे बतन भी मेज से नही हटाए गए थे गृह के मेजबान ने पुतलियां पलट दी। उनकी मृत्यु को आज इतने वष बीत गए, पर दपण आज भी उस मनहूस दावत का स्मृतिचिह्न बना यहा लटका है। उनका नाम इसके साथ जुडा न लटका होता तो मैं इसे कभी का उखाडकर फेंक देता। मेरा बेटा वरुण जब कभी घर आता है मैं इसे हटा देता हू। वह इस टूटे दपण से बेहद चिढता है पर अब वह आता ही कहा है। कई वर्षों से उसने हमसे रिश्ता तोड लिया है। अब रह गए हैं मैं और मा। मा की भी वयस हो गई है, इस अगहन मे नब्बे की हो जाएगी। कभी-कभी एकदम ही बहक जाती है, कुछ याद नही रहता पर जब मूड म रहता है तो कोई कह नही सकता कि नब्बे

"अरे हा-हा " बुढिया खिखियाकर हसने लगी, "पता नहीं दिमाग की कौन-सी लखौरी ईंट कब खिसक जाती है रे, सब भूल जाती हू। याद क्यों नहीं है, खूब याद है—बऊ मा की लाल बनारसी निकालकर मैं उसे पहनाने लगी तो ओ मा, देखी मेम साहब—हॅंसे गडागडी। (देखती हू—मेमसाहब हसकर लोट-पोट हो गईं।)

"साडी का अर्ज था छोटा और मेमसाहब थी डबल अर्ज की, घुटनों से ऊपर जाती ही नहीं थी साडी। फिर क्या करती, ढाका के मुसलमानों की-सी लुंगी लपेट दी मैंने।"

"देखा नहीं मा, उस दिन अपने बबलू की बगाली बहू भी तो वैसी ही लुगी पहनकर आई थी। आजकल वैसा ही फैशन है।" गौरप्रसन्न बाबू मा को छेडने लगे।

"अरे भाड में जाए ऐसा फैशन। हमें क्या करना है अब, कोई कुछ करे, यहा तो कभी-कभी नाम ही भूल जाती हू। कभी-कभी तो दिन-भर उलझन में फसी रहती हू। अब उस दिन, उमा की बडी लडकी का नाम ही भूल गई। बार-बार सोचती, नाम जबान पर भी आता, पर फिर छिटक जाता। जब शाम को गौर आया उससे पूछा तब कहीं चैन पडा।"

"उमा मेरी छोटी बहन है, रानीगज मे उसके पति, कोयला खान के मैनेजर हैं—उसीकी लडकी की बात कर रही हैं मा" गौर बाबू बार-बार विस्मृति के ताने-बाने मे उलझी मा को निकाल रहे थे।

"अपनी मा को, क्यो नहीं लाई, मा?" बुढिया ने अपने दुबले हाथ बढाकर सुरगमा की अगुलिया सहलाईं।

"इसकी मा बीमार हैं, सीढिया नही चढ सक्तीं, मैंने बताया तो था तुम्हें। तुम्हें ही गोदी में नीचे ले चलेंगे!"

सुरगमा उठने लगी, तो गौरप्रसन्न की मा बच्ची-सी मचलने लगी, "नहीं, मैं भी चलूगी तुम्हारे साथ मैं क्या अकेली बैठी रहूगी यहा? गौर, पकड तो मेरा हाथ, एक बार उठाकर खडी-भर कर दे मुझे, फिर देख, कैसी खटाखट सीढ़िया उतरती हू!"

"और क्या! एक बार खटाखट सीढिया उतरकर पूरे चार महीने प्लास्तर मे पडी रही थी। कहीं फिर अपनी स्केटिंग का करिश्मा दिखा गईं तो गौरप्रसन्न की छुट्टी। आओ" कह उन्होने मा को ऐसे गोद मे उठा लिया जैसे वह कोई,

"अरे हा-हा " बुढ़िया खिसियाकर हसने लगी, "पता नहीं दिमाग की कौन-सी लखौरी ईंट कब खिसक जाती है रे, सब भूल जाती हू। याद क्यों नहीं है, खूब याद है—बऊ मा की लाल बनारसी निकालकर मैं उसे पहनाने लगी तो ओ मा, देखी मेम साहब—हँसे गडागडी। (देखती हू—मेमसाहब हसकर लोट-पोट हो गई।)

" साडी का अर्ज था छोटा और मेमसाहब थी डबल अर्ज की, घुटनों से ऊपर जाती ही नहीं थी साडी। फिर क्या करती, ढाका के मुसलमानों की-सी लुगी लपेट दी मैंने।"

"देखा नहीं मा, उस दिन अपने बबलू की बगाली बहू भी तो वैसी ही लुगी पहनकर आई थी। आजकल वैसा ही फैशन है।" गौरप्रसन्न बाबू मा को छेडने लगे।

" अरे भाड में जाए ऐसा फैशन। हमें क्या करना है अब, कोई कुछ करे, यहा तो कभी-कभी नाम ही भूल जाती हू। कभी-कभी तो दिन-भर उलझन में फसी रहती हू। अब उस दिन, उमा की बडी लडकी का नाम ही भूल गई। बार-बार सोचती, नाम जबान पर भी आता, पर फिर छिटक जाता। जब शाम को गौर आया उससे पूछा तब कहीं चैन पडा।"

"उमा मेरी छोटी बहन है, रानीगज मे उसके पति, कोयला खान के मैनेजर हैं—उसीकी लडकी की बात कर रही हैं मा " गौर बाबू बार-बार विस्मृति के ताने-बाने मे उलझी मा को निकाल रहे थे।

"अपनी मा को, क्यो नहीं लाई, मा ?" बुढ़िया ने अपने दुबले हाथ बढाकर सुरगमा की अगुलिया सहलाईं।

"इसकी मा बीमार हैं, सीढ़िया नही चढ़ सकतीं, मैंने बताया तो था तुम्हें। तुम्हें ही गोदी में नीचे ले चलेंगे।"

सुरगमा उठने लगी, तो गौरप्रसन्न की मा बच्ची-सी मचलने लगी, "नहीं, मैं भी चलूगी तुम्हारे साथ मैं क्या अकेली बैठी रहूगी यहा ? गौर, पकड तो मेरा हाथ, एक बार उठाकर खडी-भर कर दे मुझे, फिर देख, कैसी खटाखट सीढ़िया उतरती हू।"

"और क्या! एक बार खटाखट सीढिया उतरकर पूरे चार महीने प्लास्तर मे पडी रही थी। कहीं फिर अपनी स्केटिंग का करिश्मा दिखा गई तो गौरप्रसन्न की छुट्टी। आओ " कह उन्होंने मा को ऐसे गोद मे उठा लिया जैसे वह कोई,

लक्ष्मी के डूबते प्राणों को शायद उसी अश्रुसिक्त पुकार की खनक ऊपर खींच लाई, उसने आँखें खोलीं सुरगमा को देखा और फिर पलकें मूँद लीं।

"मा, कैसा है दर्द ? कुछ कम है, मा ?"

उत्तर में उसके सूखे अधर काँपे, आँखों की कोर से ढलककर आँसू की दो बूँदें सब कुछ कह गईं।

दिन भर फिर मृत्यु उसे बिल्ली के क्रूर पंजे में दबी चुहिया की ही भाँति खिलाती रही थी। कभी क्रूर खिलवाड़ में दबोचती और कभी जीवन का क्षणिक प्रलोभन देकर मुक्त कर देती। सन्ध्या होते ही, उसकी अवस्था निरन्तर गिरती चली गई थी। एक बार उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर चारों ओर देखा था, जैसे किसीको ढूँढ़ रही हो।

मा मैं यहाँ हूँ तुम्हारे पास," सुरगमा बार-बार उसके कानों के पास आ-

" रही थी, पर लक्ष्मी न जाने क्या बड़बड़ाती जा रही थी।

सुरगमा ने, जब अपने कान उसके ओठों से सटा लिए, 'क्या कह रही हो, मा ?"

मैं हूँ तुम्हारा पति " लक्ष्मी के अधर फिर उसी करुण स्मित में खिंचे रह गए थे। जिस अमानवीय साहस से फिर उस लड़की ने मा को मृत्यु के कठोर आघात को झेला था उसे देखकर गौरप्रसन्न दंग रह गए थे। उनके मना करने पर भी वह मा की शव-यात्रा के साथ-साथ घाट गई अपने हाथों से उसने मा को सजाया, पैरों में आल्ता माथे में सिन्दूर, बड़ी-सी बिन्दी, सब कुछ लगाकर उसने कागज पर मा के आल्ता लगे पैरों की छाप भी उतार ली, "पूजाघर में टाँग देना मा!" बुढ़िया नौकरानी उसे सिखा गई थी, "तुम्हारी मा सुहागन होकर चिता चढ़ी हैं।"

केवल एक बार गौर बाबू ने आकर उससे धीरे से पूछा था, "सुरगमा, अपने पिता को खबर दोगी क्या ? कहो तो वहाँ ट्रंककाल कर दूँ।"

"नहीं," सुरगमा ने आँखें फेर ली थीं, "उनका मुझे कोई पता नहीं है, मामा बाबू। होता, तब भी उन्हें खबर देना व्यर्थ था।"

रात भर नानी ने उसे अपने साथ सुलाया था—"अब तू यहीं रहेगी, माँ, तुझे कभी नहीं जाने दूँगी मैं "

पर तीसरे ही दिन उस स्नेही परिवार से विदा लेकर वह एक बार फिर

लक्ष्मी के डूबते प्राणों को शायद उसी अश्रुसिक्त पुकार की खनक ऊपर खींच लाई, उसने आँखें खोलीं सुरगमा को देखा और फिर पलकें मूँद लीं।

"मा, कैसा है दद ? कुछ कम है, मा ?"

उत्तर म उसके सूखे अधर काँपे, आँखों की कोर से ढलककर आँसू की दो बूँदें सब कुछ कह गईं।

दिन भर फिर मृत्यु उसे बिल्ली के क्रूर पंजे मे दबी चुहिया की ही भाँति खिलाती रही थी। कभी क्रूर खिलवाड म दबोचती और कभी जीवन का क्षणिक प्रलोभन देकर मुक्त कर देती। सन्ध्या होते ही, उसकी अवस्था निरन्तर गिरती चली गई थी। एक बार उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर चारों ओर देखा था, जैसे किसीको ढूँढ रही हो।

मा मैं यहाँ हू तुम्हारे पास," सुरगमा बार-बार उसके कानों के पास आ-
" रही थी, पर लक्ष्मी न जाने क्या बडबडाती जा रही थी।

सुरगमा ने, अब अपने कान उसके ओठों से सटा लिए, 'क्या कह रही हो, मा ?"

मैं हू तुम्हारा पति " लक्ष्मी के अधर फिर उसी करुण स्मित मे खिंचे रह गए थे। जिस अमानवीय साहस से फिर उस लडकी ने मा की मृत्यु के कठोर आघात को झेला था उसे देखकर गौरप्रसन्न दग रह गए थे। उनके मना करने पर भी वह मा की शव-यात्रा के साथ-साथ घाट गई अपने हाथों से उसने मा को सजाया, पैरों म आलता माथे म सिन्दूर, बड़ी-सी बिन्दी, सब कुछ लगाकर उसने कागज पर मा के आलता लगे पैरों की छाप भी उतार ली, "पूजाघर मे टाग देना मा!" बुढिया नौकरानी उसे सिखा गई थी, "तुम्हारी मा सुहागन होकर चिता चढी हैं।"

केवल एक बार गौर बाबू ने आकर उससे धीरे से पूछा था, "सुरगमा, अपने पिता को खबर दोगी क्या ? कहो तो वहा ट्रककाल कर दू।"

"नहीं," सुरगमा ने आँखें फेर ली थीं, "उनका मुझे कोई पता नहीं है, मामा बाबू। होता, तब भी उन्हें खबर देना व्यर्थ था।"

रात भर नानी ने उसे अपने साथ सुलाया था—"अब तू यहीं रहेगी, माँ, तुझे कभी नहीं जाने दूँगी मैं "

पर तीसरे ही दिन उस स्नेही परिवार से विदा लेकर वह एक बार फिर

"मुझे क्षमा करें मैं अभी कोई उत्तर नहीं दे पाऊंगी। मुझे दो दिन का समय दें—जैसा भी होगा मैं परसों स्वयं आकर बता जाऊंगी।" फिर चाय का खाली प्याला धरने वह उठ गई थी। उसके उठने की भंगिमा मे ही पी०ए० को भी उसने उठकर जाने का स्पष्ट संकेत दे दिया था। वह बेचारा स्वयं ही कुर्सी खींचकर बैठ गया था, मन्त्रीजी की पुत्री की उस सुन्दरी भावी ट्यूटर को छोडकर इतनी जल्दी जाने की उसकी इच्छा नहीं थी। वह हंसकर शायद कोई और उदार चुग्गा फेंकने के मूड में था, कि सुरंगमा ने बडी रुखाई से उसके सारे उत्साह को झाड़ू लगाकर बुहार दिया, "मुझे अभी बाहर जाना है—आप जाएं—परसों मैं निश्चित रूप से अपना उत्तर दे जाऊंगी।"

तीसरे दिन, अपनी अस्वीकृति देने ही सुरंगमा मन्त्रीजी के बंगले में गई थी। उस दिन भी लान में वैसी ही भीड थी। बाहर से आए कुछ विदेशी डेलिगेटस कुर्सियों का घेरा लगाए बैठे थे, एक ओर दर्शनार्थियों की भीड के बीच प्रसन्नमुद्रा में घूम घूमकर बातें कर रहे मन्त्रीजी की पीठ उसे दीख गई, तब ही न जाने किस रसिकता ने उन्हें गुदगुदाया, और वह ठहाका लगाकर मुडे ही थे कि उनकी दृष्टि सहमी खडी सुरंगमा पर पडी, "आइए आइए मिस जोशी कहिए क्या से बातें हो गई ? कौन-सा टाइम सूट करेगा आपको ? आज तो विनीताजी भी आई हुई हैं। बडे मौके से आई हैं आप, चलिए, उनसे मिला दूं।"

'जी मैं "

सुरंगमा को उन्होंने बीच में ही टोक दिया, शायद उस चतुर कौटिल्य ने मन ही मन भाप लिया था कि उसे ट्यूशन ग्रहण करने में कोई आपत्ति है, "और कहिए कहां रहती हैं आप ? यहीं क्यों नहीं चली आतीं ? आपको भी सुविधा होगी और बेबी की ओर से भी हम दोनों निश्चिन्त हो जाएंगे। विनीताजी को प्रायः ही दौरे में बाहर रहना पडता है और मुझे तो देख ही रही हैं आप, दिन-रात बंजारे-सा भटकता रहता हूं।" वह फिर हंसा।

कैसी उज्ज्वल हंसी थी उस सांवले आकर्षक मन्त्री की। आज तक सुरंगमा को खद्दर की टोपी को देखते ही आग लग जाती थी। उसकी दृष्टि में यह टोपी जिसके सिर पर भी सधती, वह उसकी श्रद्धा का पात्र हो ही नहीं सकता था किन्तु इसी बंकिम टोपी से निकला या पूर्वाभ्यास की यत्नपूर्ण चेष्टा से निकाला गया वह केशों का मोहक गुच्छा, उस बुद्धिदीप्त चेहरे का आकर्षण द्विगुणित कर देता था।

"मुझे क्षमा करें मैं अभी कोई उत्तर नहीं दे पाऊंगी। मुझे दो दिन का समय दें—जैसा भी होगा मैं परसों स्वयं आकर बता जाऊंगी।" फिर चाय का खाली प्याला धरने वह उठ गई थी। उसके उठने की भंगिमा ने ही पी०ए० को भी उसने उठकर जाने का स्पष्ट संकेत दे दिया था। वह बेचारा स्वयं ही कुर्सी खींचकर बैठ गया था, मन्त्रीजी की पुत्री की उस सुन्दरी भावी ट्यूटर को छोड़कर इतनी जल्दी जाने की उसकी इच्छा नहीं थी। वह हंसकर शायद कोई और उदार चुग्गा फेंकने के मूड में था, कि सुरगमा ने बड़ी रुखाई से उसके सारे उत्साह को झाड़ू लगाकर बुहार दिया, "मुझे अभी बाहर जाना है—आप जाएं—परसों मैं निश्चित रूप से अपना उत्तर दे जाऊंगी।"

तीसरे दिन, अपनी अस्वीकृति देने ही सुरगमा मन्त्रीजी के बंगले में गई थी। उस दिन भी लान में वैसी ही भीड़ थी। बाहर से आए कुछ विदेशी डेलिगेट्स कुर्सियों का घेरा लगाए बैठे थे, एक ओर दर्शनार्थियों की भीड़ के बीच प्रसन्नमुद्रा में घूम-घूमकर बातें कर रहे मन्त्रीजी की पीठ उसे दीख गई, तब ही न जाने किस रसिकता ने उन्हें गुदगुदाया, और वह ठहाका लगाकर मुड़े ही थे कि उनकी दृष्टि सहमी खड़ी सुरगमा पर पड़ी, "आइए आइए मिस जोशी कहिए बेबी से बातें हो गईं? कौन-सा टाइम सूट करेगा आपको? आज तो विनीताजी भी आई हुई हैं। बड़े मौके से आई हैं आप, चलिए, उनसे मिला दूं।"

'जी मैं "

सुरगमा का उन्होंने बीच में ही टोक दिया, शायद उस चतुर कौटिल्य ने मन ही मन भांप लिया था कि उसे ट्यूशन ग्रहण करने में कोई आपत्ति है, "और कहिए कहां रहती हैं आप? यहीं क्यों नहीं चली आतीं? आपको भी सुविधा होगी और बेबी की ओर से भी हम दोनों निश्चिन्त हो जाएंगे। विनीताजी को प्रायः ही दौरे में बाहर रहना पड़ता है और मुझे तो देख ही रही हैं आप, दिन-रात बंजारे-सा भटकता रहता हूं।" वह फिर हंसा।

कैसी उज्ज्वल हंसी थी उस सांवले आकर्षक मन्त्री की। आज तक सुरगमा को खद्दर की टोपी को देखते ही आग लग जाती थी। उसकी दृष्टि में यह टोपी जिसके सिर पर भी सधती, वह उसकी श्रद्धा का पात्र हो ही नहीं सकता था किन्तु इसी बंकिम टोपी से निकला या पूर्वाभ्यास की यत्नपूर्ण चेष्टा से निकाला गया वह केशों का मोहक गुच्छा, उस बुद्धिदीप्त चेहरे का आकर्षण द्विगुणित कर देता था।

उस दिन सुरंगमा ने वही साड़ी पहनी थी, हाथ में मां का सोने का वाला था, अराल अंगुली में गोमेद्र की अंगूठी थी, न जाने किस ज्योतिषी ने उसकी कुण्डली की गणना करा लक्ष्मी ने उसे जबर्दस्ती वह अंगूठी पहना दी थी और गले में था वैरोनिका की मां का श्वासजड़ित चेन। मन्त्रीजी की "ड्रइंग की पर लगे भारी हरे पर्दों से छनकर आ रही प्रथम सूर्य की मदिर रश्मियां उस आनत चेहरे को अपूर्व छटा से रंग गई थी।

एक पल को उसकी आंखें उठी और सम्मुख बैठी विनीताजी की प्रखर कठोर दृष्टि से टकराकर कांप गई "पिता, क्या करते हैं तुम्हारे ?" विनीताजी के प्रश्न का प्रत्येक अक्षर जैसे सनसी से ताड़-मरोड़ टेढ़ा-मेढ़ा कर ही उनके अधरों से निकल रहा था।

'मेरे पिता यहां, म्यूजिक-कॉलिज के स्टाफ में हैं। आजकल घर गए हैं।"

'तब क्या मां के साथ रहती हो ?"

नहीं, मेरी मां की पिछले महीने मृत्यु हो गई।"

इस बार उसका आवेगहीन स्वर, धैर्यच्युत था उत्तर देते ही वह उठ गई, 'मैं यही कहने आई थी श्रीमान " इस बार वह मन्त्रीजी की ओर अभिमुख होकर दृढ़ स्वर में कहने लगी यह ट्यूशन कर पाना सम्भव नहीं होगा, कभी-कभी बैंक में ओवरटाइम पर काम करना पड़ता है और प्रायः ही हमें इन्स्पेक्शन के लिए बाहर भी भेज दिया जाता है।"

'ओह " उसका उत्तर सुनते ही, जैसे विनीताजी की छाती से कोई भारी शिलाखण्ड हट गया, "उठ क्यों गईं ?" वह हंसकर कहने लगी, "चाय आ रही है, पीकर जाना।"

'धन्यवाद, पर मैं तो चाय पीकर ही आई हूं।"

सुरंगमा जाने को उद्यत हुई ही थी कि मन्त्रीजी अधीर स्वर में बोले, "नहीं-नहीं, आपको जैसे भी हो, समय निकालकर बेबी को पढ़ाना ही होगा, मिस जोशी ! देखिए, साफ ही कह दूं आपसे, इकलौती पुत्री होने के कारण और कुछ हम दोनों के ही अधिकतर बाहर रहने से लड़की एकदम ही हाथ से निकली जा रही है। मेल-ट्यूटर मैं रखना नहीं चाहता इसीसे आपसे बार-बार अनुरोध करूंगा कि आप ही अब उसका भार ग्रहण कर हमें उबारें।'

सुरंगमा की मनःस्थिति विचित्र हो गई, एक ओर वह महिमामय मन्त्री हाथ

उस दिन सुरगमा ने वही साडी पहनी थी, हाथ में मा का सोने का बाला था, अनामिका अगुली में गोमेद्य की अगूठी थी, न जाने किस ज्योतिषी ने उसकी कुण्डली की गणना करा लक्ष्मी ने उसे जबरदस्ती वह अगूठी पहना दी थी और गले में था वैरोनिका की मा का प्रासजडित चेन। मन्त्रीजी की खिडकी पर लगे भारी हरे पर्दो से छनकर आ रही प्रथम सूर्य की मदिर रश्मियां उस आनत चेहरे को अपूर्व छटा से रंग गई थी।

एक पल को उसकी आखें उठी और सम्मुख बैठी विनीताजी की प्रखर कठोर दृष्टि से टकराकर कांप गई "पिता, क्या करते हैं तुम्हारे?" विनीताजी के प्रश्न का प्रत्येक अक्षर जैसे सनसी से ताड-मरोड टेढा-मेढा कर ही उनके अधरो से निकल रहा था।

'मेरे पिता यहा, म्यूजिक-कॉलेज के स्टाफ में हैं। आजकल घर गए हैं।"

'तब क्या मा के साथ रहती हो?"

नहीं, मेरी मा की पिछले महीने मृत्यु हो गई।"

इस बार उसका आवेगहीन स्वर, धैर्यच्युत था उत्तर देते ही वह उठ गई, 'मैं यही कहने आई थी श्रीमान" इस बार वह मत्रीजी की ओर अभिमुख होकर दृढ स्वर में कहने लगी यह ट्यूशन कर पाना सम्भव नही होगा, कभी-कभी बैंक में ओवरटाइम पर काम करना पडता है और प्राय ही हमे इन्स्पेक्शन के लिए बाहर भी भेज दिया जाता है।"

'ओह" उसका उत्तर सुनते ही, जैसे विनीताजी की छाती से कोई भारी शिलाखण्ड हट गया, "उठ क्यों गई?" वह हंसकर कहने लगी, "चाय आ रही है, पीकर जाना।"

'धन्यवाद, पर मैं तो चाय पीकर ही आई हूं।"

सुरगमा जाने को उद्यत हुई ही थी कि मन्त्रीजी अधीर स्वर में बोले, "नहीं-नहीं, आपको जैसे भी हो, समय निकालकर बेबी को पढाना ही होगा, मिस जोशी! देखिए, साफ ही कह दू आपसे, इकलौती पुत्री होने के कारण और कुछ हम दोनो के ही अधिकतर बाहर रहने से लडकी एकदम ही हाथ से निकली जा रही है। मेल-ट्यूटर मैं रखना नही चाहता इसीसे आपसे बार-बार अनुरोध करूगा कि आप ही अब उसका भार ग्रहण कर हमे उबारें।'

सुरगमा की मन स्थिति विचित्र हो गई, एक ओर वह महिमामय मन्त्री हाथ

को ठीक करने में बिता दिया। बाहर के तारों से घिरे कमरे में मन्त्रीजी के मिलने वाला से घिरे रहते हैं। यही इस कोठी का एकमात्र एकान्त निर्जन कमरा है। पसन्द आया सुरगमा?" फिर, वह अपनी एकदम ही अनर्गल हँसी से कल्चर मोती चमकाती बोली, "भई, तुम्हारा नाम हमें बहुत पसन्द आया, सुरगमा! बढ़िया नाम है! और चेहरा भी तुम्हारा तुम्हारे नाम-सा ही सुन्दर है।" विनीताजी, प्रशंसा के नहले पर दहला मारती चली जा रही थीं, पर सुरगमा के गम्भीर चेहरे पर, एक भी हास्योज्ज्वल रेखा नहीं उभरी। किस बल के अपमान की व्यथा गुमचोट की पीड़ा-सी हो रह रहकर उसके चित्त को व्यथित कर रही है, यह चतुरा विनीताजी जान गईं।

"अच्छा तो भई, मैं चली। आज शाम को रवीन्द्रालय में एक नाटक है, हमें ही मुख्य अतिथि बना दिया है।" स्वर का अहंकार चेहरे पर पहुँचते ही लाली-सा फैल गया, 'मन्त्रीजी हैं दौरे पर, मन्त्री नहीं तो मन्त्री-पत्नी ही सही। शर्बत नहीं तो शर्बती!' उन्होंने जाते-जाते अहंकारी हँसी के साथ तिरछी खिंची से सुरगमा की ओर देखा, फिर बच्ची की ओर मुड़ गईं, 'देखो बेबी, मन लगाकर पढ़ना, और देखिए, मिस जोशी, ढेर सारा काम देकर जाइएगा इसे। बड़ी कामचोर है, आप पढ़ा न लें तो स्टाफ-कार आपको छोड़ आएगी।"

अपनी सहमी-डरी-सी शिष्या और उसके विस्मृत विषयों का परिचय लेने ही में सुरगमा का पहला दिन बीत गया था। धीरे-धीरे वह अपने इस नये ट्यूशन की अभ्यस्त हो गई। लड़की वास्तव में बुद्धिमती थी, किन्तु उन बुद्धि को यथोचित संरक्षण नहीं मिला था। जैसे बहुत दिनों से काम में न लाई गई उत्कृष्ट विदेशी मशीन के कल-पुर्जों में भी उसके स्वामी की अवहेलना से जंग लग जाता है, ऐसे ही लड़की के दिमागी जंग लगे कलपुर्जों की ओर भी शायद अब तक किसीने ध्यान नहीं दिया था। दो-तीन महीनों में ही सुरगमा की सूक्ष्म दृष्टि ने परिवार का पूरा इतिहास जान लिया था। पहले-पहल उसकी शिष्या 'यस मिस', 'नो मिस' कहकर ही उत्तर दिया करती थी, पर फिर धीरे-धीरे दोनों के बीच खड़ी अपरिचय की दीवार स्वयं ही ढह गई। एक दिन भी सुरगमा न आती तो बेबी स्वयं उसे लेने पहुँच जाती।

विनीताजी अधिकतर बाहर ही रहती थीं। कभी हैदराबाद, कभी दिल्ली

का ठीक करने म बिता दिया। बाहर के ता   ारे कमरे म त्रीजी के मिलने वाला से घिरे रहते हैं यही इस कोठी का एकमात्र एकान्त निर्जन कमरा है। समझ दाग सुरगमा ?" फिर, वह अपनी एकदम ही नवेली हल्की, के कल्चर मोती, चमकाती बोली, "नई तुम्हारा नाम हम बहुत पसन्द, समझ, सुरगमा ! ये बढ़िया नाम है ! और चेहरा भी तुम्हारा तुम्हारे नाम-सा ही, सुन्दर है।"

विनीताजी, प्रशसा के नहले पर दहला मार के चली जा रही थीं पर सुरगमा के गम्भीर चेहरे पर, एक भी हास्योज्ज्वल रेखा नहीं उतरी। कल के अपमान की व्यथा गुमचोट की पीड़ा सी हो रह रहकर उसके चित्त का व्यथित कर रही है, यह चतुरा विनीताजी जान गईं।

अच्छा तो भई, मैं चली। आज शाम को रवीन्द्रालय मे एक नाटक है हमें ही मुख्य अतिथि बना दिया है।" स्वर का अहकार चेहरे पर पहुचना म स्मी लाली-सा फैल गया, 'मन्त्रीजी हैं दौरे पर मन्त्री नहीं ता मन्त्री-पत्नी ही सही। शची पति नहीं तो शची ! ' उन्होंने जाते जाते अहकारपूर्ण हसी में माथ उन खिया से सुरगमा की ओर देखा फिर बबी की ओर मुड़ गई, ' देखो बेबी मन लगाकर पढना और देखिए, मिस जोशी ढेर सारा काम देकर जाइएगा इसे ! बड़ी कामचोर है, आप पढा नें तो स्टाफ-कार आपको छोड आएगी।"

अपनी महगी-डरी-सी शिष्या और उसके विस्मृत विषयों का परिचय लने ही म सुरगमा का पहला दिन बिता गया था। धीरे धीरे वह अपने इस नए ट्यूशन की अभ्यस्त हो गई। लडकी वास्तव मे बुद्धिमती थी कि तु उन बुद्धि को यथोचित सरक्षण नहीं मिला था। जैसे बहुत दिनों से काम म न लाई गई उत्कृष्ट विदेशी मशीन के कल-पुर्जों मे भी उसके स्वामी की अवहेलना से जग लग जाता है, ऐसे ही इसके के दिमागी जग लगे कलपुर्जों की ओर भी शायद अब तक किसीने ध्यान नहीं दिया था। दो-तीन महीनों म ही सुरगमा की सूक्ष्म दृष्टि ने परिवार का पूरा इतिहास जान लिया था। पहले पहल इसकी शिष्या यस मिस', नो मिस कहकर ही उत्तर दिया करती थी पर फिर धीरे धीरे दोनो के बीच खड़ी अपरिचय की दीवार स्वय ही ढह गई। एक दिन भी सुरगमा न आती तो बेबी स्वय उसे लेने पहुच जाती।

विनीताजी अधिकतर बाहर ही रहती थीं। कभी हैदराबाद, कभी दिल्ली

सामान्य शिक्षित गाड़ोदियाजी जितना ही डरते थे, उतना ही उन्हें उसपर गर्व भी था। विनीता उनके बंगाली मित्रों को अपनी त्रुटिहीन बांग्ला से और सरल मारवाड़ी आत्मीयों को अपनी अद्भुत अंग्रेजी से ऐसा प्रभावित कर देती कि उनका मुंह ही नहीं खुलता। वह सत्रह वर्ष की भी नहीं हुई थी कि उसके लिए बड़े बड़े उद्योगपतियों के प्रासादों से रिश्ते आने लगे। किन्तु उसने पिता से साफ साफ कह दिया था, वह बिना शिक्षा पूरी किए विवाह करने की मूर्खता नहीं करेगी।

"आप क्या सोचते हैं पापा, कि विवाह ही लड़कियों की अन्तिम नियति है? मैं आपका बेटा होती, तो क्या आप मुझे पढ़ाने विदेश नहीं भेजते? मैंने सोच लिया है, मैं विवाह नहीं करूंगी।"

"तब क्या करेगी तू?" पिता ने भयमिश्रित आश्चर्य से अपनी उस एकदम अनजान बन गई विद्रोहिणी पुत्री से सहमकर पूछा था।

'मैंने सोच लिया है पापा,' वह रहस्यमय कुटिलता से मुस्कराई थी, मैं राजनीति से विवाह करूंगी। एक दिन आप देखेंगे, भारत के प्रत्येक समाचारपत्र में आपकी विनीता का चित्र छपा है। मेरी गर्दन फूलों के हारों से झुकी है, मैं हाथ जोड़े मंच पर खड़ी हूं, सामने है मेरे लाख-लाख प्रशंसकों की भीड़। आप मेरे पास आना चाह रहे हैं पर भीड़ आपको रास्ता नहीं दे रही है, तब ही आप हंसकर कहेंगे—'यह मेरी ही बेटी है भाइयो मैं इसका पिता हूं' जरा सोचिए पापा आपका वह क्षण कितने आनन्द का होगा कितने सन्तोष का!"

गाड़ोदियाजी आत्मविश्वास से दमकते अपनी पुत्री के ही उस चेहरे को जैसे पहचान नहीं पा रहे थे। विनीता को फिर उन्होंने उसीकी जिद पर पढ़ने विदेश भेज दिया, किन्तु उस चंचल किशोरी का मन वहां भी नहीं टिका, वह फिर कलकत्ता लौट आई और फिर युनिवर्सिटी में ही उसने अपने पति को स्वयं ढूंढ लिया था।

पहले-पहले वह अपनी चुलबुली बंगाली सहपाठिनियों की भांति दिनकर पाण्डे का पानी पाण्डे कहकर ही मजाक उड़ाया करती थी। पर, धीरे धीरे उस आकर्षक गम्भीर तरुण की उदासीनता ही उसे बांधने लगी।

दिनकर पहाड़ के किसी पिछड़े इलाके से अपने एक उच्चपदस्थ आत्मीय के यहां पढ़ने कलकत्ता आया तो गृहस्वामिनी ने मुंह बिचकाया था। कई बार परोक्ष में छोड़े गए चचेरी बहन की उस ननद के व्यंग्यबाण उसे बुरी तरह बिद्ध कर

सामान्य शिक्षित गाडोदियाजी जितना ही डरते थे, उतना ही उन्हें उसपर गर्व भी था। विनीता उनके बंगाली मित्रों को अपनी त्रुटिहीन बांग्ला से और सरल मारवाड़ी आत्मीयों को अपनी अदभुत अंग्रेजी से ऐसा प्रभावित कर देती कि उनका मुंह ही नहीं खुलता। वह सत्रह वर्ष की भी नहीं हुई थी कि उसके लिए बड़े बड़े उद्योगपतियों के प्रासादों से रिश्ते आने लगे। किन्तु उसने पिता ने साफ साफ कह दिया था, वह बिना शिक्षा पूरी किए विवाह करने की मूर्खता नहीं करेगी।

"आप क्या सोचते हैं पापा, कि विवाह ही लड़कियों की अन्तिम नियति है ? मैं आपका बेटा होती, तो क्या आप मुझे पढ़ाने विदेश नहीं भेजते ? मैंने सोच लिया है, मैं विवाह नहीं करूंगी।"

"तब क्या करेगी तू ?" पिता ने भयमिश्रित आश्चर्य से अपनी उस एकदम अनजान बन गई विद्रोहिणी पुत्री से सहमकर पूछा था।

'मैंने सोच लिया है पापा,' वह रहस्यमय कुटिलता से मुस्कराई थी 'मैं राजनीति से विवाह करूंगी। एक दिन आप देखेंगे, भारत के प्रत्येक समाचारपत्र में आपकी विनीता का चित्र छपा है। मेरी गर्दन फूलों के हारों से झुकी है मैं ऊंचे जोड़े मंच पर खड़ी हूं, सामने है मेरे लाख-लाख प्रशंसकों की भीड़। आप मेरे पास आना चाह रहे हैं पर भीड़ आपको रास्ता नहीं दे रही है, तब ही आप हंसकर कहेंगे—'यह मेरी ही बेटी है भाइयो मैं इसका पिता हूं' जरा सोचिए पापा आपका वह क्षण कितने आनन्द का होगा कितने सन्तोष का !"

गाडोदियाजी आत्मविश्वास से दमकते अपनी पुत्री के ही उस चेहरे को जैसे पहचान नहीं पा रहे थे। विनीता को फिर उन्होंने उसीकी जिद पर पढ़ने विदेश भेज दिया, किन्तु उस चंचल किशोरी का मन वहां भी नहीं टिका, वह फिर कलकत्ता लौट आई और फिर युनिवर्सिटी में ही उसने अपने पति को स्वयं ढूंढ लिया था।

पहले-पहले वह अपनी चुलबुली बंगाली सहपाठिनियों की भांति दिनकर पाण्डे का पानी पाण्डे कहकर ही मजाक उड़ाया करती थी। पर, धीरे धीरे उस आकर्षक गम्भीर तरुण की उदासीनता ही उसे बांधने लगी।

दिनकर पहाड़ के किसी पिछड़े इलाके से अपने एक उच्चपदस्थ आत्मीय के यहां पढ़ने कलकत्ता आया तो गृहस्वामिनी ने मुंह बिचकाया था। कई बार परोक्ष में छोड़े गए चचेरी बहन की उस ननद के व्यंग्यबाण उसे बुरी तरह बिद्ध कर

पदचाप, दिव्य दर्पपूर्ण स्मित, हाथ में झूल रहा साड़ी से मेल खाता पर्स उत्तुंग एड़ियों पर सुदीर्घ देह का पल-पल बदलता रूप उसे बांधता चला गया।

पहले, विनीता के आग्रह पर वह धर्मशाला छोड़कर उसीकी कोठी में रहने आया, फिर गाडोदियाजी ने बड़ी अनिच्छा से ही उसे एक पार्ट-टाइम काम भी दिलवा दिया। मन ही मन वह पुत्री की उस विजातीय युवक के प्रति दुर्बलता को ठीक ही पहचान गए थे। एक-दो बार उन्होंने उसे समझाने की चेष्टा भी की थी— 'देखो मुनिया, तुम कहती हो दिनकर तुम्हारा मित्र है। पर हम अनपढ़ भले ही हों बेटी, हमने भी दुनिया देखी है। आदमी और औरत के बीच, हमारी जान तो कुल तीन ही रिश्ते सच्चे हैं। बाप-बेटी का भाई बहन का और पति पत्नी का। चौथे किसी भी रिश्ते की दुहाई दे लो, वह दुहाई केवल आड़ की दुहाई होती है। तुम जानती हो, कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में आज तक मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। मेरे सामने कोई भले ही कुछ न कहे, पीठ पीछे तुम्हारे इसी दोस्त को लेकर दस बातें करने लगे हैं। तुम कहती हो, तुम राजनीति में नाम कमाना चाहती हो, पर इतनी बात हमारी गांठ बांध लो मुनिया किसी भी बड़े प्रतिष्ठित होनहार राजनीतिज्ञ की भी किसी क्षण हो गई अकालमृत्यु का एकमात्र कारण होता है, उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष। सुनाम के बिना राजनीति कभी टिक नहीं सकती, जिसे तुम लोग अंग्रेजी में कहते हो रेप्युटेशन यही रेप्युटेशन एक सफल राजनीतिज्ञ के लिए अनिवार्य है। तुम तो राजनीति में अपना स्थान बनाने से पहले ही यह गुण गंवा रही हो।"

'आप चिन्ता न करें पापा ! मैं एक ही दिन में सबका मुंह बन्द कर दूंगी।" बेचारे गाडोदियाजी मन ही मन सहमकर रह गए थे, न जाने क्या अनर्थ कर बैठेगी उनकी यह सिरफिरी लड़की। क्या पता मारवाड़ी समाज की कोई मीटिंग बुलाकर कुछ उल्टा-सीधा बक आए। पर जिस अप्रत्याशित व्यवहार से, उस तेजस्वी अपखुद लड़की ने, सचमुच ही अपने समाज का मुंह एक ही दिन में बन्द कर दिया उसके लिए गाडोदियाजी प्रस्तुत नहीं थे। दिन रात लाखों का वारा-न्यारा करने वाले सम्पूर्ण शेयर-मार्केट की उनकी नाड़ी की एक-एक धड़कन को एक ही अनुभूत नब्जी की पकड़ से पहचानने वाले उस चतुर व्यवसायी की सजग बुद्धि को भी विनीता अंगूठा दिखा गई। सन्ध्या को वह हाथ में दोना भर लड्डू लिए लौटी, माथे पर था रोली का तिलक, मांग में सिन्दूर, गले में काले पोत की

पदचाप, दिव्य दपपूर्ण स्मित, हाथ में झूल रहा साडी से मेल खाता पर्स उत्तुंग एड़ियो पर सुदीर्घ देह का पल-पल बदलता रूप उसे बाधता चला गया।

पहले, विनीता के आग्रह पर वह धर्मशाला छोड़कर उसीकी कोठी मे रहने आया, फिर गाडोदियाजी ने बडी अनिच्छा से ही उसे एक पार्ट-टाइम काम भी दिलवा दिया। मन ही मन वह पुत्री की उस विजातीय युवक के प्रति दुर्बलता को ठीक ही पहचान गए थे। एक-दो बार उन्होंने उसे समझाने की चेष्टा भी की थी—
'देखो मुनिया, तुम कहती हो दिनकर तुम्हारा मित्र है। पर हम अनपढ भले ही हों बेटी, हमने भी दुनिया देखी है। आदमी और औरत के बीच, हमारी जान तो कुल तीन ही रिश्ते सच्चे हैं। बाप-बेटी का भाई-बहन का और पति पत्नी का। चौथे किसी भी रिश्ते की दुहाई दे लो, वह दुहाई केवल आड की दुहाई होती है। तुम जानती हो, कलकत्ते के मारवाडी समाज में आज तक मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। मेरे सामने कोई भले ही कुछ न कहे, पीठ पीछे तुम्हारे इसी दोस्त को लेकर दस बातें करने लगे हैं। तुम कहती हो, तुम राजनीति में नाम कमाना चाहती हो, पर इतनी बात हमारी गाठ बाध लो मुनिया किसी भी बडे प्रतिष्ठित होनहार राजनीतिज्ञ की भी किसी क्षण हो गई अकालमृत्यु का एकमात्र कारण होता है, उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष। सुनाम के बिना राजनीति कभी टिक नही सकती, जिसे तुम लोग अंग्रेजी में कहते हो रेप्युटेशन यही रेप्युटेशन एक सफल राजनीतिज्ञ के लिए अनिवार्य है। तुम तो राजनीति में अपना स्थान बनाने से पहले ही यह गुण गवा रही हो।"

'आप चिन्ता न करें पापा ! मैं एक ही दिन में सबका मुंह बन्द कर दूंगी।" बेचारे गाडोदियाजी मन ही मन सहमकर रह गए थे, न जाने क्या अनर्थ कर बैठेगी उनकी यह सिरफिरी लडकी। क्या पता मारवाडी समाज की कोई मीटिंग बुलाकर कुछ उल्टा-सीधा बक आए। पर जिस अप्रत्याशित व्यवहार से, उस तेजस्वी अपखुद लडकी ने, सचमुच ही अपने समाज का मुंह एक ही दिन में बन्द कर दिया उसके लिए गाडोदियाजी प्रस्तुत नहीं थे। दिन रात लाखों का वारा-न्यारा करने वाले सम्पूर्ण शेयर-मार्केट की उनकी नाडी की एक-एक धडकन को एक ही अनुभूत नब्ज़ की पकड से पहचानने वाले उस चतुर व्यवसायी की सजग बुद्धि को भी विनीता अंगूठा दिखा गई। सन्ध्या को वह हाथ में दोना भर लड्डू लिए लौटी, माथे पर था रोली का तिलक, मांग में सिन्दूर, गले में काले पोत की

नें, एक न एक दिन, उसी सन्तान की ममता उन्हें चुम्बक की भांति खींच अपने तो खून स्वयं माफ करा लेती है। गाडोदियाजी जब तक जीवित रहे दिनकर गृह-जमाता के रूप में उनका विस्तृत कारोबार सम्भालता रहा और जब उनकी मृत्यु हुई तब से अब तक अवचेतन में अवश पड़ी उसकी महत्त्वाकांक्षा ने फिर सिर उठा लिया।

इस बीच, छात्रावस्था में देश के लिए झेली गई जेलयात्रा ने उसे चट अपना बोला थमा दिया। सोमेश्वर के चनौंदा आश्रम में जिन किशोरों को गोरे सिपाहियों के उद्दण्ड बटनों ने गम्भीर रूप से आहत किया था उनमें दिनकर अग्रणी था। अब भी उसकी पीठ में, कंधे में, माथे में उन विदेशी बटनों के अनेक अमूल्य स्मृति चिह्न गड़े पड़े थे। सुअवसर देख खान में छिपे वे अनमोल हीरे स्वयं ही जगमगाने लगे। गुणी जौहरियों को कब और कैसे उन धूमिल रत्नों की जगमगाहट से मोहा जा सकता है यह वह सरल युवक सम्भवतः उतना नहीं समझता था किन्तु मारवाड़ी सहचरी की प्रखर व्यापारकुशल बुद्धि ने पति की बांह थाम उसे ठीक [illegible] जौहरी के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दिया, जो उन हीरों का उचित मूल्य आंक सकता था। कभी विनीता के पिता ने ही, उस जौहरी के पूरे परिवार का उसकी सुदीर्घ जेलयात्रा के दौरान भरण-पोषण किया था यही नहीं चुनाव के चन्दे, पुत्रियों के विवाह पुत्र की नौकरी दिलाने के महायज्ञ में भी सबसे बड़ी आहुति उसके पिता ने ही दी थी। आज उसी यज्ञभाग का प्रसाद मांगने वह उसी द्वार पर आंचल फैलाकर खड़ी हो गई थी। दिनकर को राजनीति के अखाड़े में अपना स्थान बनाने में कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा। एक नेता के जन्मजात गुण उसकी रक्तमज्जा में बसे थे, आकर्षक व्यक्तित्व, ओजस्वी वाणी रहस्यमयी मुस्कान, मुस्कराते अधरों पर समय का कभी न खुलने वाला ताला। वह क्या कर रहा है या ना, यह कभी-कभी उसकी पथप्रदर्शिनी पत्नी विनीता भी नहीं समझ पाती। समय के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व किसी वेगवती नदी के निरन्तर प्रवाह में चिकने बन उठे पहाड़ी गलडांड (पत्थर)-सा ही चिकना बन उठा था। उसके यौवन का आकर्षण प्रतिभासम्पन्न सुन्दर तारुण्य का था, किन्तु उसके प्रौढ़त्व का आकर्षण था—एक राज कुशल राजनीतिज्ञ का। आज वयस में मन्त्रिमण्डल का सबसे छोटा सदस्य होने पर भी उसकी विलक्षण बुद्धि के बड़प्पन का लोहा सब मान चुके थे। कभी-कभी वह विनीता से भी कोई बात

में, एक न एक दिन, उसी सन्तान की ममता उन्हें चुम्बक की भांति खींच अपने को भूल स्वयं माफ करा लेती है। गाडोदियाजी जब तक जीवित रहे दिनकर गृह-जमाता के रूप में उनका विस्तृत कारोबार सम्भालता रहा और जब उनकी मृत्यु हुई तब से अब तक अवचेतन में अवश पड़ी उसकी महत्त्वाकांक्षा ने फिर सिर उठा लिया।

इस बीच, छात्रावस्था में देश के लिए झेली गई जेलयात्रा ने उसे चट अपना बीता थमा दिया। सोमेश्वर के चनौदा आश्रम में जिन किशोरों को गोरे सिपाहियों के उद्दण्ड बटनों ने गम्भीर रूप से आहत किया था उनमें दिनकर अग्रणी था। अब भी उसकी पीठ में, कंधे में, माथे में उन विदेशी बटनों के अनेक अमूल्य स्मृति चिह्न भरे पड़े थे। सुअवसर देख खान में छिपे वे अनमोल हीरे स्वयं ही जगमगाने लगे। गुणी जौहरियों का कब और कैसे उन धूमिल रत्नों की जगमगाहट से मोहा जा सकता है यह वह सरल युवक सम्भवतः उतना नहीं समझता था किन्तु मारवाड़ी सहचरी की प्रखर व्यापारकुशल बुद्धि ने पति की बांह थाम उसे ठीक ऐसे जौहरी के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दिया, जो उन हीरों का उचित मूल्य आंक सकता था। कभी विनीता के पिता ने ही, उस जौहरी के पूरे परिवार का उसकी सुदीर्घ जेलयात्रा के दौरान भरण-पोषण किया था यही नहीं चुनाव के चन्दे, पुत्रियों के विवाह पुत्र की नौकरी दिलाने के महायज्ञ में भी सबसे बड़ी आहुति उसके पिता ने ही दी थी। आज उसी यज्ञभाग का प्रसाद मांगने वह उसी द्वार पर आंचल फैलाकर खड़ी हो गई थी। दिनकर को राजनीति के अखाड़े में अपना स्थान बनाने में कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा। एक नेता के जन्मजात गुण उसकी रक्तमज्जा में बसे थे, आकर्षक व्यक्तित्व, ओजस्वी वाणी रहस्यमयी मुस्कान, मुस्कराते अधरों पर संशय का कभी न खुलने वाला ताला। वह हां कर रहा है या ना, यह कभी-कभी उसकी पथकशायिनी पत्नी विनीता भी नहीं समझ पाती। समय के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व किसी वेगवती नदी के निरन्तर सहवास में चिकने बन उठे पहाड़ी गलडाड (पत्थर)-सा ही चिकना बन उठा था। उसके यौवन का आकर्षण प्रतिभासम्पन्न सुन्दर तारुण्य का था, किन्तु उसके प्रौढ़त्व का आकर्षण था—एक चतुर कुशल राजनीतिज्ञ का। आज वयस में मन्त्रिमण्डल का सबसे छोटा सदस्य होने पर भी उसकी विलक्षण बुद्धि के बड़प्पन का लोहा सब मान चुके थे। कभी-कभी वह विनीता से भी कोई बात

गई थी। फिर दिनकर ने उसे अपने पास बुला लिया। विनीता को उन्होंने समझाया भी था, 'विनीता, अब तुम अपनी यह बेकार की समाजसेवा त्याग कर घर पर रहो। लडकी बरबाद हो रही है मुझे कहा इतना समय है जो इसकी लगाम खीचू।"

पर विनीता हसकर टाल गई थी, "आप भी एकदम ही दकियानूसी बातें करते हैं, आज के बच्चे क्या हमारी-तुम्हारी तरह पहाडे रटकर बडे हुए है ! मैं घर ही पर कैसे रह सकती हू ? तुम्हें तो पता ही है, अहमदाबाद की ग्राम पचायत ने मुझे "त्याग बीघा" जमीन दी है, वहा जेल से छूटी बन्दिनियों के लिए मुझे एक छोटा-सा फाम बनवाना है, उधर न्युट्रिशन केटरिंग के स्कूल की नीव डालने जा रही हू।"

वास्तव म, विनीताजी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था, एक ओर वह इण्डियन फेडरेशन आफ युनिवर्सिटी वीमेन ऐसोसिएशन की चेयरमैन थी दूसरी ओर इडियन काउन्सिल आफ चाइल्ड वेलफेयर की ऐक्जीक्यूटिव की सदस्या। उधर बीच-बीच म, उन्हें पार्लियामेन्ट के दोनो सदनो मे मेडिकल टरमिनेशन आफ प्रेगनेन्सी बिल जैसे महत्त्वपूर्ण बिलो के पक्ष मे अपनी ओजस्वी वक्तृता भी झाडने जाना होता था। अब उसे भी अपने इस गतिशील पर्यटन म आन द आने लगा था। किन्तु घर लौटने पर, कभी कभी पति को लेकर उसकी अपने सौभाग्य पर सर्वाधिकार सुरक्षा की भावना जागरूक हो उठती। पार्टी हो या कोई उत्सव, सुदरी चुलबुली दर्शनीय महिलाए जहा कही उसके सुदर्शन पति को घेरकर हसने-इठलाने लगती, वह चट से वहा पहुच अपनी उपस्थिति की छाप से उन्हे आतकित कर रगीन भीड के मोहक घेरे को तितर बितर कर देती। वह स्वभाव से ही शकालु थी और यही कारण था कि पुत्री की वह आकर्षक नई ट्यूटर, उसे खिन्न कर गई थी। इसी बीच, पति को बडी अनिच्छा से ही छोड, उसे काटेज इण्डस्ट्रीज के एक सेमिनार मे मद्रास जाना पडा था।

चार पाच महीनों मे सुरगमा को भी अब अपनी नई नौकरी मे आनन्द आने लगा था। वर्षों पूर्व पीछे छूट गए विषय उसे सहसा उसके बीते कैशोर्य की स्मृतिया का ताजा कर देते। किसी मोटी पुस्तक के पृष्ठो म दबे पाटल प्रसून की विवर्ण पत्तो-सी कैशोर्य की वे स्मृतिया उसे एक बार फिर कान्वेंट के अहाते मे पहुचा देती। कभी-कभी उसकी मुहलगी शिष्या सब कापी किताबो को उठाकर

गई थी। फिर दिनकर ने उसे अपने पास बुला लिया। विनीता को उन्होंने समझाया भी था, 'विनीता, अब तुम अपनी यह बेकार की समाजसेवा त्याग कर घर पर रहो। लड़की बरबाद हो रही है मुझे कहां इतना समय है जो इसकी लगाम खीचूं।"

पर विनीता हंसकर टाल गई थी, "आप भी एकदम ही दकियानूसी बातें करते हैं, आज के बच्चे क्या हमारी-तुम्हारी तरह पहाड़े रटकर बड़े हुए हैं ! मैं घर ही पर कैसे रह सकती हूं ? तुम्हें तो पता ही है, अहमदाबाद की ग्राम पंचायत ने मुझे "दाग बीघा" जमीन दी है, वहां कैंसर से छूटी बन्दिनियों के लिए मुझे एक छोटा-सा काम बनवाना है, उधर न्यूट्रिशन केटरिंग के स्कूल की नींव डालने जा रही हूं।"

वास्तव में, विनोताजी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था, एक ओर वह इण्डियन फेडरेशन आफ युनिवर्सिटी वीमेन ऐसोसिएशन की चेयरमैन थीं दूसरी ओर इंडियन काउन्सिल आफ चाइल्ड वेलफेयर की ऐक्जीक्यूटिव की सदस्या। उधर बीच-बीच में, उन्हें पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों में मेडिकल टरमिनेशन आफ प्रेगनेन्सी बिल जैसे महत्त्वपूर्ण बिलों के पक्ष में अपनी ओजस्वी वक्तृता भी झाड़ने जाना होता था। अब उसे भी अपने इस गतिशील पर्यटन में आनन्द आने लगा था। किन्तु घर लौटने पर, कभी कभी पति को लेकर उसकी अपने सौभाग्य पर सर्वाधिकार सुरक्षा की भावना जागरूक हो उठती। पार्टी हो या कोई उत्सव, सुन्दरी चुलबुली दर्शनीय महिलाएं जहां कहीं उसके सुदर्शन पति को घेरकर हंसने-इठलाने लगतीं, वह चट से वहां पहुंच अपनी उपस्थिति की छाप से उन्हें आतंकित कर रंगीन भौंड़ के मादक घेरे को तितर बितर कर देती। वह स्वभाव से ही शंकालु थी और यही कारण था कि पुत्री की वह आकर्षक नई ट्यूटर, उसे खिन्न कर गई थी। इसी बीच, पति को बड़ी अनिच्छा से ही छोड़, उसे काटेज इण्डस्ट्रीज के एक सेमिनार में मद्रास जाना पड़ा था।

चार पांच महीनों में सुरंगमा को भी अब अपनी नई नौकरी में आनन्द आने लगा था। वर्षों पूर्व पीछे छूट गए विषय उसे सहसा उसके बीते कैशोर्य की स्मृतियां को ताजा कर देते। किसी मोटी पुस्तक के पृष्ठों में दबे पाटल प्रसून की विवर्ण पत्रों-सी कैशोर्य की वे स्मृतियां उसे एक बार फिर कान्वेंट के अहाते में पहुंचा देतीं। कभी-कभी उसकी मुंहलगी शिष्या सब कापी किताबों को उठाकर

उगलते आकाश को धूमिल कर देते और कही नये बने पुल की महिमा बाढ से ध्वस्त पुराने पुल के खडहर को अगूठा-सा दिखा रही थी। म । कामेश्वर के शिव मन्दिर की मधुर घण्टा ध्वनि गोमती की जलधार से अभिसिंचित होकर किसी परिचित आत्मीय की अन्तरगता से सीधे उसके कमरे मे चली आती और वह आखे बन्द कर लेती। खिडकी से आता हवा का हर झोका नित्य नवीन शीतल फुहार से उसे अभिसिंचित कर जाता। पिछली बाढ मे वह मकान अपना अस्तित्व ही मिटाता गोमती गर्भ की उग्र गहराई मे डूब गया था, अभी भी उसकी दीवारो पर उस जलसमाधि का इतिहास अकित था। मीरा तो उस प्राकृतिक स्प्रेवक को देखकर बौरा गई थी, 'हाय, एकदम ऐब्स्ट्रैक्ट आर्ट का मजा दे रही है ये दीवारें और यह दीवार पर लिखा 'ॐ शुभ लाभ' तो तू किसी भी आर्ट गैलरी मे लटका सकती है। उस दिवगत अभागे नये जोडे के गृह प्रवेश के समय ही सम्भवत वह शुभ लाभ की कामना दीवार पर अकित की गई थी। उसकी लाल स्याही सचमुच ही कलात्मक ढग से फैलकर आकर्षक बेल की सृष्टि कर गई थी। मा की गहस्थी का फालतू सामान सुरगमा नये मकान मे आने से पहले बडे औदार्य से पडोसियो को बाट आई थी। अपने अस्वाभाविक करुण अतीत का वह एक भी स्मृतिचिह्न शेष रखना नही चाहती थी। साथ म लाई थी एक सूटकेस, एक तखत और एक स्टोव। मा के एक एक बतन मे मा की असख्य स्मृतिया लिपटी थी, निर्जीव वस्तुए भी मनुष्य के चले जाने के बाद कितनी सजीव बन उठती है। कासे का वह बगाली गिलास, जिसमे मा चाय पीती थी, स्टोव जिसे मा हर इतवार का नीम्बू-राख से मलकर चमकाती थी, कलछुल जिसपर लिपटी मा की अराल अगुलियो का स्पर्श हाथ म लेते ही उसे ऐसे सहमा जाता जैसे वह मा की अगुलिया थाम रही हो। कुछ भी उसने साथ नही लिया। नया स्टोव खरीद उसने एक आध भगौने म ही अपनी नई गहस्थी जमा दी। खाना बनाती ही कम थी, आए दिन मीरा हाथ म टिफिन-कैरियर लटकाए आ जाती। जानबूझकर ही शायद वह इतना खाना ले आती थी कि सुरगमा को दूसरे दिन भी खाना नही बनाना पडता। एक दिन सुस्वादु भोजन के साथ-साथ मीरा एक वैसा ही लुभावना प्रस्ताव भी लेकर आ गई

सुरगमा मामा बाबू की चिट्ठी आई है। मामी के भाई का लडका कार्तिक पिछले साल जमनी गया था वरुण के पास। वहा से इजीनियरिंग का डिप्लोमा ले-

उगलते आकाश को धूमिल कर देते और कहीं नये बने पुल की महिमा बाढ से ध्वस्त पुराने पुल क खडहर को अगूठा-सा दिखा रही थी। म ; कामेश्वर के शिव मन्दिर की मधुर घण्टा ध्वनि गोमती की जलधार से अभिसिंचित होकर किसी परिचित आत्मीय की अन्तरगता से सीधे उसके कमरे मे चली आती और वह आखे बन्द कर लेती। खिडकी से आता हवा का हर झोका नित्य नवीन शीतल फुहार से उसे अभिसिंचित कर जाता। पिछली बाढ मे वह मकान अपना अस्तित्व ही मिटाता गोमती गर्भ की उग्र गहराई मे डूब गया था, अभी भी उसकी दीवारो पर उस जलसमाधि का इतिहास अकित था। मीरा तो उस प्राकृतिक स्प्रेवक को देखकर बौरा गई थी, 'हाय, एकदम ऐब्स्ट्रैक्ट आर्ट का मजा दे रही है ये दीवारें और यह दीवार पर लिखा 'ऊ शुभ लाभ' तो तू किसी भी आर्ट गैलरी मे लटका सकती है। उस दिवगत अभागे नये जोडे के गृह प्रवेश के समय ही सम्भवत वह शुभ लाभ की कामना दीवार पर अकित की गई थी। उसकी लाल स्याही सचमुच ही कलात्मक ढग से फलकर आकर्षक बेल की सृष्टि कर गई थी। मा की गृहस्थी का फालतू सामान सुरगमा नये मकान मे आने से पहले बडे औदार्य से पडोसियो को बाट आई थी। अपने अस्वाभाविक करुण अतीत का वह एक भी स्मृतिचिह्न शेष रखना नही चाहती थी। साथ म लाई थी एक सूटकेस, एक तखत और एक स्टोव। मा के एक एक बर्तन मे मा की असख्य स्मृतिया लिपटी थी, निर्जीव वस्तुए भी मनुष्य क चले जाने के बाद कितनी सजीव बन उठती है। कासे का वह बगाली गिलास, जिसम मा चाय पीती थी, स्टोव जिसे मा हर इतवार को नीम्बू-राख से मलकर चमकाती थी, कलछुल जिसपर लिपटी मा की अराल अगुलियो का स्पर्श हाथ म लेते ही उसे ऐसे सहमा जाता जैसे वह मा की अगुलिया थाम रही हो। कुछ भी उसने साथ नही लिया। नया स्टोव खरीद उसने एक आध भगौने म ही अपनी नई गृहस्थी जमा दी। खाना बनाती ही कम थी, आए दिन मीरा हाथ म टिफिन-कैरियर लटकाए आ जाती। जानबूझकर ही शायद वह इतना खाना ले आती थी कि सुरगमा को दूसरे दिन भी खाना नही बनाना पडता। एक दिन सुस्वादु भोजन के साथ-साथ मीरा एक वैसा ही लुभावना प्रस्ताव भी लेकर आ गई

सुरगमा मामा बाबू की चिट्ठी आई है। मामी के भाई का लडका कार्तिक पिछले साल जर्मनी गया था वरुण के पास। वहा से इजीनियरिंग का डिप्लोमा ले-

"जी हा, मैं क्या आपकी तरह मूर्ख हू ? मैंने डैडी से हा कह दिया है। सुनील गुहा न जाने कितने चक्कर लगा चुका है। पहले मैं उसका नाम सुनकर ही भडक गई थी क्या दुहेज ही बचा है मेरे लिए, फिर उसकी पहली पत्नी पूर्वा कितनी सुन्दर थी पर फिर मैंने सोचा, विधुर ही तो है, एक बच्ची भी है उसे नानी पाल रही है। वह तो अभी विवाह के लिए ज़िद कर रहा था पर डैडी एकदम बगवैडिंग रचाना चाह रहे हैं, शायद मई मे "

"वाह यह तो बडी अच्छी खबर सुनाई तूने मीरा, पर सुनील गुहा तो शायद कनाडा ही मे बस गए हैं। क्या तू भी वही चली जाएगी ?"

"और नही तो क्या इसीसे तो कह रही हू सुरगमा, एक बार कार्तिक को अवसर दे, तू कहे तो मैं आज ही तार भेज दू !"

"नहीं मीरा," उसका स्वर सुन फिर मीरा को कुछ कहने का साहस नही हुआ था, "मैं अपने इस निश्चय से कभी डिगूगी नही। तुझे विश्वास दिलाती हू तेरे कार्तिक क्या ही नही, ससार का कोई भी पुरुष कभी मेरा पति नहीं बन सकता। मा का सुख जी भरकर देख लिया है।"

मीरा ने एक लम्बी सास खीचकर बटुआ उठा लिया, अब मैं चलू सुरगमा, तुझे भी तो कही जाना है ना ? चल मैं हजरतगज तक छोड दूगी।"

"कल बैंक के काम से चार दिन के लिए उन्नाव जा रही हू। एक-आध चीजें खरीदनी हैं। तू मेरी चिन्ता मत कर, मिनो ने कहा है उसे भी हजरतगज जाना है। ६ बजे मुझे यही से ले लेगी।" शिष्या का नाम लेते ही सुरगमा का चेहरा स्निग्ध हो उठा।

"हा भई क्यों नही, हमारी है सीधी-सादी फियट और तुम्हे लेने आएगी मन्त्रीजी की स्लोक गाडी चलू "वह आनन्द की पुट देती उठी किन्तु चेहरा देखकर ही सुरगमा समझ गई कि वह रूठकर जा रही है।

तीन चार दिन बाहर रहने के बाद सुरगमा लौटी तो बैंक जाने को मन ही नहीं किया। सिर धोकर वह खिडकी के पास खडी बाल सुखा रही थी कि द्वार धडाम से खोल उसकी शिष्या तेजी से भागती उससे लिपट गई, हाय, मिस, बाल खोलकर आप कितनी सुन्दर लग रही हैं। हमारे ऊपर के गोल कमरे म असित हाल्दार की बनाई एक उमर खैयाम वाली तस्वीर है। आज आप आएगी तो

"जी हां, मैं क्या आपकी तरह मूर्ख हूं ? मैंने डैडी से हां कह दिया है। सुनील गुहा न जाने कितने चक्कर लगा चुका है। पहले मैं उसका नाम सुनकर ही भड़क गई थी क्या दुहेजू ही बचा है मेरे लिए, फिर उसकी पहली पत्नी पूर्वा कितनी सुन्दर थी पर फिर मैंने सोचा, विधुर ही तो है, एक बच्ची भी है उसे नानी पाल रही है। वह तो अभी विवाह के लिए ज़िद कर रहा था पर डैडी एकदम बगवेडिंग रचाना चाह रहे हैं, शायद मई में "

"वाह यह तो बड़ी अच्छी खबर सुनाई तूने मीरा, पर सुनील गुहा तो शायद कनाडा ही में बस गए हैं। क्या तू भी वहीं चली जाएगी ?"

"और नहीं तो क्या इसीसे तो कह रही हूं सुरगमा, एक बार कार्तिक को अवसर दे, तू कहे तो मैं आज ही तार भेज दूं !"

"नहीं मीरा," उसका स्वर सुन फिर मीरा को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ था, "मैं अपने इस निश्चय से कभी डिगूंगी नहीं। तुझे विश्वास दिलाती हूं तेरे कार्तिक दा ही नहीं, ससार का कोई भी पुरुष कभी मेरा पति नहीं बन सकता। मां का सुख जी भरकर देख लिया है।"

मीरा ने एक लम्बी सांस खींचकर बटुआ उठा लिया, अब मैं चलूं सुरगमा, तुझे भी तो कहीं जाना है ना ? चल मैं हजरतगंज तक छोड़ दूंगी।"

"कल बैंक के काम से चार दिन के लिए उन्नाव जा रही हूं। एक-आध चीजें खरीदनी हैं। तू मेरी चिन्ता मत कर, मिनी ने कहा है उसे भी हजरतगंज जाना है। ६ बजे मुझे यहीं से ले लेगी।" शिष्या का नाम लेते ही सुरगमा का चेहरा स्निग्ध हो उठा।

"हां भई क्यों नहीं, हमारी है सीधी-सादी फियट और तुम्हें लेने आएगी मन्त्रीजी की स्लोक गाड़ी चलूं "वह आनन्द की पुट देती उठी किन्तु चेहरा देखकर ही सुरगमा समझ गई कि वह रूठकर जा रही है।

तीन चार दिन बाहर रहने के बाद सुरगमा लौटी तो बैंक जाने को मन ही नहीं किया। सिर धोकर वह खिड़की के पास खड़ी बाल सुखा रही थी कि द्वार धड़ाम से खोल उसकी शिष्या तेजी से भागती उससे लिपट गई, हाय, मिस, बाल खोलकर आप कितनी सुन्दर लग रही हैं। हमारे ऊपर के गोल कमरे में असित हाल्दार की बनाई एक उमर खैयाम वाली तस्वीर है। आज आप आएंगी तो

"हम पहाड़ियों का विदेश तब इसी सीमा से आरम्भ हो जाता था।" देश-विदेश की प्रचुर यात्राओं का गर्व फिर दिनकर के स्वर को अहदीप्त कर गया था, "ठीक ही तो था तब हम पहाड़ियों के लिए हलद्वानी ही था बम्बई— मैं अठारह वर्ष का था, तब कहीं पहली बार मोटर में बैठा मोटर चली तो कलेजा भय से थरथर कांपने लगा था। उसपर जितनी बार ड्राइवर हॉर्न बजाता मैं चौंककर रुआंसा हो जाता था।"

'श्श डैडी" मिनी ने पिता का हाथ धरकर दबा दिया। दिनकर को ड्राइवर की ही उपस्थिति में उसके अतीत का यह गौरव-गान मिनी को अच्छा नहीं लग रहा था, किन्तु पुत्री की सुन्दरी ट्यूटर का सान्निध्य दिनकर को निश्चय ही पुलकित कर मुखर बना गया था। कभी वह गुनगुनाता कभी टोपी सीधी करता और कभी झण्डा लगी कार को देख जमा हो गई भीड़ की उल्लासमयी हर्षध्वनि का प्रत्युत्तर देने दोनों हाथ हिला-हिलाकर खिड़की से बाहर निकाल देता। उन चौड़ी चौड़ी हथेलियों को पहली बार सुरंगमा उतनी निकटता से देख रही थी। न चाहने पर भी उसकी कनखियां बार-बार पुत्री के साथ बैठे उसके आकर्षक पिता की ओर उठ जातीं। कैसी मूर्खता कर बैठी थी वह। क्यों आ गई थी यहां? विनीताजी लौटने पर निश्चय ही उसकी इस यात्रा से अप्रसन्न होंगी।

किन्तु नैनीताल पहुंचने पर सुरंगमा अपनी आमोद प्रिया शिष्या के साथ इधर-उधर घूमती, बोटिंग करती अपनी सारी चिन्ता भूल गई थी। दिन भर दोनों कभी घोड़े भगातीं न जाने किन-किन पहाड़ों में भटकती रहतीं। कभी ज़िद कर मिनी उसे चाट की दुकान पर खड़ा कर देती, कभी लामाओं की दुकान से एक-साथ सात-आठ रंग-बिरंगी शाल खरीदकर बटोर लाती। रात को कभी-कभी सुरंगमा को उसका अन्तःकरण फटकारने लगता, मां को मरे साल-भर भी पूरा नहीं हुआ था और वह ऐसे आमोद प्रमोद में डूब गई थी। उसपर मन्त्रीजी के साथ ऐसे इतनी दूर चला आना क्या ठीक हुआ था? विनीताजी के शंकालु स्वभाव का परिचय, वह एक नहीं अनेक बार पा चुकी थी। जब भी वह आती, वह जान-बूझकर ही, अपनी रंग उड़ी अवहेलित साड़ियों को पहन ट्यूशन करने जाती पर फिर भी वह उसे जिस सन्दिग्ध दृष्टि से घूरती, उससे लगता वह अपनी सयानी दृष्टि से उसके शरीर का एक-एक वस्त्र उतार-उतारकर सूंघ रही है कि कहीं उनमें दिनकर का स्पर्श तो रचा-बसा नहीं है। नैनीताल-यात्रा के ठीक एक दिन

"हम पहाड़ियों का विदेश तब इसी सीमा से आरम्भ हो जाता था।" देश-विदेश की प्रचुर यात्राओं का गर्व फिर दिनकर के स्वर को अहदीप्त कर गया था, "ठीक ही तो था तब हम पहाड़ियों के लिए हलद्वानी ही था बम्बई—मैं अठारह वर्ष का था, तब कहीं पहली बार मोटर में बैठा मोटर चली तो कलेजा भय से थरथर कांपने लगा था। उसपर जितनी बार ड्राइवर हॉर्न बजाता मैं चौंककर रुआंसा हो जाता था।"

'श्श डैडी" मिनी ने पिता का हाथ धरकर दबा दिया। दिनकर की ड्राइवर की ही उपस्थिति में उसके अतीत का यह गौरव-गान मिनी को अच्छा नहीं लग रहा था, किन्तु पुत्री की सुन्दरी ट्यूटर का सान्निध्य दिनकर को निश्चय ही पुलकित कर मुखर बना गया था। कभी वह गुनगुनाता कभी टापी सीधी करता और कभी झण्डा लगी कार को देख जमा हो गई भीड़ की उन्मादभरी हर्षध्वनि का प्रत्युत्तर देने दोनों हाथ हिला-हिलाकर खिड़की से बाहर निकाल देता। उन चौड़ी चौड़ी हथेलियों को पहली बार सुरंगमा उतनी निकटता से देख रही थी। न चाहने पर भी उसकी कनखियां बार-बार पुत्री के साथ बैठे उसके आकर्षक पिता की ओर उठ जातीं। कैसी मूर्खता कर बैठी थी वह। क्यों आ गई थी यहां? विनीताजी लौटने पर निश्चय ही उसकी इस यात्रा से अप्रसन्न होंगी।

किंतु नैनीताल पहुंचने पर सुरंगमा अपनी आमोद प्रिया शिष्या के साथ इधर-उधर घूमती, बोटिंग करती अपनी सारी चिन्ता भूल गई थी। दिन भर दोनों कभी घोड़े भगातीं न जाने किन-किन पहाड़ों में भटकती रहतीं। कभी ज़िद कर मिनी उसे चाट की दुकान पर खड़ा कर देती, कभी लामाओं की दुकान से एक-साथ सात-आठ रंग-बिरंगी शाल खरीदकर बटोर लाती। रात को कभी-कभी सुरंगमा को उसका अन्तःकरण फटकारने लगता, मां को मरे साल-भर भी पूरा नहीं हुआ था और वह ऐसे आमोद प्रमोद में डूब गई थी। उसपर मन्त्रीजी के साथ ऐसे इतनी दूर चला आना क्या ठीक हुआ था? विनीताजी के शकालु स्वभाव का परिचय, वह एक नहीं अनेक बार पा चुकी थी। जब भी वह आती, वह जान-बूझकर ही, अपनी रंग उड़ी अवहेलित साड़ियों को पहन ट्यूशन करने जाती पर फिर भी वह उसे जिस सन्दिग्ध दृष्टि से घूरतीं, उससे लगता वह अपनी सधानी दृष्टि से उसके शरीर का एक-एक वस्त्र उतार-उतारकर सूंघ रही हैं कि कहीं उनमें दिनकर का स्पर्श तो रचा-बसा नहीं है। नैनीताल-यात्रा के ठीक एक दिन

सिफारिशें सुन-सुनकर मेरे कान पक गए हैं। सोचा, तुम लोगों के साथ एकान्त पिकनिक का आनन्द लूंगा एक बार लखनऊ पहुंचा तो फिर उसी भट्ठी में झोंक दिया जाऊंगा। मैं कहां जा रहा हूं, यह मेरे पी० ए० को भी कानोंकान पता नहीं है। एक चिट लिखकर छोड़े जा रहा हूं कि किसी मन्दिर के दर्शन को जा रहा हूं, इसीसे ड्राइवर को भी नहीं ले जा रहा हूं बस चटपट तैयार हो लो तो जीप में चल दें।"

पिता की उस रहस्यमयी योजना में मिनी को बड़ा आनन्द आ रहा था, पहले सुरंगमा ने घर ही पर रहने की इच्छा व्यक्त की थी पर मिनी भड़क गई थी—'बी ए स्पोर्ट आप नहीं गईं तो मैं अकेली क्या करूंगी—और फिर मन्दिर जा रहे हैं "

सुरंगमा के धर्मभीरु चित्त को अपनी इसी अन्तिम दलील से विजित कर मिनी उसे खींच ले गई थी। अपनी मूढ़ योजना में डूबा दिनकर स्टियरिंग थामते ही पूर्ववत् गम्भीर हो गया था। उसकी मजबूत मोटी अंगुलियों की पकड़ के बीच अनामिका की अंगूठी का बड़ा-सा हीरा सहस्र जुगनुओं-सा चमक रहा था। शायद जानबूझकर ही, उसने टोपी उतारकर गोदी में रख ली थी और हवा में झूमते उसके घुंघराले केश पूरे ललाट पर बार-बार फैलते जा रहे थे। एक हाथ से उन्हें हटाता वह कभी अचानक गुनगुनाने लगता और उसी गुनगुनाहट की धुन में गाड़ी हवा के वेग से भगा देता।

'डैडी, जानते हैं हमारे स्कूल की लड़कियां क्या कहती हैं? पिछली बार जब आप हमारे एनुअल कन्सर्ट में चीफ गेस्ट बनकर आए थे तो कहने लगी—योर डैडी लुक्स सो यंग। ही इज द हैंडसमेस्ट मिनिस्टर।'"

वाह, तब तो तेरे स्कूल में एक बार और आना पड़ेगा मिनी," दिनकर ने जोर से हंसकर पुत्री की ओर गर्दन झटकी उस आकर्षक झटके में उसकी किसी आनन्दी तरुण की सी उजली हंसी देख सुरंगमा को लगा, वह एक नये ही व्यक्ति को देख रही है। इधर जब से वह नैनीताल आई थी, कितनी ही बार इस रहस्यमय व्यक्ति की पल-पल बदलती मुखछवि उसके कलेजे में कुछ खटका-सा दे रही थी। क्यों होता था ऐसा? किसीका पति, किसीका पिता, वह अपरिचित मन्त्री क्यों बार-बार अपनी एक ही चावनी से उसकी समस्त चेतना हर ले रहा था।

सुरंगमा, तू मूर्ख है मूर्ख है!' उसका विवेकशील अन्तःकरण उसे चाबुक की

सिफारिशें सुन-सुनकर मेरे कान पक गए हैं। सोचा, तुम लोगो के साथ एकान्त पिकनिक का आनन्द लूगा एक बार लखनऊ पहुचा तो फिर उसी भट्ठी म झोक दिया जाऊगा। मैं कहा जा रहा हू, यह मेरे पी० ए० को भी कानोकान पता नही है। एक चिट लिखकर छोडे जा रहा हू कि किसी मन्दिर के दशन को जा रहा हू, इसीसे ड्राइवर को भी नहीं ले जा रहा हू बस चटपट तैयार हो लो तो जीप मे चल दें।"

पिता की उस रहस्यमयी योजना मे मिनी को बडा आनन्द आ रहा था, पहले सुरगमा ने घर ही पर रहने की इच्छा व्यक्त की थी पर मिनी भडक गई थी—'बी ए स्पोट आप नही गईं तो मैं अकेली क्या करूगी—और फिर मन्दिर जा रहे हैं "

सुरगमा के धमभीरु चित्त को अपनी इसी अन्तिम दलील से विजित कर मिनी उसे खींच ले गई थी। अपनी मूढ योजना मे डूबा दिनकर स्टियरिंग थामते ही पूववत् गम्भीर हो गया था। उसकी मजबूत मोटी अगुलियो की पकड के बीच अनामिका की अगूठी का बडा-सा हीरा सहस्र जुगनुओं-सा चमक रहा था। शायद जानबूझकर ही, उसने टोपी उतारकर गोदी मे रख ली थी और हवा मे झूमते उसके घुघराले केश पूरे ललाट पर बार-बार फैलते जा रहे थे। एक हाथ से उन्हे हटाता वह कभी अचानक गुनगुनाने लगता और उसी गुनगुनाहट की धुन मे गाडी हवा के वेग से भगा देता।

'डैडी, जानते हैं हमारे स्कूल की लडकिया क्या कहती हैं? पिछली बार जब आप हमारे एनुअल कन्सर्ट मे चीफ गेस्ट बनकर आए थे तो कहने लगी—योर डैडी लुक्स सो यग। ही इज द हैंडसमेस्ट मिनिस्टर।' "

वाह, तब तो तेरे स्कूल मे एक बार और आना पडेगा मिनी," दिनकर ने जोर से हसकर पुत्री की ओर गदन झटकी उस आकषक झटके म उसकी किसी आनन्दी तरुण की सी उजली हसी देख सुरगमा को लगा, वह एक नये ही व्यक्ति को देख रही है। इधर जब से वह नैनीताल आई थी, कितनी ही बार इस रहस्यमय व्यक्ति की पल-पल बदलती मुखछवि उसके कलेजे मे कुछ अटका-सा दे रही थी। क्यों होता था ऐसा? किसीका पति, किसीका पिता, वह अपरिचित मन्त्री क्यो बार-बार अपनी एक ही चावनी से उसकी समस्त चेतना हर ले रहा था।

सुरगमा, तू मूख है मूख है।' उसका विवकशील अन्त करण उसे चाबुक की

तब क्या कोई आपकी तरह लोटा लिए खड़ा रहता था ?" उतने निकट से उस प्रशस्त हस्तसम्पुट म पड रही जलधार निरन्तर काप रही थी। एक-दो छींटे सुरगमा को भी भिगो गए।

'लाइए अब आप दोनों भी हाथ मुह धो लीजिए, मैं पानी देता हू—इट इज सो रिफ्रेशिंग।"

वह सुरगमा के हाथ से लोटा छीन किसी कौतुकप्रिय बालक के उत्साह से पानी देने चुक गया।

'नहीं-नहीं, आप रहने दें हम धो लेंगे" सुरगमा नम्र स्वर में आपत्ति करती लोटा लेने लगी और उसी प्रयास म ढेर सारा पानी छलक उसकी साडी का भिगो गया। मिनी पहली बार पिता को एक सवथा नवीन भूमिका म अवतरित होने देख ज़ोर ज़ोर से हसने लगी, 'हाय, कोई प्रेस-फोटोग्राफर होता तो मजा आ जाता डैडी! बिना टोपी के शायद आपका वह पहला चित्र होता और फिर हाथ म लोटा लिए आप एकदम देहाती लग रहे हैं। ममी भी देखती, तो शायद आपको नहीं पहचान पाती।"

आनन्द के उन अमूल्य क्षणो मे मम्मी का नामोच्चार सहसा दिनकर को गम्भीर बना गया। सुरगमा को लोटा थमा वह फिर गम्भीर मुह बना मन्दिर के गर्भद्वार से सिर झुकाए भीतर चला गया था। वे दोनों जब बडी देर से हाथ-मुह धोकर भीतर गई, तब अधकार मे कुछ दिखा नहीं। फिर सकीर्ण देवालय के कोने म जल रहे घृत दीप के धुधले प्रकाश मे नतमस्तक आख मूद अडिग मुद्रा म बैठा दिनकर दिख गया, कैसी सरल मूर्ति [illegible] का! सहमती मिनी सरकती ध्यान मग्न पिता से सटकर बैठ गई और हाथ पकडकर उसने सुरगमा को अपने पास खींच लिया। दिनकर पूववत अचल मुद्रा मे बैठा रहा, क्षण भर पूव चेहरे पर पड़ी शीतल जलधार ने उसकी श्यामल कान्ति को और भी सुचिक्कन बना दिया था। खादी के कुर्ते के बटनो से चमकती नग्न नामण छाती को देख सुरगमा का हृदय बार-बार उसी भूख धडकने म [illegible] लगा, जिसको वह विवेक के क्षणों म भी कोई कैफियत नहीं ढूढ पाती थी। सहम कर उसने स्वय आखें बन्द कर ली। उस उग्र देवता के तेज से ही [illegible] निरा [illegible] देवालय म ऐसी अद्भुत स्निग्ध शान्ति थी। सहसा, ध्यानमग्न दिनकर की उन

तब क्या कोई आपकी तरह लोटा लिए खड़ा रहता था ?" उतने निकट से उस प्रशस्त हस्तसम्पुट में पड़ रही जलधार निरन्तर काँप रही थी। एक-दो छींटे सुरंगमा को भी भिगो गए।

'लाइए अब आप दोनों भी हाथ मुँह धो लीजिए, मैं पानी देता हूँ—इट इज सो रिफ्रेशिंग।"

वह सुरंगमा के हाथ से लोटा छीन किसी कौतुकप्रिय बालक के उत्साह से पानी देने झुक गया।

'नहीं-नहीं, आप रहने दें, हम धो लेंगी" सुरंगमा नम्र स्वर में आपत्ति करती लोटा लेने लगी और उसी प्रयास में ढेर सारा पानी छलक उसकी साड़ी को भिगो गया। मिनी पहली बार पिता को एक सर्वथा नवीन भूमिका में अवतरित होते देख ज़ोर ज़ोर से हँसने लगी, 'हाय, कोई प्रेस-फोटोग्राफर होता तो मजा आ जाता डैडी! बिना टोपी के शायद आपका यह पहला चित्र होता और फिर हाथ में लोटा लिए आप एकदम देहाती लग रहे हैं। मम्मी भी देखती, तो शायद आपको नहीं पहचान पाती।"

आनन्द के उन अमूल्य क्षणों में मम्मी का नामोच्चार सहसा दिनकर को गम्भीर बना गया। सुरंगमा को लोटा थमा वह फिर गम्भीर मुँह बना मन्दिर के गर्भद्वार से सिर झुकाए भीतर चला गया था। वे दोनों जब बड़ी मुश्किल से हाथ-मुँह धोकर भीतर गई, तब अन्धकार में कुछ दिखा नहीं। फिर संकीर्ण देवालय के कोने में जल रहे घृत दीप के धुँधले प्रकाश में नतमस्तक आँखें मूँदे अडिग मुद्रा में बैठा दिनकर दिख गया, कैसी सरल मूर्ति [illegible] का! सहसा मिनी सरकती ध्यान मग्न पिता से सटकर बैठ गई और हाथ पकड़कर उसने सुरंगमा को अपने पास खींच लिया। दिनकर पूर्ववत अचल मुद्रा में बैठा रहा, क्षण भर पूर्व चेहरे पर पड़ी शीतल जलधार ने उसकी श्यामल कान्ति को और भी सुचिक्कन बना दिया था। खादी के कुर्ते के बटनों से चमकती भग्न नामण छाती को देख सुरंगमा का हृदय बार-बार उसी भूख धड़कने [illegible] लगा, जिसको वह विवेक के क्षणों में भी कोई कैफियत नहीं ढूँढ़ पाती थी। सहमकर उसने स्वयं आँखें बन्द कर ली। उस उग्र देवता के तेज से हो या दिनकर निरा [illegible] देवालय में ऐसी अद्भुत स्निग्ध शान्ति थी। सहसा, ध्यानमग्न दिनकर की उन

हू, मैं डाकू हू, किन्तु ऐसा डाकू हू मिनी, जो अमीरों का लहू चूस गरीबो को जीवन देता है। मुझे गर्व है कि मैंने अपनी इस टोपी पर आज तक कीचड का एक छींटा भी नहीं लगने दिया है।"

"हाय डैडी, आपने तो आज तक हमे कभी नहीं बताया !" मिसी ‿ पिता से एकदम सटकर बैठ गई थी।

'मैं अपनी अर्जी इस दरबार मे लटकाकर लखनऊ पहुचा भी नही था कि पता लगा, मेरे जिस मिथ्यापवादी शत्रु ने मुझपर अकारण ही यह लाछन लगाया था, उसकी चलती ट्रेन स उतरने की चेष्टा मे ही ग्वालदेव न उसे उचित दण्ड दे दिया था। मैं कई रातों तक सो नहीं पाया। ससद का यह सबसे छोटा सदस्य, जवान पत्नी का पति और एक दुधमुहे बालक का पिता था। ऐसे कठोर दण्ड की तो मैंने याचना नही की थी, किन्तु इस देवता के दरबार का यही कायदा है—इसे पहाडी मे 'घात' कहते हैं मिनी, यहा की घात कभी व्यर्थ नही जाती यह शायद मैं भूल गया था।"

"ओह माई गाड ! मैं अपने पास होने की अर्जी भी यहा टाग सकती हू डैडी, प्लीज " मिनी सचमुच ही बटुवा खोलकर कागज-कलम निकालने लगी।

दिनकर जोर से हसा, तब ही पुजारी के लड़के ने नन्ही घण्टियो की माला एक बार फिर हिला दी। उन टुनकती घण्टियों से घुले-मिल उस देवालय के गूढ मण्डप मे गूज रहे अट्टहास की ध्वनि सुरगमा को एक बार फिर विभ्रान्त कर गई। दिनकर की मुग्ध दृष्टि मे करुण याचना की भाषा उसने स्पष्ट पढ ली थी, तब क्या कुछ क्षण पूर्व गम्भीर ध्यानमग्न वह आकर्षक मन्त्री अपने प्रिय औघडदानी देवता से उसे ही माग रहा था ?

"ऐसी छोटी-मोटी चीजें यहा नही मागी जाती पगली !" इस बार उसने जिस अयपूर्ण दृष्टि से सुरगमा को देखा, उसके बाद उसके समझने के लिए कुछ बाकी नही रहा। पुरुष की इस प्रशसापूर्ण दृष्टि की भाषा मूढ से मूढ अपढ नारी भी ठीक ही पढ़ लेती है "यह विधाता का सुप्रीम कोर्ट है यहा केवल मर्सी पीटिशन ही दाखिल की जाती है समझी ? न्याय केवल न्याय—न्याय !'

सुरगमा चौंककर सतर हो गई। क्या विधाता ने उसके जन्म के साथ ही उसके साथ कठिन अन्याय नहीं किया था ? किन्तु उस अन्याय के विरुद्ध वह किससे नालिश कर सकती थी, किसको बकवा सकती थी ? पिता को ? नाना का या

हू, मैं डाकू हू, किन्तु ऐसा डाकू हू मिनी, जो अमीरों का लहू चूस गरीबों को जीवन देता है। मुझे गर्व है कि मैंने अपनी इस टोपी पर आज तक कीचड का एक छींटा भी नहीं लगने दिया है।"

"हाय डैडी, आपने तो आज तक हमे कभी नहीं बताया।" मिसी .. पिता से एकदम सटकर बैठ गई थी।

'मैं अपनी अर्जी इस दरबार मे लटकाकर लखनऊ पहुचा भी नही था कि पता लगा, मेरे जिस मिथ्यापवादी शत्रु ने मुझपर अकारण ही यह लाछन लगाया था, उसकी चलती ट्रेन से उतरने की चेष्टा मे ही ग्वालदेव ने उसे उचित दण्ड दे दिया था। मैं कई रातों तक सो नहीं पाया। ससद का यह सबसे छोटा सदस्य, जवान पत्नी का पति और एक दुधमुहे बालक का पिता था। ऐसे कठोर दण्ड की तो मैंने याचना नही की थी, किन्तु इस देवता के दरबार का यही कायदा है—इसे पहाडी मे 'घात' कहते हैं मिनी, यहा की घात कभी व्यर्थ नही जाती यह शायद मैं भूल गया था।"

"ओह माई गाड! मैं अपने पास होने की अर्जी भी यहा टाग सकती हू डैडी, प्लीज " मिनी सचमुच ही बटुवा खोलकर कागज-कलम निकालने लगी।

दिनकर जोर से हसा, तब ही पुजारी के लडके ने नन्ही घण्टियो की माला एक बार फिर हिला दी। उन टुनकती घण्टियों से घुले-मिले उस देवालय के गूढ मण्डप मे गूज रहे अट्टहास की ध्वनि सुरगमा को एक बार फिर विभ्रान्त कर गई। दिनकर की मुग्ध दृष्टि मे करुण याचना की भाषा उसने स्पष्ट पढ ली थी, तब क्या कुछ क्षण पूर्व गम्भीर ध्यानमग्न वह आकर्षक मन्त्री अपने प्रिय औघडदानी देवता से उसे ही माग रहा था?

"ऐसी छोटी-मोटी चीजें यहा नही मागी जाती पगली!" इस बार उसने जिस जयपूर्ण दृष्टि से सुरगमा को देखा, उसके बाद उसके समझने के लिए कुछ बाकी नही रहा। पुरुष की इस प्रशसापूर्ण दृष्टि की भाषा मूर्ख से मूर्ख अनपढ नारी भी ठीक ही पढ लेती है "यह विधाता का सुप्रीम कोर्ट है यहा केवल मर्सी पीटिशन ही दाखिल की जाती है समझी? न्याय केवल न्याय—न्याय!'

सुरगमा चौंककर सतर हो गई। क्या विधाता ने उसके जन्म के साथ ही उसके साथ कठिन अन्याय नहीं किया था? किन्तु उस अन्याय के विरुद्ध वह किससे नालिश कर सकती थी, किसको बदवा सकती थी? पिता को? नाना का या

ऐसे लगाया जाता है, अन्धे बन जाओगे छोकरो !"

धुएँ से काली केतली तब भी इसी चूल्हे पर चढ़ी ऐसी ही साय साय करती उन्ह चाय की गर्म घूंट के लिए ऐसे ही अधैर्य से बावला कर देती थी। पीले पीले आलुओं से भरी कड़ाई में धप्प से कलछुल मार कभी कभी भट्टजी ग्राहकों को अपने पर तक भगा देते "अरे जा तो रे दिनुवा क्यारी से ज़रा हरा धनिया तो उपाड ला जब तक गुटकों में धनिया नहीं तो क्या गुटके !" फिर तिमिल के चौड़े पत्ते में दो पैसे के ढेर-से आलू थमा वह नित्य एक से ही शब्दों में अपनी पाककला का सरस परिचय देने लगते, "लला ऐसे आलू अल्मोड़े का चिरंजी भी नहीं बना सकता। बड़ी तारीफ सुनी थी उसकी, एक दिन जाकर खा आया राम राम मलेछ ससुरा लहसुन प्याज पीसकर डालता है अब भला तुम ही बताओ अच्छे क्यों नहीं लगेंगे भला! अरे प्याज लहसुन में तो गोबर भी स्वादिष्ट लगता है"

"क्यों गुरु क्या खाया है तुमने ?" एक दिन अल्हड़ दुस्साहसी दिनकर ने पूछ दिया और इन्हीं उग्रतेजी भट्टजी ने उसे एक झापड़ कस इसी बेंच पर औंधा कर दिया था। ग्राम की रामलीला में परशुराम बनते थे भट्टजी। पनी लगा असली फरसा घुमाते धनुष-यज्ञ में आते और एक-एक चौपाई के साथ हृदय पर सौ-सौ बिजलियां गिरा देते

अति रिस बोले वचन कठोरा
कहु जड जनक धनुष कै तोरा

उनकी असली मूछें सौ फी-सदी असली क्रोध से थरथर कांपने लगतीं तो सहमी सरल ग्राम्याएं घूंघट खींच लेतीं। लक्ष्मण बनता था दिनकर क्रोधी भट्ट जी को चिढ़ाने में वह कभी कभी रामायण की चौपाइयों का भी अतिक्रमण कर जाता

इहां कुम्हड बतिया कोउ नाहीं
जे तरजनी देखि मर जाहीं

गाकर उसने एक दिन अपनी तर्जनी सचमुच ही उनकी आंखों में कोंच दूसरे हाथ से उनकी धोती का कांचा सरका दिया था। टूटी दीवार-सी ही ढीली धोती भरभराकर स्टेज पर गिर पड़ी अदभुत सज्जा। क्रुद्ध-उन्मत्त दृष्टि और लाल तमतमाया चेहरा होने पर भी परशुराम की स्थिति सहसा हास्यास्पद हो उठी

ऐसे लगाया जाता है, अन्धे बन जाओगे छोकरो !"

धुए से काली केतली तब भी इसी चूल्हे पर चढी एसी ही साय साय करती उह चाय की गम घूट के लिए ऐसे ही अधैय से बावला कर देती थी। पील पीले आलुओ स ारी कढाई म पप्प से कलछुल मार कभी कभी भट्टजी ग्राह्को को अपने पर तक भगा दत 'अरे जा तो रे दिनुवा क्यारी से जरा हरा धनिया तो उपाड ला जब तक गुटको मे धनिया नही ता क्या गुटके !" फिर तिमिल के चौडे पन्ने म दो पसे के ढेर-से आलू थमा वह नित्य एक से ही शब्दो म अपनी पाककला का सरस परिचय देने लगते, "लला ऐसे आलू अलमोडे का चिरा्ी भी नही बना सकता ! बडी तारीफ सुनी थी उसकी, एक दिन जाकर खा आया राम राम मलेछ ससुरा लहसुन प्याज पीसकर डालता है अब भला तुम ही बताओ अच्छे क्यों नही लगेग भला ! अरे प्याज लहसुन म तो गोबर भी स्व दिष्ट लगता है "

"क्यो गुरु क्या खाया है तुमने ?" एक दिन अल्हड दुस्साहसी दिनकर ने ऐसा पूछ दिया और इन्ही उग्रतेजी भट्टजी ने उसे एक झापड कम इसी बेंच पर औंधा कर दिया था। ग्राम की रामलीला मे परशुराम बनत थे भट्टजी। पनी लगा असली फरसा घुमाते धनुष-यज्ञ मे आते और एक-एक चौपाई के साथ हृदय पर सौ-सौ बिजलिया गिरा दते

अति रिस बाले वचन कठोरा
कहु जड जनक धनुष कै तोरा

उनकी असली मूछे सौ फी-सदा अस्ली क्रोध से थरथर कापने लगती ता सहमी सरल ग्राम्याए घूघट खीच लेती। लक्ष्मण बनता था दिनकर क्रोधी भट्ट जी को चिढाने मे वह कभी कभी रामायण की चौपाइया का भी अतिक्रमण कर जाता

इहा कुम्हड बतिया कोउ नाही
जे तरजनी देखि मर जाही

गाकर उसने एक दिन अपनी तजनी सचमुच ही उनकी आखा म काच दूसरे हाथ से उनकी धोती का काचा सरका दिया था। टूटी दीवार-सी ही ढीली धाती भरभराकर स्टेज पर गिर पडी अदभुत सज्जा। क्रुद्ध-उन्मत्त दष्टि और लाल तमतमाया चेहरा होने पर भी परशुराम की स्थिति सहसा हास्याम्पद हो उठी

देसी को लीजिए—पूरी बिरादरी को गले से लगाने को तैयार ! पर हम साले पहाडी अपने ईमान को ही गले से लगाए दम तोडते हैं—हां हुजूर, कितने पत्ते बनाऊ ''

अभागे भट्टजी, कही उसके अतीत के दुबल पक्ष को क. र उजागर न कर दें, यही सोच उस कुशल राजनीतिज्ञ ने बडे कौशल से प्रसग बदल दिया, ''वाह-वाह, क्या बढिया खुशबू आ रही है गुरु, क्या-क्या मसाले पडे हैं इनमे ?''

और फिर भट्टजी वर्षों पूव की वही आलू-वन्दना से उनका मनोरजन करने लगे। तो कक्का अभी जि दा थे, वैसे काखी का हृदयहीन व्यवहार वह अभी भूला नहीं था। एक बार जब गाव मे नरभक्षी बाघ का भयानक आतक था, आधी रात को काखी ने उसे मार-मारकर कक्का के उदरशूल की दवा लेने अल्मोडा भगा दिया था। उस अधेरे बीहड़ माग मे ठीक सैनेटोरियम के पास एक भयावह गुलक्ष खडहर पडता था, उस भुतहे खडहर की न जाने कितनी कहानिया वह सुन चुका था। कभी बम्बई का एक यक्ष्मा रोगी जवान सेठ वहा रहता था। पच्चीस वष का वह सेठ उसी अरण्यस्थित बगले मे मरने से पूव चीख-चीखकर रोया था ''मैं मरना नही चाहता—मैं नही जाऊगा—मैं नही जाऊगा।'' गाव वाले कहते थे, अभी भी वह आधी रात के सन्नाटे को चीरता घूम-घूमकर चीखता है—'मैं नही जाऊगा।' फालसीमा गाव के दूध वालो की बाल्टी छीन छीनकर वह सेरों दूध पी जाता था और उसीके गाव की पधानबहू से उसने एक बार हाथ खींचकर कहा था, ''चल बाई, मेरे साथ, तुझे सेठानी बनाकर बम्बई ले जाऊगा कही उसका भी हाथ खीच लिया तब ?

'अरे जा जा,'' काखी ने कहा था, ''तुझ काले-कलूटे को भला कोई भूत-प्रेत हाथ पकडकर खीचेंगे, वह तो सुन्दर देखकर ही किसीका हाथ पकडते हैं।''

पर काखी के आश्वासन के बावजूद वह अन्त तक उस बीहड यात्रा के लिए साहस नही सजो पाया था। हाथ मे खाली शीशी लेकर घर से निकल तो आया, पर जहा काखी भीतर गई, वह अपने घर के पिछवाडे की कोठरी मे जाकर सो गया था। जब आखें खुली, तब देवदार के झुरमुट मे सिडौल पक्षी चहक रहे थे। हडबडाकर वह उठा और स्वय ही वैद्य बन नाले के पानी मे कुछ महीन कीचड मिला, उसने शीशी हिलाकर उसे ओषधि का भ्रामक रूप दे दिया। उस दिन के निलज्जा काखी के शब्द आज भी कभी-कभी कलेजे मे धसे तीखे तीर की ही भाति

वेशी को लीजिए—पूरी बिरादरी को गले से लगाने को तैयार ! पर हम साले पहाड़ी अपने ईमान को ही गले से लगाए दम तोड़ते हैं—हाँ हुजूर, कितने पत्ते बनाऊँ ?"

अभागे भट्टजी, कहीं उसके अतीत के दुबल पक्ष को बार-बार उजागर न कर दें, यही सोच उस कुशल राजनीतिज्ञ ने बड़े कौशल से प्रसंग बदल दिया, "वाह-वाह, क्या बढ़िया खुशबू आ रही है गुरु, क्या-क्या मसाले पड़े हैं इनमे ?"

और फिर भट्टजी वर्षों पूर्व की वही आलू-वन्दना से उनका मनोरंजन करने लगे। तो कक्का अभी जिन्दा थे, वैसे काखी का हृदयहीन व्यवहार वह अभी भूला नहीं था। एक बार जब गाव मे नरभक्षी बाघ का भयानक आतंक था, आधी रात को काखी ने उसे मार-मारकर कक्का के उदरशूल की दवा लेने अल्मोड़ा भगा दिया था। उस अंधेरे बीहड़ मार्ग मे ठीक सैनेटोरियम के पास एक भयावह खंडहर पड़ता था, उस भुतहे खंडहर की न जाने कितनी कहानियां वह सुन चुका था। कभी बम्बई का एक यक्ष्मा रोगी जवान सेठ वहा रहता था। पच्चीस वर्ष का वह सेठ उसी अरण्यस्थित बगले मे मरने से पूर्व चीख-चीखकर रोया था "मैं मरना नही चाहता—मैं नही जाऊगा—मैं नही जाऊगा।" गाव वाले कहते थे, अभी भी वह आधी रात के सन्नाटे को चीरता घूम-घूमकर चीखता है—'मैं नही जाऊगा।' फालसीमा गाव के दूध वालो की बाल्टी छीन छीनकर वह सेरों दूध पी जाता था और उसीके गाव की पधानबहू से उसने एक बार हाथ खींचकर कहा था, "चल बाई, मेरे साथ, तुझे सेठानी बनाकर बम्बई ले जाऊगा कहीं उसका भी हाथ खींच लिया तब ?

'अरे जा जा," काखी ने कहा था, "तुझ काले-कलूटे को भला कोई भूत-प्रेत हाथ पकड़कर खींचेंगे, वह तो सुन्दर देखकर ही किसीका हाथ पकड़ते हैं।"

पर काखी के आश्वासन के बावजूद वह अन्त तक उस बीहड़ यात्रा के लिए साहस नही सजो पाया था। हाथ मे खाली शीशी लेकर घर से निकल तो आया, पर जहा काखी भीतर गई, वह अपने घर के पिछवाड़े की कोठरी मे जाकर सो गया था। जब आखें खुली, तब देवदार के झुरमुट मे सिडौल पक्षी चहक रहे थे। हड़बड़ाकर वह उठा और स्वयं ही वैद्य बन नाले के पानी मे कुछ महीन कीचड़ मिला, उसने शीशी हिलाकर उसे ओषधि का भ्रामक रूप दे दिया। उस दिन के *निर्लज्जा काखी के शब्द आज भी कभी-कभी कलेजे मे धंसे तीखे तीर की ही भांति*

"बाज्यू कसा अनाथ है हमसे पूछो" नये छिदे कानों की बालियों से भी अधिक पीडादायक उस दिन काखी का कर्कश स्वर उसके मर्मस्थल को बींध गया था। 'पेट में बत्तीसी है छोकरे की स्कूल की कापी किताब भी बेचकर अल्मोडा के चिरजी होटल में आलू खा आया है। अब उस दिन नया चाय का बण्डल मंगाया, ढूंढा तो कहां नहीं। पता लगा कि भट्टजी की दुकान में बेच आया। वह तो भला हो भट्टजी का जो चाय के बण्डल के साथ-साथ छोकरे के कान पकड सीधे घर पहुंच गए। मार खाकर और बेशरम हो गया है।'

वैसे बात काखी ने ठीक ही कही थी, काखी का चिढा चिढाकर मार खाने में भी उसे अब आनन्द आने लगा था। सन्तानवंचिता काखी का व्यवहार फिर दिन प्रतिदिन कठोर होता गया था। जिस वर्ष उसने प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल पास कर वजीफा प्राप्त किया उसी वर्ष काखी का स्वभाव वर्षों से ठूंठ खडे किसी सूखे वृक्ष की सहसा लहलहा उठी हरीतिमा से उसे चौंका गया। काखी अब उसे पान के पत्ते-सा फेरने लगी थी। नित्य भिगोए बादामों के साथ काली गाय की मोटी मलाई डला दूध, मक्खन चुपडी रोटी लेकर वह उसे बडे दुलार से खिलाती। कक्का से कह काखी ने उसे नया पट्टू का कोट और वैसी ही गर्म टोपी सिलवा दी और कलकत्ता अपने बहनोई को लिख उसके लिए एक हाथ की घडी भी मंगवा दी। इण्टर में पहुंचते ही उसे उस आकस्मिक स्नेहवन्या का रहस्य ज्ञात हो गया था।

"देख रे दिनुवा, मैंने तेरे विवाह की मगज' (मंगाई) पक्की कर दी है। इसी बैसाख में हम तेरे पैर बांध देंगे— मेरी बहन की लडकी परुली को तो तू जानता है। तेरे ही स्कूल में दर्जा तीन तक पढी है। फिर छोकरी की कुछ ऐसी लम्बी बाढ थी कि भिज्यू (जीजा) ने नाम कटवा दिया। मेरी ही बहन की लडकी मेरी बहू बने इससे अच्छा रिश्ता और क्या हो सकता है?"

दिनकर के तन बदन में आग लग गई थी। सत्रह ही वर्ष में उसकी मगजे बिना उससे पूछे वह पक्की करने वाली होती कौन है? और फिर टाउन स्कूल के उस भिन्डुवा (दरिद्र) हरदत्त मास्टर की पुत्री परु। छि-छि एकदम सांवली बकाल! जब देखो तब नाक सुडकती पिटट खेलती रहती थी।

'देखो काखी, मेरा ब्याह किया तो अच्छा नहीं होगा, कह दिया है मैंने।"

पर कक्का जब अपनी ऐतिहासिक घुंघरू लगी लाठी ठोकते गरजे तब

"वाज्यू कसा अनाथ है हमसे पूछो" नये छिदे कानो की बालियो से भी अधिक पीडादायक उस दिन काखी का कर्कश स्वर उसके ममस्थल को बीध गया था। 'पेट म बत्तीसी है छोकरे की स्कूल की कापी किताब भी बेचकर अल्मोडा के चिरजी होटल म आलू खा आया है। अब उस दिन नया चाय का बण्डल मगाया, टूटा तो कहा नहा। पता लगा कि भट्टजी की दुकान म बच आया। वह तो भला हो भट्टजी का जो चाय क बण्डल के साथ-साथ छाकरे के कान पकड सीधे घर पहुच गए। मार खाकर और बशरम हो गया है।'

वसे बात काखी न ठीक ही कही थी, काखी का चिढा चिढाकर मार खान म भी उसे अब आन द आने लगा था। सन्तानवचिता काखी का व्यवहार फिर दिन प्रतिदिन कठोर होता गया था। जिस वर्ष उसने प्रथम श्रेणी मे हाईस्कूल पास कर वजीफा प्राप्त किया उसी वर्ष काखी का स्वभाव वर्षों से ठूठ खडे किसी सूखे वृक्ष की सहसा लहलहा उठी हरीतिमा से उसे चौंका गया। काखी अब उसे पान के पत्ते-सा फेरने लगी थी। नित्य भिगोए बादामो के साथ काली गाय का मोटी मलाई डला दूध, मक्खन चुपडी रोटी लेकर वह उस वडे दुलार से खिलाती। कक्का से कह काखी ने उसे नया पटटू का कोट और वैसी ही गर्म टोपी सिलवा दी और कलकत्ता अपने बहनोई का लिख उसके लिए एक हाथ की घडी भी मगवा दी। इण्टर म पहुचते ही उस उस आकस्मिक स्नेहवन्या का रहस्य ज्ञात हो गया था।

"देख रे दिनुआ, मैंने तेरे विवाह की मगज' (मगाई) पक्की कर दी है। इसी वैसाख म हम तेरे पैर बाध देंगे— मेरी बहन की लडकी परुली को तो तू जानता है। तेरे ही स्कूल म दर्जा तीन तक पढी है। फिर छोकरी की कुछ ऐसी लम्बी बाढ थी कि भि ज्यू (जीजा) ने नाम कटवा दिया। मेरी ही बहन की लडकी मेरी बहू बन इससे अच्छा रिश्ता और क्या हो सकता है?"

दिनकर के तन बदन म आग लग गई थी। सत्रह ही वर्ष म उसकी मगजे बिना उससे पूछे वह पक्की करने वाली होती कौन है? और फिर टाउन स्कूल के उस भिन्डुवा (दरिद्र) हरदत्त मास्टर की पुत्री परु। छि-छि एकदम सावली विकाल! जब देखा तब नाक सुडकती गिटट खेलती रहती थी।

'देखो काखी, मेरा ब्याह किया तो अच्छा नहीं होगा, कह दिया है मैंने।"

पर कक्का जब अपनी ऐतिहासिक घुघरू लगी लाठी ठोकते गरजे तब

एक तरह से भट्टजी ने ठीक ही कहा था—जिसने गाव से स्वय ही रिश्ता तोड लिया था, उस गाव की सरहद से वह सचमुच ही मुह छिपाता फिरता था। आज हृदय की न जाने कौन-सी अशान्ति, कैसा उद्वेग उसे अपने विस्मृत इष्ट ग्वालदेव की अदालत मे खीच लाया था। भट्टजी या और कोई अब उसे पहचान नहीं सकता था, एक तो वह जादुई खद्दर की टोपी उसके पूरे चेहरे को ही बदल डालती थी, आज वह बिना टोपी के था, फिर मखमली जीन का पहाडी दरजी का सिला कोट और गबरून की ऐसी ढीली पायचे वाली पैंट जिसम हाथी भी बडी आसानी से अपना पैर डाल ले। पहनने वाले उस लजीले दुबले-पतले किशोर का इस भरी भरी देह और चिकने चुपडे चेहरे वाले महिमामय मन्त्री से कोई भी साम्य नही था। वह अपनी उस चतुरा काखी के सम्मुख भी इसी क्षण जाकर खडा हो जाता, जो अपनी माताहारी की-सी सधानी दृष्टि से गभस्थ शिशु की स्थिति भापकर बता देती थी कि लडका है या लडकी, तो शायद वह भी उसे परिचय दिए बिना नही पहचान पाती। बचपन मे, वह जितना ही उद्दण्ड था कैशोय ने उसे उतना ही सौम्य बना दिया था। इण्टर मे पहुचते ही वह असहयोग आन्दोलन मे कूद जेल-यात्रा का सेहरा भी बाध आया था। उसका वह बेमेल विवाह न होता तो शायद वह प्राणो से प्रिय अपने ग्राम के मोह की बेडिया ऐसे नही तोडता। काखी के प्रतिशोध के साथ-साथ उसने अपने निर्दोष ग्राम से भी प्रतिशोध ले लिया। जिस पशु ने उसे ग्राम छोडने को बाध्य किया था, उसके प्रति कभी कभी उसका चित्त अकारण ही द्रवित हो उठता था। ब्राह्मणो के घर की बहू थी इसीसे अन्य किसी पुरुष से अचलग्रन्थि का प्रश्न ही नही उठ सकता था। उसके मास्टर पिता, उसे अपने साथ अल्मोडा उठा ले गए थे, वही उसे पढा-लिखा उन्होने किसी मिडिल स्कूल म अध्यापिका रखा दिया था। दिनकर के अपराधी चित्त के पश्चात्ताप न उसके विश्वासी गुप्तचर विभाग को सतक कर उसकी परित्यक्ता पत्नी का पता ही नही लगाया उसे असमय ही पदोन्नति दिलवा हेडमिस्ट्रेस भी बनवा दिया था। उसके इसी औदाय ने, फिर स्वय उसके राज-नीतिक जोवन के प्रशस्त स्वच्छ पद म काटे बिखेरकर धर दिए। वह किसी कॉलिज का शिलान्यास करने रानीखेत गया था, वही से न जाने कौन सा दुष्टग्रह

एक तरह से भट्टजी ने ठीक ही कहा था—जिसने गाव से स्वय ही रिश्ता तोड़ लिया था, उस गाव की सरहद से वह सचमुच ही मुह छिपाता फिरता था। आज हृदय की न जाने कौन-सी अशान्ति, कैसा उद्वेग उसे अपने विस्मृत इष्ट ग्वालदेव की अदालत मे खीच लाया था। भट्टजी या और कोई अब उसे पहचान नहीं सकता था, एक तो वह जादुई खद्दर की टोपी उसके पूरे चेहरे को ही बदल डालती थी, आज वह बिना टोपी के था, फिर मखमली जीन का पहाडी दरजी का सिला कोट और गवरुन की ऐसी ढीली पायचे वाली पैंट जिसम हाथी भी बडी आसानी से अपना पैर डाल ले। पहनने वाले उस लजीले दुबले-पतले किशोर का इस भरी भरी देह और चिकने चुपड़े चेहरे वाले महिमामय मन्त्री से कोई भी साम्य नही था। वह अपनी उस चतुरा काखी के सम्मुख भी इसी क्षण जाकर खड़ा हो जाता, जो अपनी माताहारी की-सी सधानी दृष्टि से गभस्थ शिशु की स्थिति भापकर बता देती थी कि लडका है या लड़की, तो शायद वह भी उसे परिचय दिए बिना नही पहचान पाती। बचपन मे, वह जितना ही उद्दण्ड था कैशोय ने उसे उतना ही सौम्य बना दिया था। इण्टर मे पहुचते ही वह असहयोग आन्दोलन मे कूद जेल-यात्रा का सेहरा भी बाध आया था। उसका वह बेमेल विवाह न होता तो शायद वह प्राणो से प्रिय अपने ग्राम के मोह की बेडिया ऐसे नही तोडता। काखी के प्रतिशोध के साथ-साथ उसने अपने निर्दोष ग्राम से भी प्रतिशोध ले लिया। जिस पर ने उसे ग्राम छोडने को बाध्य किया था, उसके प्रति कभी कभी उसका चित्त अकारण ही द्रवित हो उठता था। ब्राह्मणो के घर की बहू थी इसीसे अन्य किसी पुरुष से अचलग्रन्थि का प्रश्न ही नही उठ सकता था। उसके मास्टर पिता, उसे अपने साथ अल्मोडा उठा ले गए थे, वही उसे पढा-लिखा उन्होने किसी मिडिल स्कूल मे अध्यापिका रखा दिया था। दिनकर के अपराधी चित्त के पश्चात्ताप ने उसके विश्वासी गुप्तचर विभाग को सतक कर उसकी परित्यक्ता पत्नी का पता ही नही लगाया उसे असमय ही पदोन्नति दिलवा हेडमिस्ट्रेस भी बनवा दिया था। उसके इसी औदार्य ने, फिर स्वय उसके राजनीतिक जीवन के प्रशस्त स्वच्छ पद मे काटे बिखेरकर धर दिए। वह किसी कॉलेज का शिलान्यास करने रानीखेत गया था, वही से न जाने कौन सा दुष्टग्रह

कापने लगी। उसने फिर हारकर, दोनों हाथ जोड दिए उसकी करुण आखें अपने वर्षों के अनकहे उपालम्भो से छलछला उठीं। स्थिति हाथ से निकलती इससे पूर्व ही दिनकर ने अपने सिखे-पढे पी० ए० को बुलाकर कहा था, 'देखो दीक्षित, इन्हें जो भी कठिनाई हो, जहा तबादला चाहें, सब करवा दो।" और फिर वह ओठों ही ओठों मे फुसफुसाने लगा उस अद्भुत कोड की डिसिफरिंग केवल वही चतुर पी० ए० कर सकता था यह भी स्पष्ट कर दो कि जहा तक आर्थिक या विभागीय सहायता का प्रश्न है मैं इनकी पूरी मदद करने को तैयार हू, पर अगर इन्होंने अपने हक को लेकर मेरा पहुचा पकडने की कोशिश की, तो फिर तुम्हें पता है दीक्षित, तुम्हें क्या करना होगा' "

"यस सर!" किसी फौजी अफसर की भाति एडिया खटखटाता दीक्षित सतर खडा हो गया था। यही पर चूक गया था दिनकर-दण्ड-संहिता को उसने कुछ और स्पष्ट कर दिया होता तो शायद इतनी बडी दुर्घटना नहीं घटती। बेचारी परु के लिए उसने उतने कठोर दण्ड की व्यवस्था करने का आदेश नहीं दिया था। किन्तु दीक्षित दुखते दाढ को सीमेण्ट चादी से भरने में विश्वास नहीं करता था, उसे एक ही झटके मे उखाड रोगी को चिरशान्ति के लिए ही दाढ के दर्द से मुक्ति दिलाने में उसका विश्वास अधिक था। कैसी-कैसी पढी लिखी उर्वशियो के ब्लैकमेल कण्टको को एक ही झटके से उखाड उसने अपने अनेक गरिमामय प्रभुओं का पथ प्रशस्त किया था। फिर यह दो कौडी की मास्टरनी भला किस खेत की मूली थी! उसे समझाने से भी जब वह नहीं समझी तो पहले उसने एक ही धक्के में गव्यांग घाटी के एक ऐसे बीहड इलाके मे डाल दिया जहा खाने को मिलता था केवल सुखाया भेड का गोश्त और फाफर की कडवी रोटी!

पर वह जब फिर कठपुतली दल के उस निर्जीव पुतले की भाति बार बार मर कर भी फिर उठकर टीन पीटने लगी 'धाँधली-धाँधली और धोखा" तब उसने अपना ब्रह्मास्त्र छोडा था तीसरे ही दिन। स्कूल में उस पार्वती हैडमास्टरनी ने आकस्मिक मृत्यु की छुट्टी घोषित हुई थी जो जगली गुच्छी की सब्जी खा जाने से असमय ही अवकाश ग्रहण कर गई थी। दिनकर अब निश्चिन्त होकर, मूछों मे ताव दे अपना राजपाट सम्भाल सकता था, किन्तु ऐसा वह नहीं कर पाया। कभी-कभी, किसी गरिष्ठ राजसी सहभोज के पश्चात् वह तकिये पर सर रखते ही गहरी नींद में डूब जाता किन्तु आधी रात को उसके कांटों भरे ताज की चुभन

कापने लगी। उसने फिर हारकर, दोनों हाथ जोड दिए उसकी करुण आखें अपने वर्षों के अनकहे उपालम्भों से छलछला उठीं। स्थिति हाथ से निकलती इससे पूर्व ही दिनकर ने अपने सिखे-पढे पी० ए० को बुलाकर कहा था, 'देखो दीक्षित, इन्हें जो भी कठिनाई हो, जहा तबादला चाहें, मत करवा दो।" और फिर वह ओठों ही ओठों मे फुसफुसाने लगा उस अदभुत कोड की डिपरोडिंग केवल वही चतुर पी० ए० कर सकता था यह भी स्पष्ट कर दो कि जहा तक आर्थिक या विभागीय सहायता का प्रश्न है मैं इनकी पूरी मदद करने को तैयार हू, पर अगर इन्होंने अपने हक को लेकर मेरा पहुचा पकडने की कोशिश की, तो फिर तुम्हें पता है दीक्षित, तुम्हें क्या करना होगा' "

"यस सर!" किसी फौजी अफसर की भाति एडिया खटखटाता दीक्षित सतर खडा हो गया था। यहीं पर चूक गया था दिनकर-दण्ड-सहिता को उसने कुछ और स्पष्ट कर दिया होता तो शायद इतनी बडी दुर्घटना नहीं घटती। बेचारी परु के लिए उसने उतने कठोर दण्ड की व्याख्या करने का आदेश नहीं दिया था। किन्तु दीक्षित दुखते दाढ को सीमेण्ट चादी से भरने में विश्वास नहीं करता था, उसे एक ही झटके में उखाड रोगी को चिरन्तन के लिए ही दाढ के दर्द से मुक्ति दिलाने में उसका विश्वास अधिक था। कैसी-कैसी पढी लिखी उर्वशियो के ब्लैकमेल कण्टको को एक ही झटके से उखाड उसने अपने अनेक गरिमामय प्रभुओं का पथ प्रशस्त किया था। फिर यह दो कौडी की मास्टरनी भला किस खेत की मूली थी! उसे समझाने से भी जब वह नहीं समझी तो पहले उसने एक ही धक्के में गव्यांग घाटी के एक ऐसे बीहड इलाके में डाल दिया जहा खाने को मिलता था केवल सुखाया भेड का गोश्त और फाफर की कडवी रोटी! पर वह जब फिर कठपुतली दल के उस निर्जीव पुतले की भाति बार बार मर कर भी फिर उठकर टीन पीटने लगी 'चाडी-चोंडी और बोगी" तब उसने अपना ब्रह्मास्त्र छोडा था तीसरे ही दिन। स्कूल में उस पार्वती हेडमास्टरनी ने आकस्मिक मृत्यु की छुट्टी घोषित हुई थी जो जगली गुच्छी की सब्जी खा जाने से असमय ही अवकाश ग्रहण कर गई थी। दिनकर अब निश्चिन्त होकर, मूछों में ताव दे अपना राजपाट सम्भाल सकता था, किन्तु ऐसा वह नहीं कर पाया। कभी-कभी, किसी गरिष्ठ राजसी सहभोज के पश्चात् वह तकिये पर सर रखते ही गहरी नींद में डूब जाता किन्तु आधी रात को उसके काटों भरे ताज की चुभन

"हाय, कितने सुन्दर फूल हैं डैडी, पर कितनी ऊचाई पर हैं। तोडेंगे कैसे ?"

"तुम जैसी कोई जगली लडकी इन्हें तोडकर लालवन को नष्ट न कर दे, इसी-से तो भगवान ने इन्हें मनुष्य की पकड से बाहर इस ऊचाई पर टाग दिया है। बिना ऊचे पेड पर चढे, बुरुश का फूल तोडा नहीं जा सकता मिनी, इस लाल फूल को पाने के लिए बडी मेहनत करनी पडती है," दिनकर ने इतना कहकर फिर अपनी तीक्ष्ण अर्थपूर्ण दृष्टि सुरगमा की सफेद साडी के चौडे लाल पाड पर गडा दी। तीखी चढाई चढने से हाफती सुरगमा गुलबनप्से की अटी झाडी को झुककर सूघने लगी थी।

"मैं तो इन्हें तोडकर ही रहूगी।" मिनी ब"द के सूखे ठीठे बटोर निशाना साध-साधकर फूलों पर मारने लगी। किन्तु जब एक भी फूल नही गिरा तब वह हारकर उसी पेड के नीचे बैठ गई।

'अच्छा, चल तुझे एक पहाडी नौला दिखा लाऊ।"

"कितनी दूर है डैडी ? अगर बहुत दूर है तो मैं नही जाऊ गी। इस चढाई में मेरा दम फूल गया है।"

"अरी, यहीं पर है चल तो सही उस पानी में तुझे कोक का मजा आएगा।"

शायद प्रिय पेय की वह तुलना ही उसे लुभा गई पर बार-बार आग्रह करने पर भी सुरगमा नहीं उठी। "नही मिनी, तुम देख आओ, मैं यहीं बैठी रहूगी।"

दिनकर और मिनी के जाते ही वह दोनों पैर लम्बे कर उसी बुरुश के दैत्याकार तने का सिरहाना बना लेट गई। लाल फूलो के झुरमुट से झाकता नीलाकाश देखते ही देखते भीमाकार कृष्णवर्णी मेघो से घिर गया था, बीच बीच मे विद्युद्वह्नि की झलक उसकी आखें बन्द कर देती। वर्षा की पहली बूद उसकी छाती पर पडी, फिर कपोल पर, ललाट पर और फिर वेगवती वृष्टि सहस्र धाराओ में बरसती, किसी दु साहसी अधीर प्रेमी के उन्मत्त चुम्बनो की-सी बौछार से उसे विह्वल कर गई। वह घबराकर, इधर-उधर कही सिर छिपाने के लिए किसी और सघन वृक्ष की छतरी ढूढने लगी, किन्तु वृष्टि का वेग इतना सशक्त था कि किसी भी वृक्ष की छतरी उसे नहीं बचा सकती थी। पतली बनारस काटन की साडी और रविदा का पारदर्शी ब्लाउज उसकी देह से चिपक उसे धरती मे गाडकर रख गया। हाय, इतनी पतली साडी पहन, वह यहा मरने क्या आ गई थी। साथ मे क्या एक शाल नहीं रख सकती थी ? अभी मिनी और दिनकर आ जाएगे

"हाय, कितने सुन्दर फूल हैं डैडी, पर कितनी ऊचाई पर हैं । तोड़ेंगे कैसे ?"

"तुम जैसी कोई जगली लडकी इन्हें तोडकर लालवन को नष्ट न कर दे, इसी-से तो भगवान ने इन्हें मनुष्य की पकड से बाहर इस ऊचाई पर टाग दिया है। बिना ऊचे पेड पर चढे, बुरुश का फूल तोडा नहीं जा सकता मिनी, इस लाल फूल को पाने के लिए बडी मेहनत करनी पडती है," दिनकर ने इतना कहकर फिर अपनी तीक्ष्ण अर्थपूर्ण दृष्टि सुरगमा की सफेद साडी के चौडे लाल पाड पर गडा दी। तीखी चढाई चढ़ने से हाफती सुरगमा गुलबनप्से की अटी झाडी को झुककर सूघने लगी थी।

"मैं तो इन्हें तोडकर ही रहूगी !" मिनी बाज के सूखे ठीठे बटोर निशाना साध-साधकर फूलों पर मारने लगी। किन्तु जब एक भी फूल नहीं गिरा तब वह हारकर उसी पेड के नीचे बैठ गई।

'अच्छा, चल तुझे एक पहाडी नौला दिखा लाऊ ।"

"कितनी दूर है डैडी ? अगर बहुत दूर है तो मैं नहीं जाऊ गी। इस चढाई में मेरा दम फूल गया है।"

"अरी, यहीं पर है चल तो सही उस पानी में तुझे कोक का मजा आएगा।"

शायद प्रिय पेय की वह तुलना ही उसे लुभा गई पर बार-बार आग्रह करने पर भी सुरगमा नहीं उठी। "नहीं मिनी, तुम देख आओ, मैं यहीं बैठी रहूगी।"

दिनकर और मिनी के जाते ही वह दोनों पैर लम्बे कर उसी बुरुश के दैत्याकार तने का सिरहाना बना लेट गई। लाल फूलो के झुरमुट से झाकता नीलाकाश देखते ही देखते भीमाकार कृष्णवर्णी मेघो से घिर गया था, बीच बीच मे विद्युद्वह्नि की झलक उसकी आखें बन्द कर देती। वर्षा की पहली बूद उसकी छाती पर पडी, फिर कपोल पर, ललाट पर और फिर वगवती वृष्टि सहस्र धाराओ में बरसती, किसी दु साहसी अधीर प्रेमी के उन्मत्त चुम्बनो की-सी बौछार से उसे विह्वल कर गई। वह घबराकर, इधर-उधर कही सिर छिपाने के लिए किसी और सघन वृक्ष की छतरी ढूढने लगी, किन्तु वृष्टि का वेग इतना सशक्त था कि किसी भी वृक्ष की छतरी उसे नहीं बचा सकती थी। पतली बनारस काटन की साडी और सबिदा का पारदर्शी ब्लाउज उसकी देह से चिपक उसे धरती मे गाडकर रख गया। हाय, इतनी पतली साडी पहन, वह यहा मरने क्या आ गई थी। साथ मे क्या एक शाल नहीं रख सकती थी ? अभी मिनी और दिनकर आ जाएंगे

है आज उसीकी माडल मुझे इस अरण्य में मिल गई है। कभी तुमने भी उस चित्र को अवश्य देखा होगा, भारत में ऐसी लोकप्रियता शायद ही किसी चित्र को प्राप्त हुई होगी। उन दिनों विरला ही भारत का कोई ऐसा समृद्ध गृह होगा, जहां के दीवानखाने में यह चित्र न टंगा हो। पिट जाने-सा रंग वैसी ही सुगठित देह और चेहरे की विद्युत गठन ठीक ऐसी ही लाल पाड़ की सफेद भीगी साड़ी उसके चम्पक अंगों पर चिपकी है चेहरे पर भी ऐसी ही अनुपम व्रीड़ा का अंगराग फैला है, सुरंगमा! दिनकर की तप्त श्वास तब उसके कपोल स्पर्श कर रही थी। बढ़कर उसने सुरंगमा का नुकीला चिबुक थाम लिया और भय से कम्पित उसके अधर मधुर अर्द्धविस्फुटित कली की बन्द पंखुड़ी-से खुल गए। पुरुष का प्रथम स्पर्श उसकी चेतना हर गया था। फिर भी चेतना में अधजगे चित्त के कान सब कुछ सुन रहे थे। "गांव में पीतल की गगरी लिए उस अद्भुत चित्र की जलस्नात सुन्दरी पानी भर पोखर में लौट रही है। एक पैर जल में डूबा है दूसरा सीढ़ी पर—सोचता था ऐसे चित्र अब कोई क्या इन्हें बनाता। पर देख रहा हूं विधाता ने उससे भी अधिक मोहक चित्र बनाकर अपनी सब चित्रकारों की तूलिका तोड़कर रख दी है"

सुरंगमा की कस्तूरी देह को बाहों में भर वह उसे उसी अधैर्य से चूमने लगा—न जाने कब तक सुरंगमा उस मोहक बंधन में पड़ी रही फिर उसके सुप्त विवेक ने ही उसे सहसा धक्का मारकर जगा दिया था। उस सशक्त बाहुबंधन से छिटक वह उसी उतार की ओर भाग गई [illegible] से मिली उतरी थी—उतर पीछे पीछे दिनकर भी उतार उतर रहा है यह उसने मुड़कर भी नहीं देखा। भीगी फिसलन की सुनहली घास न मिलती तो वह शायद भरभराकर स्केट करती, हाथ पर ही तोड़ बैठती—उसके पीछे पीछे छाया की भांति निःशब्द आ रहे दिनकर ने ही उसे हंसकर सम्भाल लिया था।

"देख लिया ना, सुरंगमा? भागने पर भी तुम कभी नियति को नहीं छल सकती। जब जब ऐसे घबड़ाकर भागोगी—ठोकर खाकर गिरोगी—तुम्हारा यह मस्तक, यह [illegible] तब-तब तुम्हें ऐसे ही सम्भाल लेगा" [illegible] बार उसकी दुरन्त देह को नापती [illegible] सटाकर कहने लगा

एक-दो दिन ट्यूशन पर नहीं आई, और जब गई तब दिनकर दिल्ली चला गया था। फिर सुदीर्घ अवधि के लिए, वह स्वयं ही उससे कतराता रहा। कभी वह दौरे पर निकल जाता और कभी प्रदेश की जटिल समस्याएं उसे उलझाकर किसी बन्द कमरे मे अदृश्य कर देतीं। उप एक महीने की अवधि में सुरगमा के अशान्त चित्त की उद्विग्नता स्वयं ही शान्त हो गई थी। मीरा की विवाह तिथि निकट आ गई थी, इसीसे वह एक दिन जबरदस्ती सुरगमा को अपना हाथ बटाने घर खींच ले गई। दिन-भर सुरगमा बैंक म रहती, सन्ध्या को मिनी को पढ़ाकर खाली होती तो मीरा अपनी कार लेकर उसे लिवाने पहुच जाती। फिर दोनो कभी किसी जौहरी के यहां सेट देखने चली जातीं, कभी साड़ियो म फॉल लगवाने और कभी थककर किसी सिनेमा हाल म जाकर बैठ जाती। मीरा क दोनो भाइयो की भयप्रद जोड़ी बम्बई की किसी फिल्म कम्पनी म जुड़वा भाइयो की भूमिका निभाने चली गई थी—'मीरा के विवाह म भी हमारा आना नहीं हो पाएगा उन्ही दिनो हमारी शूटिंग है।" उन्होंने पिता को लिख दिया था इसीसे अब सुरगमा को अपनी सखी के गृह में किसी प्रकार का भय नहीं रह गया था। मीरा का गृह अतिथियों से भरने लगा तो सुरगमा ने बहाना बनाकर खिसकने की चेष्टा भी की थी उसका एक कारण यह भी था कि उसके गौर मामा और नानी के साथ उसके वही कार्तिक दा भी आ रहे थे जिनका रिश्ता उसने बड़ी बेरुखी से फेर दिया था।

"नहीं-नहीं, तू अब कहीं नहीं जाएगी, मैं तो विवाह-मण्डप मे रहूंगी—तू यहां रहेगी तो कम से कम चीजो की देखभाल तो करेगी। इन हरामखोर नौकरो मे एक मरी आया को छोड़ कोई भी ऐसा नहीं है जिसका विश्वास किया जा सके। नो, यू काट गो।"

स्टेशन पर उसे देखते ही गौर मामा अपनी मोटी-मोटी बाहें फैलाकर बड़े स्नेह से बढ़ आए थे। 'मैंने कहा था ना मा, सुरगमा हमें लेने जरूर स्टेशन आएगी। कार्तिक, इधर आओ बेटा यह है सुरगमा। देख लिया ना? बुढ़ापे म भी गौरप्रसन्न की आखों का सौन्दर्य-बोध मरा नहीं है। कैसी भी भीड़ मे छिपा कोई खूबसूरत चेहरा क्यो न हो, हमारी आखों से बच नहीं सकता।"

धूप का चश्मा उतार वह आकर्षक युवक उसे बड़े ध्यान से देख रहा है, यह वह जान गई। मीरा सामान उतरवा रही थी, वह भी उसके पीछे लग गई, जिससे

एक-दो दिन ट्यूशन पर नही आई, और जब गई तब दिनकर दिल्ली चला गया था। फिर सुदीर्घ अवधि के लिए, वह स्वय ही उससे कतराता रहा। कभी वह दौरे पर निकल जाता और कभी प्रदेश की जटिल समस्याए उसे उलझाकर किसी बन्द कमरे मे अदृश्य कर देती। उस एक महीने की अवधि में सुरगमा के अशान्त चित्त की उद्विग्नता स्वय ही शान्त हो गई थी। मीरा की विवाह तिथि निकट आ गई थी, इसीसे वह एक दिन जबरदस्ती सुरगमा को अपना हाथ बटाने घर खीच ले गई। दिन-भर सुरगमा बैंक म रहती, सन्ध्या को मिनी को पढाकर खाली होती तो मीरा अपनी कार लेकर उसे लिवाने पहुच जाती। फिर दोनो कभी किसी जौहरी के यहा सेट देखने चली जाती, कभी साडियो म फॉल लगवान और कभी थककर किसी सिनेमा हाल म जाकर बैठ जाती। मीरा क दोनो भाइयो की भयप्रद जोडी बम्बई की किसी फिल्म कम्पनी म जुडवा भाइयो की भूमिका निभाने चली गई थी— 'मीरा के विवाह म भी हमारा आना नही हो पाएगा उन्ही दिनो हमारी शूटिंग है।'' उन्होंने पिता को लिख दिया था इसीसे अब सुरगमा को अपनी सखी के गृह में किसी प्रकार का भय नही रह गया था। मीरा का गृह अतिथियों से भरने लगा तो सुरगमा ने बहाना बनाकर खिसकने की चेष्टा भी की थी उसका एक कारण यह भी था कि उसके गौर मामा और नानी के साथ उसके वही कार्तिक दा भी आ रहे थे जिनका रिश्ता उसने बडी बेरुखी से फेर दिया था।

''नही-नही, तू अब कही नही जाएगी, मैं तो विवाह-मण्डप मे रहूगी—तू यहा रहेगी तो कम से कम चीजो की देखभाल तो करेगी। इन हरामखोर नौकरो मे एक मरी आया को छोड कोई भी ऐसा नहीं है जिसका विश्वास किया जा सके। नो, यू काट गो।''

स्टेशन पर उसे देखते ही गौर मामा अपनी मोटी-मोटी बाहे फैलाकर बडे स्नेह से बढ आए थे। 'मैंने कहा था ना मा, सुरगमा हमें लेने जरूर स्टेशन आएगी - कार्तिक, इधर आओ बेटा यह है सुरगमा। देख लिया ना? बुढापे म भी गौरप्रसन्न की आखों का सौन्दर्य-बोध मरा नही है। कैसी भी भीड मे छिपा कोई खूबसूरत चेहरा क्यो न हो, हमारी आखों से बच नहीं सकता।''

धूप का चश्मा उतार वह आकर्षक युवक उसे बडे ध्यान से देख रहा है, यह वह जान गई। मीरा सामान उतरवा रही थी, वह भी उसके पीछे लग गई, जिससे

बरात आई तो जयमाल हाथ मे लिए धीर-मथर गति से आ रही नववधू
चेहरे से फिसलकर देखने वालो की दृष्टि बरबस सुरगमा पर पड रही थी
मीरा की भारी लाल टेम्पल साडी मे उसका उज्ज्वल रग और भी शुभ्र होक
निखर आया था, मीरा ने ही जिद कर उसका जूडा बना उसम अपना कटर्क
पहाडू कघा तिरछा कर खोंस दिया था। काले-घने केशो के बीच चौथ क
चद्रमा सा उतर आया वह अद्धच द्राकार कघा किसी विजयिनी विश्व-सुन्दरी के
किरीट-सा जगमगा रहा था।

कानों मे भी मीरा के दक्षिणी झुमके थे कर्णमूल से ही पैराशूट की छतरी-स
खुल गए वे झुमके बार-बार अपने घुघरू उसकी लटों मे उलझा रहे थे और उन
निकालने उठे हाथ की गोमेद की अगूठी उसके गौरवर्ण को और प्रखर बना रह
थी। अधरो की स्वाभाविक लालिमा को मीरा के प्लम कलर लिपस्टिक के प्रहा
ने और भी घातक बना दिया था। कठ मे पडी बसरा के मोतियो की दुहरी लड
रागिनी की दूधिया त्वचा से घुल-मिल गई थी। उसे देखते ही पूरे सामियाने म
हलचली मच गई।

"कौन है यह ?"

'कौन ?"

' वही वही जो दुल्हन के पीछे खडी है।"

"ओह, वह मीरा की सहेली है सुरगमा, मन्त्रीजी की लडकी को पढाती है
शायद स्टेट बैंक म नौकरी भी करती है।"

"चीज तो स्टेट बैंक के लाकर मे रखने लायक है। '

"ही-ही-ही बडी मजे की बात कहती है आप मिसेज गुप्ता।"

ईर्ष्यादिग्ध टिप्पणी सुन कार्तिक उठकर पीछे खडा हो गया। उतनी दूर से भी
वह अपूर्व देवागना रगमच पर सवश्रेष्ठ अभिनेत्री का एवार्ड लेने को प्रतीक्षारत
खडी किसी प्रख्यात फिल्म तारिका-सी ही दमक रही थी। सहसा वहा भी सुरगम
की ही चर्चा मुखरित हो उठी। इस बार स्वर पुरुष प्रशसको का था, "भई, कुछ
भी कहो, गजब की लडकी है पर यहा टयूशनो म क्यो झक मार रही है, फिल्मो मे
क्यों नहीं चली जाती ?"

अजी, उसे क्या कमी यही, जैसा चाहे वैसा सेट बन जाएगा अभी तो
नैनीताल गई थी मन्त्रीजी के साथ।"

बरात आई तो जयमाल हाथ मे लिए धीर-मथर गति से आ रही नववधू चेहरे से फिसलकर देखने वालो की दृष्टि बरबस सुरगमा पर पड रही थी मीरा की भारी लाल टेम्पल साडी मे उसका उज्ज्वल रग और भी शुभ्र होक निखर आया था, मीरा ने ही जिद कर उसका जूडा बना उसमे अपना कटर्क पहाऊ कघा तिरछा कर खोंस दिया था। काले-घने केशो के बीच चौथ व चद्रमा सा उतर आया वह अद्धचद्राकार कघा किसी विजयिनी विश्व-सुन्दरी वे किरीट-सा जगमगा रहा था।

कानों मे भी मीरा के दक्षिणी झुमके थे कर्णमूल से ही पैराशूट की छतरी-स खुल गए वे झुमके बार-बार अपने घुघरू उसकी लटों मे उलझा रहे थे और उन निकालने उठे हाथ की गोमेद की अगूठी उसके गोरवण को और प्रखर बना रह थी। अधरो की स्वाभाविक लालिमा को मीरा के प्लम कलर लिपस्टिक के प्रहा ने और भी मातक बना दिया था। कठ मे पडी बसरा के मोतियो की दुहरी लड ...रागिनी की दूधिया त्वचा से घुल-मिल गई थी। उसे देखते ही पूरे शामियाने ...लचली मच गई।

"कौन है यह ?"

'कौन ?"

'वही वही जो दुल्हन के पीछे खडी है।"

"ओह, वह मीरा की सहेली है सुरगमा, मन्त्रीजी की लडकी को पढाती है द स्टेट बैंक म नौकरी भी करती है।"

"चीज तो स्टेट बैंक के लाकर मे रखने लायक है।'

'ही-ही-ही बडी मजे की बात कहती है आप मिसेज गुप्ता।"

ईर्ष्यादिग्ध टिप्पणी सुन कार्तिक उठकर पीछे खडा हो गया। उतनी दूर से भी वह अपूर्व देवागना रगमच पर सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का एवार्ड लेने को प्रतीक्षारत खडी किसी प्रख्यात फिल्म तारिका-सी ही चमक रही थी। सहसा वहा भी सुरगम की ही चर्चा मुखरित हो उठी। इस बार स्वर पुरुष प्रशसको का था, "भई, कुछ भी कहो, गजब की लडकी है पर यहा टयूशनो म क्यो झक मार रही है, फिल्मो मे क्यों नहीं चली जाती ?"

अजी, उसे क्या कमी यही, जैसा चाहे वैसा सेट बन जाएगा अभी तो नैनीताल गई थी मन्त्रीजी के साथ।"

चुम्बनो की स्मृति उसे पागल बना गई। बुरुश की छाया मे प्रस्तर-खण्ड पर बैठी उस प्रेयसी के कपोल, ललाट, अधरों का स्वाद उसे फिर उसी दुस्साहस से उकसाने लगा। वे क्षण तो घोर अविवेक के थे, घोर उन्माद के, किन्तु ये क्षण भी उसी उन्माद की ओर भाग रहे थे उसी अविवेक की ओर। अब वह एक क्षण भी वहा रुका तो उसका अबाध्य चित्त न जाने क्या अनर्थ कर बैठेगा। वह जिस आंधी के वेग से आया था फिर उसी वेग से पूरे शामियाने को झकझोरता बाहर निकल गया। डा० सिनहा उसे दोनो हाथ पकडकर बडे आग्रह से रोक रहे थे 'आपने तो एक न्वाला कन्नी का भी नही लिया कुछ जलपान तो कर लेते "

नहीं-नहीं सिनहा लडकी के ब्याह मे हमारे पहाड मे अतिथि पानी भी नही पाते म चलू, एक बडी इम्पोर्टेंट मीटिंग है। फिर तीन बज की फ्लाइट से दिल्ली जाना है।" कार मे बैठते ही दिनकर ने सीट पर गदन डाल आखें ब द कर ली थीं— हे भगवान, यह कसे चक्रव्यूह मे फस गया।" आज तक विनीता केसाथ उसकादाम्पत्य-जीवन सुखी न होने पर भी किसी अन्य नारी के प्रति उसके आकषण का कभी प्रश्न ही नही उठा था। राजनीति ही उसका एकमात्र प्रेम थी। जब कभी वह अपनी बिरादरी के किसी अल्पबुद्धि मन्त्री की किसी नारी-लोलुपता के कारण घटी राजनीतिक अकालमृत्यु का समाचार सुनता तो उसे बडा दु ख होता। क्या ये मूख इतना भी नही समझते थे ? राजनीति की दीर्घायु का तो मूलमन्त्र ही था कचन-कामिनी से परहेज। किन्तु आज तो वह स्वय ही उस दलदल मे फसा छटपटा रहा था। वह तो उसका भाग्य अच्छा था जो विनीताजी हालैण्ड से अभी नही लौटी थी, पति की मानसिक व्याधि को वह सवदा ही हथेली पर चल रही जूँ सा पकड लेती थी। सुरगमा का उनके गह मे उनकी इच्छा के विरुद्ध एक प्रकार से अनधिकार प्रवेश ही हुआ था। लालवन म घट गई उस दुघटना के पश्चात् उस बुद्धिमती लडकी ने स्वय ही उनसे कन्नी काट ली थी किन्तु उसकी वही उदासीनता दिनकर के प्राण हरने लगी थी। उसी मानसिक तनाव के बीच उन्हे विनीताजी का पत्र मिला था। ऐसा प्रेमपगा पत्र विनीता ने पति को पहले कभी नही लिखा था। लगता था विदेश के रूखे अस्वाभाविक परिवेश मे आकपक जीवन-सहचर की स्मृति उस प्रोषिता को विह्वल कर गई है, पता नही तुम अपने खाने-पीने का भी ध्यान रख पा रहे हो यह हमेशा की तरह लापरवाही ही बरत रहे हो " उसने लिखा था, "तुम्हें अब अपनी

चुम्बनो की स्मृति उसे पागल बना गई। बुरुश की छाया मे प्रस्तर-खण्ड पर बैठी
उस प्रेयसी के कपोल, ललाट, अधरों का स्वाद उसे फिर उसी दुस्साहस से उकसाने
लगा। वे क्षण तो घोर अविवेक के थे, घोर उन्माद के, किन्तु ये क्षण भी उसी
उन्माद की ओर भाग रहे थे उसी अविवेक की ओर। अब वह एक क्षण भी वहा
रुका तो उसका अबाध्य चित्त न जाने क्या अनर्थ कर बैठेगा। वह जिस आधी के
वेग से आया था फिर उसी वेग से पूरे शामियाने को झकझोरता बाहर निकल
गया। डा० सिनहा उसे दोनो हाथ पकडकर बडे आग्रह से रोक रहे थे 'आपने
तो एक [illegible] भी नही लिया कुछ जलपान तो कर लेते ''
नहीं-नहीं सिनहा लडकी के ब्याह मे हमारे पहाड मे अतिथि पानी भी
नही पाते म चलू, एक बडी इम्पोर्टेंट मीटिंग है। फिर तीन बज की फ्लाइट से
दिल्ली जाना है।" कार मे बैठते ही दिनकर ने सीट पर गदन डाल आखें ब द कर
ली थीं— हे भगवान, यह कसे चक्रव्यूह मे फस गया!" आज तक विनीता केसाथ
उसकादाम्पत्य-जीवन सुखी न होने पर भी किसी अ य नारी के प्रति उसके आकषण
का कभी प्रश्न ही नही उठा था। राजनीति ही उसका एकमात्र प्रेम थी। जब कभी
वह अपनी बिरादरी के किसी अल्पबुद्धि मन्त्री की किसी नारी-लोलुपता के कारण
घटी राजनीतिक अकालमृत्यु का समाचार सुनता तो उसे बडा दु ख होता। क्या
ये मूख इतना भी नही समझते थे ? राजनीति की दीर्घायु का तो मूलमन्त्र ही था
कचन-कामिनी से परहेज। किन्तु आज तो वह स्वय ही उस दलदल मे फसा
छटपटा रहा था। वह तो उसका भाग्य अच्छा था जो विनीताजी हालैण्ड से अभी
नही लौटी थी, पति की मानसिक व्याधि को वह सवदा ही हथेली पर चल रही
जूं सा पकड लेती थी। सुरगमा का उनके गह मे उनकी इच्छा के विरुद्ध एक
प्रकार से अनधिकार प्रवेश ही हुआ था। लालवन म घट गई उस दुघटना के
पश्चात् उस बुद्धिमती लडकी ने स्वय ही उनसे कन्नी काट ली थी किन्तु उसकी
वही उदासीनता दिनकर के प्राण हरने लगी थी। उसी मानसिक तनाव के बीच
उन्ह विनीताजी का पत्र मिला था। ऐसा प्रेमपगा पत्र विनीता ने पति को
पहले कभी नही लिखा था। लगता था विदेश के रूखे अस्वाभाविक परिवेश मे
आक्पव जीवन-सहचर की स्मृति उस प्रोषिता को विह्वल कर गई है,
पता नही तुम अपने खाने-पीने का भी ध्यान रख पा रहे हो यह हमेशा की
तरह लापरवाही ही बरत रहे हो " उसने लिखा था, "तुम्हें अब अपनी

अपने चादी के कुर्ते की अहिंसात्मक जेब में बड़ी हिंसात्मक सामग्री लिए घूमता रहता है, उस शक्तिशाली ट्रासमीटर की झलक दिनकर ने कई बार देख ली थी। स्वय उसके गर्हित जीवन के विषय मे प्रचलित अनेक सत्यकथाओं का गुटका दिनकर की जेब मे था किन्तु वह चतुर ठग अपनी प्रत्येक अपकीर्ति का प्रमाण उसी क्षण भस्म कर राख इधर-उधर बिखेर निश्चिन्त निर्गरगड बना घूमता फिरता था। *हज़रतगज की किसी सुरग-सी गली में एक शानदार फ्लैट किराये* पर ले वह ससार के सबसे प्राचीन पेशे की भव्य दुकान चलाता है और एक से एक ऊचे अफसर, नेता उसके ग्राहक हैं, यह दिनकर जानता था। एक बार वेश बदल सन्ध्या के धुधलके मे वह वहा जाकर अत्यन्त निकट से भीतर झाक भी आया था। दीवारो पर लगी थी अनेक प्रसिद्ध आधुनिक अवतार-सिद्ध बाबाओ की तस्वीरें और कमरे के बीचोबीच अगरबत्ती की सुवासित धूम्ररेखा से घिरा ध्यानमग्न वही बगुलाभगत ऐसी अडिग मुद्रा मे बैठा था जैसे चारो ओर उसे लक्ष्य कर प्रेस-फोटोग्राफर *कैमरा साधे खड़े हों। दिनकर समझ गया था कि उसका गुप्तचर-*विभाग दिनकर के गुप्तचर-विभाग से कही अधिक सशक्त है। एक से एक कुख्यात स्मगलर उसके यहा आकर टिकते थे। सन्ध्या को किचिर किचिर पान खाए उस निलज्ज ब्लैकमेलर को हाथ मे बेले का गजरा लपेटे कभी भी हज़रतगज की किसी पान की दुकान पर मडराते देखा जा सकता था। वह वहा होता और उसके फ्लैट के एकमात्र ताले की बीसियो चाबिया जेब मे लिए उसके विभिन्न समृद्ध ग्राहक उसके मधुकुज मे मधु-सग्रह करने पहुचे होते किन्तु उसे पकडना उतना ही कठिन था जितना मुट्ठी मे तीव्र जलधार को पकडना। प्रदेश के जिन वरिष्ठतम अधिकारियों के यहा रात को जुए का अड्डा खुलता वहा वहा वह बोतलो का पूरा क्रेट लिए पहुच जाता। प्रत्येक भ्रष्ट अफसर की पत्नी उसकी भाभी थी इसी से जब उस मुहलगे देवर ने स्टेट बैंक के प्रसग का उल्लेख कर अपनी कुटिल अथपूर्ण दृष्टि से दिनकर को देखा तो उसका हृदय किसी भयानक आशका से काप उठा। *अब उसे छाछ भी फूक-फूककर पीनी होगी। नित्य प्रात काल घटे भर का पूजा-*पाठ उसका दैनिक नियम था। अब उसी अवधि को उसने और प्रलम्ब कर दिया। ललाट पर रोली-चन्दन के तिलक का यत्न से सवार उसने चचल चित्त पर सयम का मुहर और सुस्पष्ट कर दी। विनीताजी के स्वदेश लौटने की तिथि निकट आ रही थी। वह उसके आने से पूव अपने चेहरे से आत्मग्लानि की एक-एक रेखा को

अपने खादी के कुर्ते की अहिंसात्मक जेब में बडी हिंसात्मक सामग्री लिए घूमता रहता है, उस शक्तिशाली ट्रासमीटर की झलक दिनकर ने कई बार देख ली थी। स्वय उसके गर्हित जीवन के विषय मे प्रचलित अनेक सत्यकथाओं का गुटका दिनकर की जेब मे था किन्तु वह चतुर ठग अपनी प्रत्येक अपकीर्ति का प्रमाण उसी क्षण भस्म कर राख इधर-उधर बिखेर निश्चिन्त निर्गरगड बना घूमता फिरता था। हजरतगज की किसी सुरग-सी गली मे एक शानदार फ्लैट किराये पर ले वह ससार के सबसे प्राचीन पेशे की भव्य दुकान चलाता है और एक से एक ऊचे अफसर, नेता उसके ग्राहक हैं, यह दिनकर जानता था। एक बार वेश बदल सन्ध्या के धुधलके मे वह वहा जाकर अत्यन्त निकट से भीतर झाक भी आया था। दीवारो पर लगी थी अनेक प्रसिद्ध आधुनिक अवतार-सिद्ध बाबाओ की तस्वीरें और कमरे के बीचोबीच अगरबत्ती की सुवासित धूम्ररेखा से घिरा ध्यानमग्न वही बगुलाभगत ऐसी अडिग मुद्रा मे बैठा था जैसे चारो ओर उसे लक्ष्य कर प्रेस-फाटोग्राफर कैमरा साधे खडे हो। दिनकर समझ गया था कि उसका गुप्तचर-विभाग दिनकर के गुप्तचर-विभाग से कही अधिक सशक्त है। एक से एक कुख्यात स्मगलर उसके यहा आकर टिकते थे। सन्ध्या को किचिर किचिर पान खाए उस निलज्ज ब्लैकमेलर को हाथ मे बेले का गजरा लपेटे कभी भी हजरतगज की किसी पान की दुकान पर मडराते देखा जा सकता था। वह वहा होता और उसके फ्लैट के एकमात्र ताले की बीसियो चाबिया जेब मे लिए उसके विभिन्न समृद्ध ग्राहक उसके मधुकुज मे मधु-सग्रह करने पहुचे होते किन्तु उसे पकडना उतना ही कठिन था जितना मुट्ठी मे तीव्र जलधार को पकडना। प्रदेश के जिन वरिष्ठतम अधिकारियों के यहा रात को जुए का अड्डा खुलता वहा वहा वह बोतला का पूरा क्रेट लिए पहुच जाता। प्रत्येक भ्रष्ट अफसर की पत्नी उसकी भाभी थी इसी से जब उस मुहलगे देवर ने स्टेट बैंक के प्रसग का उल्लेख कर अपनी कुटिल अर्थपूर्ण दृष्टि से दिनकर को देखा तो उसका हृदय किसी भयानक आशका से काप उठा। अब उसे छाछ भी फूक-फूककर पीनी होगी। नित्य प्रात काल घटे भर का पूजा-पाठ उसका दैनिक नियम था। अब उसी अवधि को उसने और प्रलम्ब कर दिया। ललाट पर रोली-चदन के तिलक का यत्न से सवार उसने चचल चित्त पर सयम का मुहर और सुस्पष्ट कर दी। विनीताजी के स्वदेश लौटने की तिथि निकट आ रही थी। वह उसके आने से पूर्व अपने चेहरे से आत्मग्लानि की एक-एक रेखा को

उठी थी। बार-बार वह पिता से घर लौटने की जिद कर ही रही थी किन्तु दिनकर का अपराधी चित्त स्वयं पश्चाताप से खिन्न हो उठा था। लखनऊ लौट जाने को उसका मन ही नहीं कर रहा था। बात ठीक ही कही थी मिनी ने उस दिन जैसी बातें उसने कह दी थीं उन्हें सुनकर वह आत्मसम्मानी लड़की अब कभी लौट कर नहीं आएगी। उसे पता होता कि वह पर्दे के पीछे खड़ी है तो इतनी कठोर गर्जना म कभी नहीं गरजता। उसकी नजरों मे वह अब निश्चय ही एक छिछोर प्रमदाप्रिय मन्चीमात्र बन गया होगा। जिसने उसके देवोपम सौन्दर्य का उस अरण्य में वैसा ऊंचा मूल्य आंका था, वही अपने राजसी परिवेश मे राजसिंहासन पर बैठते ही उसे चौकाती मास्टरनी कह गया तो बेचारी उसे और समझ ही क्या सकती थी। उधर मिनी अपनी रूठी मिस को मनाने नाना उपहार जुटा चुकी थी। चौडे लाल जरी पाड की घनखोली साडी लिफाफे से निकालकर वह सूटकेस मे रखने लगी तो दिनकर ने हंसकर पूछा, "यह किसके लिए ली है बेबी ? ममी के लिए ? तू तो कभी साडी पहनती नही !'

"मैंने मिस के लिए ली है डैडी ! देखिए कितना सुन्दर किनारा है। मैं तो ममा के लिए भी एक ले लेती पर ममी को ये सब साडिया पसन्द नही हैं। कह रही थीं, बरसों तक ये ही तात की साडिया पहन-पहनकर ऊब गई हू, पर मिस को ये ही साडिया पसन्द हैं।"

एक वैसे ही यमज लाल पाड की स्मृति दिनकर को गम्भीर बना गई। उसने फिर कुछ नहीं कहा। तीन दिन बाद ही विनीता आ जाएगी और इस बार वह उस मूर्खा को कहीं नहीं जाने देगा। यदि वह फिर भी जाने के लिए छटपटाई तो वह उससे स्पष्ट कह देगा, "ठीक है विनीता, जाना ही है तो चली जाओ पर तुम्हारी अनुपस्थिति मे यदि तुम्हारी कोई अमूल्य वस्तु खो गई तो दोष मुझे मत देना, मैंने तुम्हें सावधान कर दिया है।"

किन्तु उसी क्षण दिनकर को अपनी काल्पनिक बहस की व्यग्रता पर हंसी भी आई थी। क्या रौबदार पत्नी की उपस्थिति मे यह सब कहने का साहस उसे कभी हो सकता था ?

मिनी को लखनऊ पहुचाकर, वह दूसरे ही दिन विनीता को लेने दिल्ली चला गया था। पालम पर, उसे देखकर, निश्चय ही विनीता सुखद आश्चर्य से

उठी थी। बार-बार वह पिता से घर लौटने की जिद कर ही रही थी किन्तु दिनकर का अपराधी चित्त स्वयंपश्चाताप से खिन्न हो उठा था। लखनऊ लौट जाने को उसका मन ही नहीं कर रहा था। बात ठीक ही कही थी मिनी ने उस दिन जैसी बातें उसने कह दी थीं उन्हें सुनकर वह आत्मसम्मानी लडकी अब कभी लौट कर नहीं आएगी। उसे पता होता कि वह पर्दे के पीछे खडी है तो इतनी कठोर गर्जना म कभी नहीं गरजता। उसकी नजरों मे वह अब निश्चय ही एक छिछोर प्रमदाप्रिय मन्त्रीमात्र बन गया होगा। जिसने उसके देवोपम सौन्दर्य का उस अरण्य में वैसा ऊचा मूल्य आका था, वही अपने राजसी परिवेश मे राजसिंहासन पर बैठते ही उसे औकाती मास्टरनी कह गया तो बेचारी उसे और समझ ही क्या सकती थी। उधर मिनी अपनी रूठी मिस को मनाने नाना उपहार जुटा चुकी थी। चौडे लाल जरी पाड की धनखोली साडी लिफाफे से निकालकर वह सूटकेस मे रखने लगी तो दिनकर ने हसकर पूछा, "यह किसके लिए ली है बेबी ? ममी के लिए ? तू तो कभी साडी पहनती नही ! '

"मैंने मिस के लिए ली है डैडी ! देखिए कितना सुन्दर किनारा है। मैं तो ममा के लिए भी एक ले लेती पर ममी को ये सब साडिया पसन्द नही हैं। कह रही थीं, बचपन तक ये ही तात की साडिया पहन-पहनकर ऊब गई हू, पर मिस को ये ही साडिया पसन्द हैं।"

एक वैसे ही यमज लाल पाड की स्मृति दिनकर को गम्भीर बना गई। उसने फिर कुछ नहीं कहा। तीन दिन बाद ही विनीता आ जाएगी और इस बार वह उस मूर्खा को कहीं नहीं जाने देगा। यदि वह फिर भी जाने के लिए छटपटाई तो वह उससे स्पष्ट कह देगा, "ठीक है विनीता, जाना ही है तो चली जाओ पर तुम्हारी अनुपस्थिति मे यदि तुम्हारी कोई अमूल्य वस्तु खो गई तो दोष मुझे मत देना, मैंने तुम्हें सावधान कर दिया है।"

किन्तु उसी क्षण दिनकर को अपनी काल्पनिक वहस की व्यर्थता पर हसी भी आई थी। क्या रौबदार पत्नी की उपस्थिति मे यह सब कहने का साहस उसे कभी हो सकता था ?

मिनी को लखनऊ पहुचाकर, वह दूसरे ही दिन विनीता को लेने दिल्ली चला गया था। पालम पर, उसे देखकर, निश्चय ही विनीता सुखद आश्चर्य से

एक ओवेपा पड़ी और तुम्हारी पहन के लिए बनारसी साड़ी। मामाजी खूब खुश हो गए थे "

"हूं, और कौन गया था ?" क्षण-भर पूर्व को सोहाग से छलकती विनीता पति पार्श्व में बैठी-बैठी ही सहसा प्रस्तर मूर्त्ति-सी अचल हो गई केवल ओठ ही बुदबुदाते जा रहे थे, "क्या, बोलते क्यों नहीं, और कौन गया था ?"

"कैसी बात कर रही हो विनीताजी, और कौन जाता ?"

"क्यों, वह नहीं गई, जिसे लेकर नैनीताल गए थे ?"

दिनकर की दोनों हथेलियां पसीने से तर हो गईं। ओह तो, शत्रुपक्ष ने लॉगरेंज की बमबारी भी की थी।

"देखो विनीताजी," वह इतने वर्षों में भी पत्नी के नाम के साथ बिना 'जी' लगाए बात नहीं कर सकता था, "मैंने बहुत मना किया था, पर बेबी नहीं मानी, बराबर मचलती रही कि नैनीताल चलेगी, अब वहां मैं उसे क्या मीटिंग-भाषणों में गले में ढोल-सा लटकाए फिरता ? इसीसे मिस जोशी की खुशामद करनी पड़ी, वह जाना नहीं चाह रही थी। बराबर ना कर रही थी "

"तुमने तो संस्कृत पढ़ी है दिनकर, रससिद्ध कवीश्वरों ने मानिनी नायिका की इस 'ना-ना' को कैसे डिसाइफर किया है, जानते हो ना ?"

विनीता की तिर्यक् कुटिल मुस्कान की पैनी छुरी अब दिनकर की छाती पर थी। फिर कोई उत्तर न पाकर विनीता का चेहरा अजीब हो गया, कनखियों से ही दिनकर ने पत्नी के गोलमोल चेहरे का किसी हवा निकल रहे गुब्बारे की ही भांति दयनीय रूप से सिकुड़ता देख, उसका हाथ उठा अपनी छाती से लगा लिया। रूठी पत्नी को मनाने के लिए अब जिह्वा की कोई भी दलील कारगर नहीं हो सकती, यह वह समझ गया। ड्राइवर की उपस्थिति में जितना मूक प्रेम प्रदर्शन सम्भव था, उतने ही से तनी विनीता को सायता, सहलाता, वह गन्तव्य आवास पर पहुंचा था। किस मानिनी पत्नी के उपालम्भ के रोड़े-कंकड़ प्रेम प्रदर्शन की नरम वर्षा में नहीं बह जाते ? पुरुष नारी की इसी दुर्बलता का तो दिन रात लाभ उठाता है। अपने असह्य अन्याय से वह नारी को कितना ही क्या न सता ले जहां उसे बाहों में भर, उसने चार मृत्युंजयी शब्दों का पथविस्त विलापा, "मैं तुमसे प्रेम करता हूं," वहीं नारी अपने हृदय की बड़ी से बड़ी व्याधि की व्यथा भी भूल जाती है। पत्नी यदि चरित्रहीना होती है तो शायद विरला ही कोई निर्वोध

एक ओथेपा पढ़ी और तुम्हारी बहन के लिए बनारसी साड़ी। मामाजी खूब खुश हो गए थे "

"हूं, और कौन गया था ?" क्षण-भर पूर्व को सोहाग से छलकती विनीता पति पार्श्व में बैठी-बैठी ही सहसा प्रस्तर मूर्त्ति-सी अचल हो गई केवल ओठ ही बुदबुदाते जा रहे थे, "क्या, बोलते क्यों नहीं, और कौन गया था ?"

"कैसी बात कर रही हो विनीताजी, और कौन जाता ?"

"क्यों, वह नहीं गई, जिसे लेकर नैनीताल गए थे ?"

दिनकर की दोना हथेलिया पसीने से तर हो गई। ओह तो, शत्रुपक्ष ने लोंगरेंज की बमबारी भी की थी !

"देखो विनीताजी," वह इतने वर्षों मे भी पत्नी के नाम के आग बिना 'जी' लगाए बात नहीं कर सकता था, "मैंने बहुत मना किया था, पर वेवी नहीं मानी, बराबर मचलती रही कि नैनीताल चलेगी, अब वहां मैं उसे क्या मीटिंग-भाषणों म गले में ढोल-सा लटकाए फिरता ? इसीसे मिस जोशी की खुशामद करनी पड़ी, वह आना नहीं चाह रही थी। बराबर ना कर रही थी '

"तुमने तो सस्कृत पढी है दिनकर, रससिद्ध कवीश्वरों ने मानिनी नायिका की इस 'ना-ना' को कैसे डिसाइफ़र किया है, जानते हो ना ?"

विनीता की तिर्यक् कुटिल मुस्कान की पैनी छुरी अब दिनकर की छाती पर थी। फिर कोई उत्तर न पाकर विनीता का चेहरा अजीब हो गया, कनखियों से ही दिनकर ने पत्नी के गोलमोल चेहरे का किसी हवा निकल रहे गुब्बारे की ही भाति दयनीय रूप से सिकुड़ता देख, उसका हाथ उठा अपनी छाती से लगा लिया। रूठी पत्नी को मनाने के लिए अब जिह्वा की कोई भी दलील कारगर नहीं हो सकती, यह वह समझ गया। ड्राइवर की उपस्थिति म जितना मूक प्रेम प्रदर्शन सम्भव था, उतने ही से तनी विनीता को बांधता, सहलाता, वह गन्तव्य आवास पर पहुंचा था। किस मानिनी पत्नी के उपालम्भ के रोडे-कंकड़ प्रेम प्रदर्शन की नशक्त धारा म नहीं बह जाते ? पुरुष नारी की इसी दुर्बलता का तो दिन रात लाभ उठाता है ! अपने अक्षम्य अन्याय से वह नारी को कितना ही क्या न सता ले जहा उसे बाहों म भर, उसने चार मृत्युंजयी शब्दों का पंचाक्षरित दिलासा, 'मैं तुमसे प्रेम करता हूं," वहीं नारी अपने हृदय की बडी से बडी व्याधि की व्यथा भी भूल जाती है। पत्नी यदि चरित्रहीना होती है तो शायद बिरला ही कोई निर्दोष

दिनकर की उस दिन की गर्जना का एक-एक शब्द दुहराकर मिनी आँखें पोंछने लगी थी।

"पता नहीं और भी क्या-क्या बक गए थे डैडी। मिस पर्दे के पास खड़ी सब सुन रही हैं, यह मैंने देख लिया था—आँखों ही आँखों में मैंने डैडी को कितनी बार समझाया, पर जब सुनते तब ना—और जब मैं उनके पीछे-पीछे उन्हें मनाने जाने लगी तब मुझे फिर झिड़क दिया—अब मनाने-वनाने नहीं जाएगी तू! पता नहीं क्या सोच रही होगी मिस!"

अचानक विनीता का हृदय कागज के फूल-सा हल्का होकर पति के प्रति असीम कृतज्ञता से छलक उठा। कैसी मूर्खा थी वह! ऐसे देवतुल्य पति का उसने अविश्वास किया था। यदि उस गुमनाम पत्र लिखने वाले चोट्टे के आरोप में कुछ तथ्य होता, तो क्या दिनकर अपनी प्रेयसी को ऐसे लाठी लेकर स्वयं खदेड़ देता? "तू घबड़ा मत बेबी," उसने पुत्री की पीठ थपथपाई और बनावटी क्रोध की लाड़-भरी चितवन से पति को देखकर कहा, "मैं आज ही शाम को तेरे साथ चलकर तेरी मिस को मना लाऊँगी। देखूँ, कैसे नहीं आतीं!"

और उसी शाम, वह विदेश से बटोरकर लाई गई अपनी अलभ्य उपहार-सामग्रियों में से तीन-चार उपहार बटोर, अपनी पुत्री के साथ उसकी रूठी शिक्षिका को मनाने चल दी।

इतवार की सांझ सुरंगमा प्रायः घर ही पर बिताती थी। सुबह बाल धोए थे, बिना सुलझी खुली केशराशि अभी भी पीठ पर बिखरी थी। अपनी खुली प्रिय खिड़की से उसे राह चलती रंगीन भीड़ का मेला, मोटर, रिक्शा साइकिल की कतार देखना बड़ा अच्छा लगता था। दिनकर के मुँह से, उसने जिस दिन अपने लिए वैसे अपशब्द सुन थे उस दिन वह भूखी ही सो गई थी। छि छि, तब क्या उससे खेलने के लिए ही, उसने उस अरण्य में उस सरस भूमिका से उसे लुभाया था? मीरा की चेतावनी तब से बराबर उसके कानों में गूँज रही थी—"इन मन्त्रियों का क्या कोई ठिकाना है?" अच्छा ही हुआ जो विधाता ने उसे स्वयं ही उस कलुषित परिवेश से बाहर खींच लिया। फिर भी मिनी के लिए उसका मन बीच-बीच में न जाने कैसा हो उठता था। बेचारी लड़की! ठीक परीक्षा के पहले वह उसे बीच मझधार में छोड़ आई थी। तीन-चार दिन तक वह बैंक से लौटने

दिनकर की उस दिन की गर्जना का एक-एक शब्द दुहराकर मिनी आँखें पोंछने लगी थी।

"पता नहीं और भी क्या-क्या बक गए थे डैडी। मिस पर्दे के पास खड़ी सब सुन रही हैं, यह मैंने देख लिया था—आँखों ही आँखों में मैंने डैडी को कितनी बार समझाया, पर जब सुनते तब ना—और जब मैं उनके पीछे-पीछे उन्हें मनाने जाने लगी तब मुझे फिर झिड़क दिया—अब मनाने-वनाने नहीं जाएगी तू! पता नहीं क्या सोच रही होगी मिस!"

अचानक विनीता का हृदय कागज के फूल-सा हल्का होकर पति के प्रति असीम कृतज्ञता से छलक उठा। कैसी मूर्खा थी वह! ऐसे देवतुल्य पति का उसने अविश्वास किया था। यदि उस गुमनाम पत्र लिखने वाले चोट्टे के आरोप में कुछ तथ्य होता, तो क्या दिनकर अपनी प्रेयसी को ऐसे लाठी लेकर स्वयं खदेड़ देता? "तू घबड़ा मत बेबी," उसने पुत्री की पीठ थपथपाई और बनावटी क्रोध की लाड़-भरी चितवन से पति को देखकर कहा, "मैं आज ही शाम को तेरे साथ चलकर तेरी मिस को मना लाऊँगी। देखूँ, कैसे नहीं आतीं!"

और उसी शाम, वह विदेश से बटोरकर लाई गई अपनी अलभ्य उपहार-सामग्रियों में से तीन-चार उपहार बटोर, अपनी पुत्री के साथ उसकी रूठी शिक्षिका को मनाने चल दी।

इतवार की साँझ सुरंगमा प्रायः घर ही पर बिताती थी। सुबह बाल धोए थे, बिना सुलझी खुली केशराशि अभी भी पीठ पर बिखरी थी। अपनी खुली प्रिय खिड़की से उसे राह चलती रंगीन भीड़ का मेला, मोटर, रिक्शा साइकिल की कतार देखना बड़ा अच्छा लगता था। दिनकर के मुँह से, उसने जिस दिन अपने लिए वैसे अपशब्द सुने थे उस दिन वह भूखी ही सो गई थी। छि छि, तब क्या उससे खेलने के लिए ही, उसने उस अरण्य में उस सरस भूमिका से उसे लुभाया था? मीरा की चेतावनी तब से बराबर उसके कानों में गूँज रही थी—"इन मन्त्रियों का क्या कोई ठिकाना है?" अच्छा ही हुआ जो विधाता ने उसे स्वयं ही उस कलुषित परिवेश से बाहर खींच लिया। फिर भी मिनी के लिए उसका मन बीच-बीच में न जाने कैसा हो उठता था। बेचारी लड़की! ठीक परीक्षा के पहले वह उसे बीच मझधार में छोड़ आई थी। तीन-चार दिन तक वह बैंक से लौटने

साथ वह उठ गई, "आइए, दिखा दूं—बड़ा कमरा तो एक यही है, पर एक छोटा-सा बेडरूम और भी है, एक किचन, एक स्टोर, एक बाथरूम और एक छोटा-सा बरामदा भी है।"

विनीता जी की बड़ी-बड़ी आंखों की पुतलियां फिर उसी कुटिलता से सकुचित हो गई, किसी अनुभवी सी० आई० डी० की-सी उनकी समग्र जिज्ञासा, उन कुटिल पुतलियों की नोक पर आकर चमकने लगी। इधर-उधर, प्रत्येक कोने-कोने दीवार पर आंखें फेरती वह ऐसी धीर-मन्थर गति से अग्रसर हो रही थी, जैसे किसी फौजी टुकड़ी का निरीक्षण कर रही हो। क्या पता, किसी खूंटी पर टंगा पति का कोई खादी का कुर्ता ही दिख जाए कोई तस्वीर या कोई और प्रणय चिह्न!

दूसरे बेडरूम में एक आबनूसी चौकी पर स्वामी रामतीर्थ, मां और विवेकानन्द की तीन तस्वीरों के नीचे, एक अगरबत्ती जल रही थी। दीवार पर मां और नाना की एक बड़ी-सी तस्वीर टंगी थी, तस्वीर का सुनहला जड़ाऊ चौखट बरबस आंखें बांध लेता था। पितृगृह से पलायन के पूर्व, मां इसे अपने सूटकेस में छिपा लाई थी। मखमली गद्दीदार कुर्सी पर नाना बैठे थे, उनके पैरों के पास बैठी थी राजलक्ष्मी, और उसीके पीछे खड़ी थी मदाम। उस चित्र में उसके मातृपक्ष का वैभव जीवन्त हो उठा था। धोती की चुन्नटों से लेकर रेशमी कुर्ते की सरसराती तरंगों में कुर्सी पर तनकर बैठे उस व्यक्तित्व-सम्पन्न जोतदार का वैभव-उन्माद छलछलाकर देखने वाले को अब भी अभिभूत कर देता था। दोनों घुटनों पर हाथ धरे नाना मुस्करा रहे थे। बालों को किसी शृंगार-कुशला वारवनिता की ही भांति, पट्टियां में काट, बाईं ओर की मांग सवार विभक्त किया गया था। काली-सघन मूछें थीं विलासी तरुण की, किन्तु बड़ी-बड़ी आंखों में था किसी ससार-त्यागी का वैराग्य। पतली नाक वैसी ही थी, जैसी रविवर्मा के चित्रों के नायक की हुआ करती थी। पायदान पर धर चमकते श्मश्रु के अग्रभाग में लगी, हिटलर की मूछों-सी तितली चित्र में भी सतर खड़ी थी। घुटनों पर दोनों हाथ शायद हीरे-पोखराज की अंगूठियों के प्रदर्शन के लिए ही धरे गए थे, आसपास धरे दो गमलों में पास की पत्तियां गिर के हैना-सी फल गई थी। किशोरी राजलक्ष्मी के पीछे मदाम खड़ी थी। उनके आलपाके के गाउन पर छपे अंगूर ने बड़े-बड़े गुच्छों और अंगूरी पत्तों के बीच, एक बड़ा-सा ब्रोच लगा था। बालों के विक्टोरियन ऊंचे जूड़े

साथ वह उठ गई, "आइए, दिखा दूँ—बड़ा कमरा तो एक यही है, पर एक छोटा-सा बेडरूम और भी है, एक किचन, एक स्टोर, एक बाथरूम और एक छोटा-सा बरामदा भी है।"

विनीता जी की बड़ी-बड़ी आंखों की पुतलियां फिर उसी कुटिलता से सकुचित हो गईं, किसी अनुभवी सी० आई० डी० की-सी उनकी समग्र जिज्ञासा, उन कुटिल पुतलियों की नोक पर आकर चमकने लगी। इधर-उधर, प्रत्येक ओने-कोने दीवार पर आंखें फेरती वह ऐसी धीर-मन्थर गति से अग्रसर हो रही थीं, जैसे किसी फौजी टुकड़ी का निरीक्षण कर रही हों। क्या पता, किसी खूंटी पर टंगा पति का कोई खादी का कुर्त्ता ही दिख जाए कोई तस्वीर या कोई और प्रणय चिह्न!

दूसरे बेडरूम मे एक आबनूसी चौकी पर स्वामी रामतीर्थ, मां और विवेकानन्द की तीनतस्वीरों के नीचे, एक अगरबत्ती जल रही थी। दीवार पर मां और नाना की एक बड़ी-सी तस्वीर टंगी थी, तस्वीर का सुनहला जड़ाऊ चौखट बरबस आंखें बांध लेता था। पितृगृह से पलायन के पूर्व, मां इसे अपने सूटकेस में छिपा लाई थी। मखमली गद्दीदार कुर्सी पर नाना बैठे थे, उनके पैरों के पास बैठी थी राजलक्ष्मी, और उसीके पीछे खड़ी थी मदाम। उस चित्र में उसके मातृपक्ष का वैभव जीवन्त हो उठा था। धोती की चुन्नटों से लेकर रेशमी कुर्त्ते की सरसराती तरंगों में कुर्सी पर तनकर बैठे उस व्यक्तित्व-सम्पन्न जोतदार का वैभव-उन्माद छलछलाकर देखने वाले को अब भी अभिभूत कर देता था। दोनों घुटनों पर हाथ धरे नाना मुस्करा रहे थे। बालों को किसी शृंगार-कुशला वारवनिता की ही भांति, पट्टियां में काट, बाईं ओर की मांग सधार विभक्त किया गया था। काली-सघन मूछें थीं विलासी तरुण की, किन्तु बड़ी-बड़ी आंखों में था किसी संसार-त्यागी का वैराग्य। पतली नाक वैसी ही थी, जैसी रविवर्मा के चित्रों के नायक की हुआ करती थी। पायदान पर धरे चमकते पम्पशू के अग्रभाग मे लगी, हिटलर की मूछों-सी तितली चित्र में भी सतर खड़ी थी। घुटनों पर दोनों हाथ शायद हीरे-पोखराज की अंगूठियों के प्रदर्शन के लिए ही धरे गए थे, आसपास धरे दो गमलों में पास की पत्तियां गिद्ध के डैनों-सी फैल गई थीं। किशोरी राजलक्ष्मी के पीछे मदाम खड़ी थी। उनके आलपाके के गाउन पर छपे अंगूर के बड़े-बड़े गुच्छों और अंगूरी पत्तों के बीच, एक बड़ा-सा ब्रोच लगा था। बालों के विक्टोरियन ऊंचे जूड़े

चित्र नहीं दिया तुमे ? नहीं है क्या ?"

"जी नहीं, उन्हें चित्र खिंचवाना अच्छा नहीं लगता।"

'मैंने देखा है, मम्मी आकाशवाणी के नेशनल प्रोग्राम के साथ एक बार उनका बड़ा सुन्दर चित्र छपा था—एकदम मिस से मिलता है उनका चेहरा।"

'हूं, यही तो मैं सोच रही थी, तुम्हारी मां से तो तुम्हारा चेहरा एकदम नहीं मिलता," फिर एक बार सदिग्ध दृष्टि से चित्र को घूरती वह बरामदे का रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। इस गृह में आते ही, उनके पति के सधिपत्र पर हुए हस्ताक्षर फिर धूमिल हो गए। इस बित्ते-भर की छोकरी की उपस्थिति में वह क्यों अपने को इतना क्लान्त, विवश और असहाय अनुभव करने लगी थी। क्यों, एक अनामा आशका उन्हें अकारण ही प्रतिपल विचलित कर रही थी ? कौन उनका अन्त करण की अगला बार-बार खटखटाकर कह जाता था— यही है तेरी सौत, तेरी सौत !' एक बार उसके पिता के किसी जमन उद्योगपति मित्र ने उसका हाथ देखकर कहा था—'गाडोदिया, तुम्हारी पुत्री जन्म से ही साइकिक शक्ति लेकर पृथ्वी पर आई है—इसकी अद्भुत अन्तर्दृष्टि, इसे सदा पग-पग पर आ गए खदक-गड्ढों से बचाती रहेगी—इसीसे भविष्य रहेगा सदा उज्ज्वल, किन्तु दपण पर प्रतिबिम्बित हो रही दुघटनाओं की आशकाजनित चिन्ता का सरदद भी इसे नित्य बना रहेगा।' मि० ब्रेन्सन की पिता को लेकर की गई एक नहीं अनेक भविष्यवाणियां सत्य साबित हुई थी। उन्होंने विनीता की यह रेखा ठीक ही पढ़ी थी। उसके इस बार समय से पूव आ जाने का कारण भी यही था। एक महत्त्वपूर्ण मीटिंग को छोड़ वह रात ही त्रिचूर से उड़कर लखनऊ आ गई थी। आकर उसने ठीक ही किया था। दिनकर के विरुद्ध उन दिनों सशक्त विरोधी दलों की सम्मिलित शक्ति का गहरा षड्यन्त्र चल रहा था, न वह ठीक से सो पा रहा था न खा-पी ही रहा था। डॉक्टरों को बुला, विनीता जी ने उसके शरीर के एक-एक अंग की जांच करवा ली थी, कानपुर से हृदय-रोग विशेषज्ञ को बुलाकर, उन्होंने हृदय की भी पूरी जांच करवाई। डाक्टरों ने दस-बारह दिन बिस्तर से न हिलने की राय दी थी। मानसिक तनाव और शारीरिक क्लान्ति के अतिरिक्त उन्हें कोई ऐसी चिन्ताजनक बात नहीं दिखाई दी। सुनते ही विनीता जी ने पति को लक्ष्मण रेखा में घरकर मूंद दिया कैसा भी कोई मिलने वाला क्यों न आए, वह किसीको भीतर नहीं जाने देती। पति के सिरहाने बैठकर वह उनकी सारी

चित्र नहीं दिया तुमने ? नहीं है क्या ?"

"जी नहीं, उन्हें चित्र खिंचवाना अच्छा नहीं लगता।"

'मैंने देखा है, मम्मी आकाशवाणी के नेशनल प्रोग्राम के साथ एक बार उनका बड़ा सुन्दर चित्र छपा था—एकदम मिस से मिलता है उनका चेहरा।"

'हूं, यही तो मैं सोच रही थी, तुम्हारी मां से तो तुम्हारा चेहरा एकदम नहीं मिलता," फिर एक बार सदिग्ध दृष्टि से चित्र को घूरती वह बरामदे का रौलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। इस गृह में आते ही, उनके पति के संधिपत्र पर हुए हस्ताक्षर फिर धूमिल हो गए। इस बित्ते-भर की छोकरी की उपस्थिति में वह क्यों अपने को इतना क्लान्त, विवश और असहाय अनुभव करने लगी थी। क्यों, एक अनामा आशंका उन्हें अकारण ही प्रतिपल विचलित कर रही थी ? कौन उनका अन्तःकरण की अर्गला बार-बार खटखटाकर कह जाता था—यही है तेरी सौत, तेरी सौत !' एक बार उसके पिता के किसी जर्मन उद्योगपति मित्र ने उसका हाथ देखकर कहा था—"गाडोदिया, तुम्हारी पुत्री जन्म से ही साइकिक शक्ति लेकर पृथ्वी पर आई है—इसकी अद्भुत अन्तर्दृष्टि, इसे सदा पग-पग पर आ गए खंदक-गड्ढों से बचाती रहेगी—इसीसे भविष्य रहेगा सदा उज्ज्वल, किन्तु दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही दुर्घटनाओं की आशंकाजनित चिन्ता का सरदर्द भी इसे नित्य बना रहेगा।' मि० ब्रेन्सन की पिता को लेकर की गई एक नहीं अनेक भविष्यवाणियां सत्य साबित हुई थीं। उन्होंने विनीता की यह रेखा ठीक ही पढ़ी थी। उसके इस बार समय से पूर्व आ जाने का कारण भी यही था। एक महत्त्वपूर्ण मीटिंग को छोड़ वह रात ही त्रिचूर से चलकर लखनऊ आ गई थी। आकर उसने ठीक ही किया था। दिनकर के विरुद्ध उन दिनों सशक्त विरोधी दलों की सम्मिलित शक्ति का गहरा षड्यन्त्र चल रहा था, न वह ठीक से सो पा रहा था न खा-पी ही रहा था। डॉक्टरों को बुला, विनीता जी ने उसके शरीर के एक-एक अंग की जांच करवा ली थी, कानपुर से हृदय-रोग विशेषज्ञ को बुलाकर, उन्होंने हृदय की भी पूरी जांच करवाई। डाक्टरों ने दस-बारह दिन बिस्तर से न हिलने की राय दी थी। मानसिक तनाव और शारीरिक क्लान्ति के अतिरिक्त उन्हें कोई ऐसी चिन्ताजनक बात नहीं दिखाई दी। सुनते ही विनीता जी ने पति को लक्ष्मण रेखा में घेरकर मूंद दिया कैसा भी कोई मिलने वाला क्यों न आए, वह किसीको भीतर नहीं जाने देती। पति के सिरहाने बैठकर वह उनकी सारी

परफ्यूम्स बहुत अच्छे लगते हैं।"

"वाह जी, वाह, हम क्यों लें ! मम्मी हमारे लिए भी तो लाई हैं आप जब कल आएंगी तब दिखाऊंगी।"

चतुरा मिनी बातों ही बातों में उसके पुन आने का समर्थन उसीके मुह से सुनना चाह रही थी।

; मिनी" इस बार सुरगमा का स्वर दृढ था मुझे दु ख है, मैं अब तुम्हें पढाने नहीं आ पाऊगी। मेरा काम इधर बहुत बढ गया है वैसे भी मैंने तुम्हारा पूरा कोर्स रिवाइज करवा दिया है। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे बिना भी बडी आसानी से अब स्वय पढ सकती हो "

'सुन रही हो मम्मी, मैं कैसे पढ सकती हू ? आधी फिजिक्स पडी है आप कहिए ना " मिनी रुआसी हो गई।

विनीताजी ने इसी बीच पुत्री की समस्या का नया समाधान ढूढ लिया था, ~ देव होकर उन्होंने सुरगमा के दोनो हाथ थाम लिए, 'देखो सुरगमा तुम क्यों नही आना चाह रही हो, मुझे बेबी ने बता दिया है। तुम्हें उनके कहने का बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम तो देख ही रही हो, वह क्या हमारी-तुम्हारी तरह ठन्सो पाते हैं ? न समय पर खाना-पीना न समय पर नींद। रात-रात भर जगकर फाइल देखते रहते हैं। जिनके सर पर दिन रात काटो का ताज धरा रहे वह यदि कभी चिडचिडाकर कुछ कह भी दे तो उसे अन्यथा नही लेना चाहिए। फिर इधर उनकी तबीयत जरा भी ठीक नही है। बुरा मत मानना सुरगमा, पर शायद तुम्हे हमारे घर आकर पढाने में ही आपत्ति है, क्यो ? मैं जानती हू तुम मिनी को बहुत प्यार करती हो और यह कभी नही चाह सकती कि उसका परीक्षा फल बिगड जाए। कल से मिनी स्वय ही तुम्हारे घर पढने आया करेगी। मुहम्मद अगर कुए के पास नहीं आ सकते तो कुआ ही प्यासे मुहम्मद के पास आएगा, क्यो है ना बेबी ?" विनीताजी फिर बिना सुरगमा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए ही उठ गई।

'चल बेबी, सात बजे तेरे डैडी को सूप देना है, साढे छह यहीं बज गए—बस, यही तय रहा सुरगमा, कल से तुम्हारी शिष्या यहीं पढने आया करेगी।'

अनमनी-सी सुरगमा बिना कुछ कहे, बिना किसी अभ्यर्थना के वहीं खडी रह गई थी। जिस गृह से वह हृदय दृढ कर नाता तोड चुकी थी वही उसे देखते ही

परफ्यूम्स बहुत अच्छे लगते हैं।"

"वाह जी, वाह, हम क्यो ले ! मम्मी हमारे लिए भी तो लाई है आप जब ऊल आएगी तब दिखाऊगी।"

चतुरा मिनी बातो ही बातो मे उसके पुन आने का समर्थन उसीके मुह से सुनना चाह रही थी।

, मिनी" इस बार सुरगमा का स्वर दृढ था मुझे दु ख है, मैं अब तुम्हे पढाने नहीं आ पाऊगी। मेरा काम इधर बहुत बढ गया है वैसे भी मैंने तुम्हारा पूरा कोर्स रिवाइज करवा दिया है। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे बिना भी बडी आसानी से अब स्वय पढ सकती हो "

'सुन रही हो मम्मी, मैं कसे पढ सकती हू ? आधी फिजिक्स पडी है आप कहिए ना " मिनी रुआसी हो गई।

विनीताजी ने इसी बीच पुत्री की समस्या का नया समाधान ढूढ लिया था, ~ टेव होकर उन्होंने सुरगमा के दोनो हाथ थाम लिए, 'देखो सुरगमा तुम क्यों नहीं आना चाह रही हो, मुझे बेबी ने बता दिया है। तुम्हे उनके कहने का बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम तो देख ही रही हो, यह क्या हमारी-तुम्हारी तरह उठ-सो पाते हैं ? न समय पर खाना-पीना न समय पर नींद। रात-रात भर जगकर फाइल देखत रहते हैं। जिनके सर पर दिन रात काटो का ताज धरा रहे वह यदि कभी चिडचिडाकर कुछ कह भी दे तो उसे अन्यथा नही लेना चाहिए । फिर इधर उनकी तबीयत ज़रा भी ठीक नही है। बुरा मत मानना सुरगमा, पर शायद तुम्हे हमारे घर आकर पढाने मे ही आपत्ति है, क्यो ? मैं जानती हू तुम मिनी को बहुत प्यार करती हो और यह कभी नही चाह सकती कि उसका परीक्षा फल बिगड जाए। कल से मिनी स्वय ही तुम्हारे घर पढने आया करेगी। मुहम्मद अगर कुए के पास नहीं आ सकते तो कुआ ही प्यासे मुहम्मद के पास आएगा, क्यो है ना बेबी ?" विनीताजी फिर बिना सुरगमा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए ही उठ गई।

'चल बेबी, सात बजे तेरे डैडी को सूप देना है, साढे छह यहीं बज गए—बस, यही तय रहा सुरगमा, कल से तुम्हारी शिष्या यही पढने आया करेगी।'

अनमनी-सी सुरगमा बिना कुछ कहे, बिना किसी अभ्यथना के वही खडी रह गई थी। जिस गृह से वह हृदय दृढ कर नाता तोड चुकी थी वही उसे देखत ही

' देखा, इसे कहते हैं गुरुभक्ति, मैं छुट्टी दूँ, तब भी मेरी शिष्या मुझे छोडकर नही जाएगी !"

' तब ठीक है तू चटपट पढा ले, फिर मैं तुझे घर ले जाऊगी—कितनी सारी बातें जमा है—यू हैव वाल्यूम्स टू लिसन, आई एम सो हैप्पी—सो हैप्पी।" वह दोनों पर ऊपर कर तखत पर पद्मासन्न मुद्रा म बैठ गई, आनन्द उसके ललाट, उज्ज्वल आखो, नासिकाग्र से झर झर बहता पूरे कमरे को भिगो रहा था।

"चल-चल पढा जल्दी और छुट्टी कर।" उसने ऐसे अधैर्य से कहा, जसे उन दो सखिया के बीच मिनी कोई बडा सा रोडा बनकर अटक गई हो।

मिनी का चेहरा कुछ मलिन हो गया है, यह सुरगमा ने देख लिया, "तुम तब तक य सम' करो मिनी मैं चाय का पानी चढा आऊ " उसकी पीठ पर स्नेह का हाथ सहला वह जाने लगी तो मीरा भी उसके पीछे चल दी।

' लुक हियर मिस जोशी, कुछ दाल म काला तो नहा है यार !" उसने सुरगमा का चिबुक थाम लिया। अकारण ही सुरगमा के कणमूल तक व्रीडा का अगराग फलता पूरे चेहरे को अबीरी बना गया।

मतलब ?" वह चिबुक से मीरा का हाथ हटा फिर गैस जलान झुक गई।

"मतलब यही है डार्लिंग, कि जब स नैनीताल से लौटी हो, हम तुम्हे बराबर देख रहे हैं। देवदार की हवा तुम्ह बहुत माफिक गई है "

'चल हट, हर वक्त यह बेकार का मज़ाक अच्छा नही लगता कही किसीने सुन लिया तब ?"

' तब यह बेकार का मज़ाक तुम्हे बार बार बीरबहूटी क्यो बना देता है जी ! और जहा तक सुनने की बात है वही आगाह करने तो आज यहा आई हू। तेरी नैनीताल-यात्रा को लेकर लाग बातें करन लगे है। दिनकरजी के शत्रु भी तो कम नही हैं। आते ही सुना तो सोचा, तुझे जाकर बता आऊ यू हैव टु बी वेरी केयर-फुल, वेरी-वेरी केयरफुल आजकल लोग जेबो म टेप लिए घूमते हैं समझी ?"

'मीरा तू क्या मेरा विश्वास नही करती।" सुरगमा के ओठ थरथराने लगे "जब से नैनीताल से लौटी हू सिफ एक बार उस कोठी मे पाव रखा है, मैंने तो ट्यूशन भी छाड दिया था विनीताजी खुद ही आकर गिडगिडाने लगी, तब से मिनी यही आकर पढ जाती है।",

मीरा न कुछ कहा नही किन्तु जिस दृष्टि से उसन अपनी सखी को देखा

'देखा, इसे कहते है गुरुभक्ति, मैं छुट्टी दू, तब भी मेरी शिष्या मुझे छोडकर नही जाएगी।"

'तब ठीक है तू चटपट पढा ले, फिर मैं तुझ घर ले जाऊगी—कितनी सारी बातें जमा है—यू हैव वाल्यूम्स टू लिसन, आई एम सो हैप्पी—सो हैप्पी।" वह दोनो पर ऊपर कर तखत पर पद्मासन्न मुद्रा म बैठ गई, आनन्द उसके ललाट, उज्ज्वल आखो, नासिकाग्र से झर झर बहता पूरे कमरे को भिगो रहा था।

"चल-चल पढा जल्दी और छुट्टी कर।" उसने ऐसे अधैर्य से कहा, जसे उन दो सखिया के बीच मिनी कोई बडा सा रोडा बनकर अटक गई हो।

मिनी का चेहरा कुछ मलिन हो गया है, यह सुरगमा ने देख लिया, "तुम तब तक य सम' करो मिनी मैं चाय का पानी चढा आऊ" उसकी पीठ पर स्नेह का हाथ सहला वह जाने लगी तो मीरा भी उसके पीछे चल दी।

'लुक हियर मिस जोशी, कुछ दाल म काला तो नहीं है यार।" उसने सुरगमा का चिबुक थाम लिया। अकारण ही सुरगमा के कणमूल तक व्रीडा का अगराग फलता पूरे चेहरे को अबीरी बना गया।

मतलब?" वह चिबुक से मीरा का हाथ हटा फिर गैस जलाने चुक गई।

"मतलब यही है डार्लिंग, कि जब स नैनीताल से लौटी हो, हम तुम्हे बराबर देख रहे हैं। देवदार की हवा तुम्ह बहुत माफिक गई है"

'चल हट, हर वक्त यह बेकार का मजाक अच्छा नही लगता कही किसीने सुन लिया तब?"

'तब यह बेकार का मज़ाक तुम्हे बार बार बीरबहूटी क्यो बना देता है जी! और जहा तक सुनने की बात है वही आगाह करने तो आज यहा आई हू। तेरी नैनीताल-यात्रा को लेकर लोग बातें करन लगे है। दिनकरजी के शत्रु भी तो कम नहीं हैं। आते ही सुना तो सोचा, तुझे जाकर बता आऊ यू हैव टू बी वेरी केयरफुल, वेरी-वेरी केयरफुल आजकल लोग जेबो म टेप लिए घूमते हैं समझी?"

'मीरा तू क्या मेरा विश्वास नहीं करती।" सुरगमा के ओठ थरथराने लगे "जब से नैनीताल से लौटी हू सिफ एक बार उस कोठी मे पाव रखा है, मैंने तो ट्यूशन भी छोड दिया था विनीताजी खुद ही आकर गिडगिडाने लगी, तब से मिनी यही आकर पढ जाती है।"

मीरा न कुछ कहा नही किन्तु जिस दृष्टि से उसन अपनी सखी को देखा

छुट्टी लेकर कानपुर निकल गई थी, यहा रहती तो मिनी उसे स्वय आकर खीच ले जाती। दिन-भर कानपुर घूमकर वह रात को लौटी। मिनी के जन्मदिन का उपहार उसने कागज मे लपेट सिरहाने रख दिया था। कल आएगा, तो उसे यही थमाकर कह देगी, 'मुझे अचानक ही दौरे पर जाना पडा मिनी, इसी से नही आ पाई।' हाथ-मुह धोकर नाइटी पहन वह खिडकी के पास आ खडी हुई ही थी, कि उसकी दृष्टि द्वार के पास पडे एक पैकेट पर पडी। प्राय ही डाकिया द्वार की दरार से उसको चिट्ठिया सरका जाता था। एक बडे-से लिफाफे म अपना टाइप्ड पता देख, उसन लिफाफा खोला, शायद किसी कम्पनी का कलेण्डर था। पैकिंग बडे यत्न से की गई थी, दोना ओर से दो गत्ते के मोटे टुकडो के बीच सैंडविच सी तस्वीर खुलकर उसके हाथा म आई तो वह खडी नही रह पाई। उसे लगा, वह एक बार फिर उस निजन अरण्य के प्रस्तर खण्ड पर बैठी थरथरा रही है, और उसके कपोल से अधर सटाकर किसीकी भारी आवाज कह रही है, 'मुझे आज अपने उसी प्रिय चित्र की माडल मिल गई है, सुरगमा।' तख्त पर बैठकर सुरगमा ने ध्यान से चित्र को देखा। क्या वह उस दिन ऐसी ही लग रही थी? गीली-सफेद लाल पाड की साडी म झाकता उसका उन्मुक्त यौवन भी क्या उस दिन इतना ही निलज्ज बन गया था? भीगी लटें, साडी की आद्र भाजो से झाकते विद्रोही स्तनयुगल और चेहरे पर समपण का वह अद्भुत सन्तुष्ट स्मित! वह जीण चित्र शायद भेजने वाले ने किसी पुस्तक की भाज से ही निकालकर भेजा था। न कही भेजने वाले का नाम था, न पता, फिर भी सुरगमा उस चित्रकार की एक एक रेखा म भेजने वाले के हस्ताक्षर पढ चुकी थी। न जाने कब तक वह पागल-सी उस चित्र का हाथ म लिए बैठी ही रही। यह क्या हो गया था भगवान, यह कैसा क्रूर परिहास था विधाता का! क्या इस चित्र के माध्यम से वह अपने उस दिन के अभद्र व्यवहार के लिए मूक क्षमा-याचना कर उस अधूरे अनचाहे प्रकरण का सूत्र फिर पकडना चाह रहा था? एक बार जी म आया, तस्वीर फाड-कर खिडकी से बाहर फेंक दे पर ऐसा वह अन्त तक कर नही पाई। सूटकेस की तह म उसे छिपा चुपचाप आकर लेट गई। लेटते ही मीरा की अन्तिम बार दी गई चेतावनी उसके कानो मे तीव्र होकर गूजने लगी।

दूसरे दिन मिनी नही आई, ड्राइवर ही आकर उसकी चिट्ठी दे गया था, 'आप मेरे जन्म दिन पर नही आईं ना, इसीसे मुझे बुखार आ गया, आज मैं नही

छुट्टी लेकर कानपुर निकल गई थी, यहा रहती तो मिनी उसे स्वय आकर खीच ले जाती। दिन-भर कानपुर घूमकर वह रात को लौटी। मिनी के जन्मदिन का उपहार उसने कागज मे लपेट सिरहाने रख दिया था। कल आएगा, तो उसे यही थमाकर कह देगी, 'मुझे अचानक ही दौरे पर जाना पडा मिनी, इसी से नही आ पाई।' हाथ-मुह धोकर नाइटी पहन वह खिडकी के पास या खडी हुई ही थी, कि उसकी दृष्टि द्वार के पास पडे एक पैकेट पर पडी। प्राय ही डाकिया द्वार की दरार से उसको चिट्ठिया सरका जाता था। एक बडे-से लिफाफे म अपना टाइप्ड पता देख, उसन लिफाफा खोला, शायद किसी कम्पनी का कलेण्डर था। पैकिंग बडे यत्न से की गई थी, दोनो ओर से दो गत्ते के मोटे टुकडो के बीच सैंडविच सी तस्वीर खुलकर उसके हाथा म आई तो वह खडी नही रह पाई। उसे लगा, वह एक बार फिर उस निजन अरण्य के प्रस्तर खण्ड पर बैठी थरथरा रही है, और उसके कपोल से अधर सटाकर किसीकी भारी आवाज कह रही है, 'मुझे आज अपने उसी प्रिय चित्र की माडल मिल गई है, सुरगमा।' तखत पर बैठकर सुरगमा ने ध्यान से चित्र को देखा। क्या वह उस दिन ऐसी ही लग रही थी? गीली-सफेद लाल पाड की साडी म झाकता उसका उन्मुक्त यौवन भी क्या उस दिन इतना ही निलज्ज बन गया था? भीगी लटें, साडी की आद्र भाजो से झाकते विद्रोही स्तनयुगल और चेहरे पर समपण का वह अद्भुत सन्तुष्ट स्मित! वह जीण चित्र शायद भेजने वाले ने किसी पुस्तक की भाज से ही निकालकर भेजा था। न कही भेजने वाले का नाम था, न पता, फिर भी सुरगमा उस चित्रकार की एक एक रेखा म भेजने वाले के हस्ताक्षर पढ चुकी थी। न जाने कब तक वह पागल-सी उस चित्र का हाथ म लिए बैठी ही रही। यह क्या हो गया था भगवान, यह कैसा क्रूर परिहास था विधाता का! क्या इस चित्र के माध्यम से वह अपने उस दिन के अभद्र व्यवहार के लिए मूक क्षमा-याचना कर उस अधूरे अनचाहे प्रकरण का सूत्र फिर पकडना चाह रहा था? एक बार जी म आया, तस्वीर फाडकर खिडकी से बाहर फेंक दे पर ऐसा वह अन्त तक कर नही पाई। सूटकेस की तह म उसे छिपा चुपचाप आकर लेट गई। लेटते ही मीरा की अन्तिम बार दी गई चेतावनी उसके कानो मे तीव्र होकर गूजने लगी।

दूसरे दिन मिनी नही आई, ड्राइवर ही आकर उसकी चिट्ठी दे गया था, 'आप मेरे जन्म दिन पर नही आईं ना, इसीसे मुझे बुखार आ गया, आज मैं नही

'कल कितनी बार मना किया था बेबी, कि इत्ती कुल्फी मत खा, पर तू कब मेरा कहना मानती है! अब इम्तहान नज़दीक आ रहे हैं और तू बीमार पड गई है। मम्मी भी आज जा रही हैं।'

विनीताजी किसी अभागे नौकर पर बरसे चली जा रही थी, 'कितनी बार समझाया था कि बिना मरकरी से साडियां लिए मत आना। अब कहता है मैं क्या करूं, दुकान बन्द हो गई थी। पाचो अच्छी साडियां वही रह गइ। अब जा भाग, दुकान खुलवाकर मेरी साडियां अभी ला। समझा? मैं कुछ नही जानती।"

उसे समझाकर वह फिर उसी तनी मुद्रा म भीतर आइ। पुत्री के सिरहाने खडे पति को उन्होंने एक बार घूरा फिर धम्म से कुर्सी पर बैठकर वह बडबडाने लगी 'कही जाना भी हो तो कभी इस घर से निश्चिन्त होकर नही निकल पाती। सब पैकिंग पडी है, साडियां लाया ही नही। पता नही दुनिया भर के उजबक छाट छाटकर तुमन न जाने कहा स भर लिए है। कितनी बार कहा है कि कम से कम एक नौकर तो ढग का ढूढ लो मन्त्री के नौकर क्या बन गए, हरामखोर अपने को भी मन्त्री ही समझने लगे ह।" क्षण-भर पूव कमरे मे छिटकी आनन्द की ज्योत्स्ना विनीताजी के आते ही विलुप्त हो गई।

सुरगमा मिनी के सिरहाने हाथ का पैकेट रखकर उठ गई "मैं अब चलू मिनी, जब तबीयत एकदम ठीक हो जाए तब ही पढने आना, अच्छा!" फिर विनीताजी को औपचारिक नमस्कार कर उसने वही मुदे हाथ दिनकर की ओर फेरे और पर्दा खोलकर बाहर निकल गई। विनीताजी के भयानक मूड का पारा उतरा नही था इसीलिए उन्होने मुह खोलकर यह भी नही कहा कि स्टाफ कार सुरगमा को छोड देगी। दिनकर पुत्री का माथा सहलाते रहे। पति की कठोर मुखमुद्रा देखकर फिर वह स्वय रुआसी हो गई सुरगमा को उसने नहा रोका और उसीकी उपस्थिति म उससे भला-बुरा कह गई। तब ही क्या वह उससे अप्रसन्न हो गया था? उस दिन पहली बार पति और पुत्री को छोडकर जाने म उसे न जाने कसा लग रहा था जी म आ रहा था त्रिचूर तार कर अपने न आ पाने की सूचना दे दे, किन्तु जहा वह अपने वातानुकूलित डिब्बे म बैठी और ट्रेन चली, वह सब भूल गई। उसका यायावर भ्रमणशील चित्त त्रिचूर के नये बन रहे आश्रम की योजना म उलझ गया।

'कल कितनी बार मना किया था बेबी, कि इत्ती कुल्फी मत खा, पर तू कब मेरा कहना मानती है ! अब इम्तहान नज़दीक आ रहे हैं और तू बीमार पड गई है। मम्मी भी आज जा रही हैं।'

विनीताजी किसी अभागे नौकर पर बरसे चली जा रही थीं, 'कितनी बार समझाया था कि बिना मरकरी से साडिया लिए मत आना। अब कहता है मैं क्या करू, दुकान बन्द हो गई थी। पाचो अच्छी साडिया वही रह गइ। अब जा भाग, दुकान खुलवाकर मेरी साडिया अभी ला। समभा ? मैं कुछ नही जानती।"

उसे समभाकर वह फिर उसी तनी मुद्रा म भीतर आइ। पुत्री के सिरहाने खडे पति को उन्होने एक बार घूरा फिर धम्म से कुर्सी पर बैठकर वह बडबडाने लगी 'कही जाना भी हो तो कभी इस घर से निश्चिन्त होकर नही निकल पाती। सब पैकिंग पडी है, साडिया लाया ही नही। पता नही दुनिया भर के उजबक छाट छाटकर तुमने न जाने कहा स भर लिए है। कितनी बार कहा है कि कम से कम एक नौकर तो ढग का ढूढ लो मन्त्री के नौकर क्या बन गए, हरामखोर अपने को भी मन्त्री ही समझने लगे ह।" क्षण-भर पूव कमरे मे छिटकी आनन्द की ज्योत्स्ना विनीताजी के आते ही विलुप्त हो गई।

सुरगमा मिनी के सिरहाने हाथ का पैकेट रखकर उठ गई "मैं अब चलू मिनी, जब तबीयत एकदम ठीक हो जाए तब ही पढने आना, अच्छा !" फिर विनीताजी को औपचारिक नमस्कार कर उसने वही मुदे हाथ दिनकर की ओर फेरे और पर्दा खोलकर बाहर निकल गई। विनीताजी के भयानक मूड का पारा उतरा नही था इसीलिए उन्होने मुह खोलकर यह भी नही कहा कि स्टाफ कार सुरगमा को छोड देगी। दिनकर पुत्री का माथा सहलाते रहे। पति की कठोर मुखमुद्रा देखकर फिर वह स्वय रुआसी हो गई सुरगमा को उसने नहा रोका और उसीकी उपस्थिति म उससे भला-बुरा कह गई। तब ही क्या वह उससे अप्रसन्न हो गया था ? उस दिन पहली बार पति और पुत्री को छोडकर जाने म उसे न जाने कसा लग रहा था जी म आ रहा था त्रिचूर तार कर अपने न आ पाने की सूचना दे दे, किन्तु जहा वह अपने वातानुकूलित डिब्बे म बैठी और ट्रेन चली, वह सब भूल गई। उसका यायावर भ्रमणशील चित्त त्रिचूर के नये बन रहे आश्रम की योजना म उलझ गया।

निर्भीक तनी बैठी रही, फिर उसने अकारण हीं काल्पनिक नौकरों के नाम पुकार-पुकार द्वार खटखटा रहे दस्यु को सहमाकर भगा दिया था, 'किशनसिंह, माली, देखो जरा कौन कुण्डी खटखटा रहा है, बडे साहब को भी जगा दो पापा, पापा।' फिर कुण्डी नही खटकी पर वह सो नही पाई थी। आसपास कोई प्रतिवेशी नही थे, उस निर्जन परिवेश मे कोई उसका गला घोंटकर बडी आसानी से उसकी मृतदेह खिडकी से बहती गोमती मे बहा सकता था, मीरा कई बार उसे किसी छात्रा या अध्यापिका को पेइंगगेस्ट बना साथ रखने का सुझाव दे चुकी थी, किन्तु सुरगमा अपने एकान्त मे किसी प्रकार का व्याघात नहीं चाहती थी। उसके गृह का सुदृढ दुर्ग सा ढाचा ही उसका सबसे सशक्त आयुध था। लगता था चारा ओर ऊबड-खाबड चट्टानो से घिरा वह मकान किसी बुन्देलखण्डी दुर्ग का नक्शा लेकर ही बनवाया गया है। द्वारों पर भी वैसे ही मोटे-मोटे पीतल के कब्जे-कुण्डे जडे थे, उन्ह कोई तोडना भी चाहता, तो शायद भीम की गदा के बिना नही तोड सकता था। किन्तु जिस दिन से उसकी वह रहस्यमयी कुण्डी खटकी थी, उस दिन से उसका साहस स्वय ही हिल गया था पत्ता भी फडकता तो वह उठ बैठती। एक दिन ऐसी ही निद्राहीन विभावरी मे उसे वैरोनिका की स्मृति ने घेर लिया। उस कुछ-कुछ याद रह गए लाल बगले को तो वह अब भी ढूढ सकती थी, क्या पता वह विजातीय महिला, जिसने कभी उसे जननी के गर्भ से ही अपना उदार स्नेहपूर्ण सरक्षण दिया था, आज भी जीवित हो! यदि मिल गई तो फिर वह उसके पैरों पर सर रखकर अपने साथ ले आएगी। इस भयावह बगले का एकान्त फिर उतना भयावह नहीं रह जाएगा। दूसरे दिन बैंक से लौटते ही वह उस लाल बगले की खोज म निकल गई थी। उसे आज भी याद था कि वह बगला चारों ओर से ब्यूगनवोलिया के कागजी फूलो से घिरा था, सामने एक लौण्ड्री थी और उसीके पास एक हैण्ड-पम्प था। उसकी सबसे बडी पहचान थी, सम्मुख खडी एक लखौरी इटों की जीर्ण चौमजिली खडहर-सी हवेली जिसकी चारा मजिलो मे कितने ही दरिद्र परिवार अपनी फटी गुदडिया सुखाते रहते और उनकी कबूतरो की-सी गुटरगू सडक तक गूजती थी। बडी देर तक भटकने पर उसने जब वह बगला ढूढा तब अधेरा घिर आया था। खडहर हवेली अब भी थी किन्तु अब उसकी चारों मजिलों का अर्द्धांग टूटी ईंटों मे नीचे बिखरा पडा था। दो-तीन नई चमचमाती दुकानों को देख पहले वह उस बगले को पहचान नही सकी थी फिर उस

निर्भीक तनी बैठी रही, फिर उसने अकारण ही काल्पनिक नौकरों के नाम पुकार-पुकार द्वार खटखटा रहे दस्यु को सहमाकर भगा दिया था, 'किशनसिंह, माली, देखा जरा कौन कुण्डी खटखटा रहा है, बडे साहब को भी जगा दो पापा, पापा।' फिर कुण्डी नही खटकी पर वह सो नही पाई थी। आसपास कोई प्रतिवेशी नही थे, उस निजन परिवेश मे कोई उसका गला घोंटकर बडी आसानी से उसकी मृतदेह खिडकी से बहती गोमती मे बहा सकता था, मीरा कई बार उसे किसी छात्रा या अध्यापिका को पेइगगेस्ट बना साथ रखने का सुझाव दे चुकी थी, किन्तु सुरगमा अपने एकान्त मे किसी प्रकार का व्याघात नही चाहती थी। उसके गृह का सुदृढ दुर्ग सा ढाचा ही उसका सबसे सशक्त आयुध था। लगता था चारो ओर ऊबड-खाबड चट्टानो से घिरा वह मकान किसी बुन्देलखण्डी दुर्ग का नक्शा लेकर ही बनवाया गया है। द्वारों पर भी वैसे ही मोटे-मोटे पीतल के कब्जे-कुण्डे जडे थे, उन्हे कोई तोडना भी चाहता, तो शायद भीम की गदा के बिना नही तोड सकता था। किन्तु जिस दिन से उसकी वह रहस्यमयी कुण्डी खटकी थी, उस दिन से उसका साहस स्वय ही हिल गया था पत्ता भी फडकता तो वह उठ बैठती। एक दिन ऐसी ही निद्राहीन विभावरी मे उसे वैरोनिका की स्मृति ने घेर लिया। उस कुछ-कुछ या, रह गए लाल बगले को तो वह अब भी ढूढ सकती थी, क्या पता वह विजातीय महिला, जिसने कभी उसे जननी के गर्भ से ही अपना उदार स्नेहपूर्ण सरक्षण दिया था, आज भी जीवित हो! यदि मिल गई तो फिर वह उसके पैरों पर सर रखकर अपने साथ ले आएगी। इस भयावह बगले का एकान्त फिर उतना भयावह नहीं रह जाएगा। दूसरे दिन बैंक से लौटते ही वह उस लाल बगले की खोज म निकल गई थी। उसे आज भी याद था कि वह बगला चारों ओर से ब्यूगनवोलिया के कागजी फूलो से घिरा था, सामने एक लौण्ड्री थी और उसीके पास एक हैण्ड-पम्प था। उसकी सबसे बडी पहचान थी, सम्मुख खडी एक लखौरी इटों की जीर्ण चौमजिली खडहर-सी हवेली जिसकी चारो मजिलो मे कितने ही दरिद्र परिवार अपनी फटी गुदडिया सुखाते रहते और उनकी कबूतरो की-सी गुटरगू सडक तक गूजती थी। बडी देर तक भटकने पर उसने जब वह बगला ढूढा तब अधेरा घिर आया था। खडहर हवेली अब भी थी किन्तु अब उसकी चारों मजिलों का अदर्धांग टूटी ईंटों मे नीचे बिखरा पडा था। दो-तीन नई चमचमाती दुकानों को देख पहले वह उस बगले को पहचान नही सकी थी फिर उस

गल्स, देखो कौन आई है। सिस्टर म्यूरी का पता पूछने। देखिए मैडम, मैं बताऊं निशातगंज वाली सिमिट्री देखी है आपने ?"

"ओह शट अप माइक !" दूसरा सौम्य युवक अब उसे भीतर धकेल द्वार बन्द कर पीठ अड़ाकर खड़ा हो गया, जैसे उसे भय हो रहा था—भीतर की नशे में चूर भीड़ बाहर आकर कुछ अभद्रता न कर बैठे। सिस्टर म्यूरी का मृत्यु को तो बारह साल हो गए हैं। आप शायद कहीं बाहर से आई हैं ? इस बंगले में अब मेजर डौम रहते हैं। मैं उनका छोटा भाई हूं। आज यहां कौकलेट पार्टी है। मैं आपको भीतर आने के लिए कहता पर " वह फिर चुप हो गया।

सुरंगमा के चेहरे से वह जैसे आंखें नहीं हटा पा रहा था।

"धन्यवाद", मैं इतना ही पूछने आई थी, और उनके एक भाई थे रौबर्ट म्यूरी। उनका पता बता सकेंगे क्या ?"

"हां हां, ब्रदर म्यूरी, गोआ इतना ही भी लिख दें, तब भी चिट्ठी पहुंच जाएगी पर आप—क्षमा करें—आपको मैंने नहीं पहचाना सिस्टर म्यूरी मेरी मां की फर्स्ट कज़न थीं।"

'आप मुझे नहीं पहचानेंगे। मेरा नाम सुरंगमा है, सुरंगमा जोशी। यहां स्टेट बैंक में प्रोबेशन औफीसर हूं" वह हंसी, मोती-से उजले दांतों की उस हंसी को वह मुग्ध होकर देख रहा था कि भीतर से फिर वही नशे में लटपटा उद्दण्ड स्वर आया—'हे बास्टर्ड, आर यू मेकिंग लव ?"

युवक का चेहरा लाल हो गया। उस अशिष्ट गूंज को सुनकर भी अनसुनी कर सुरंगमा उसे धन्यवाद दे तेजी से चली गई।

बाहर आई तो उसे लगा, जूतों की वही चरमराती पदध्वनि उसका पीछा कर रही है। एक प्रकार से दौड़ ही लगाती वह टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से निकल इस प्रशस्त पथ पर हांफ रही थी कि अचानक से एक कार आकर उसके सामने रुक गई। हे भगवान, तब क्या वह मदमत्त शराबियों की टोली उसे कार लेकर खींचने आ गई थी।

'सुरंगमा, इतनी रात को यहां क्या कर रही हो ?" उसने चौंककर गर्दन उठाई, चण्डा लगी कार का द्वार खोल दिनकर ने आश्चर्य से उसके फक पड़ गए चेहरे को देखा—' आओ बैठो—मैं छोड़ दूंगा, अकेले कैसे जाओगी ?"

"जी, मैं रिक्शा कर लूंगी।"

गल्स, देखो कौन आई है। सिस्टर म्यूरी का पता पूछने। देखिए मैडम, मैं बताऊ निशातगज वाली सिमिट्री देखी है आपने ?"

"ओह शट अप माइक !" दूसरा सौम्य युवक अब उसे भीतर धकेल द्वार बन्द कर पीठ अडाकर खडा हो गया, जसे उसे भय हो रहा था—भीतर की नशे म चूर भीड बाहर आकर कुछ अभद्रता न कर बैठे। सिस्टर म्यूरी का मृत्यु को तो बारह साल हो गए है। आप शायद कही बाहर से आई है ? इस बगले म अब मेजर डीम रहने है। मैं उनका छोटा भाई हू। आज यहा कौकलेट पार्टी है। मैं आपको भीतर आने के लिए कहता पर " वह फिर चुप हो गया।

सुरगमा के चेहरे से वह जसे आखें नही हटा पा रहा था।

"धयवाद, मैं इतना ही पूछने आई थी, और उनके एक भाई थ रोबट म्यूरी। उनका पता बता सकेंगे क्या ?"

"हा हा, बदर म्यूरी, गोआ इतना ही भी लिख दें, तब भी चिट्ठी पहुच जाएगी पर आप—क्षमा करें—आपको मैंने नहीं पहचाना सिस्टर म्यूरी मेरी मा की फस्ट कजन थी।"

'आप मुझे नही पहचानेंगे। मेरा नाम सुरगमा है, सुरगमा जोशी। यहा स्टेट बक म प्रोबेशन ऑफीसर हू" वह हसी, मोती-से उजले दातो की उस हसी को वह मुग्ध होकर देख रहा था कि भीतर से फिर वही नशे मे लटपटा उद्दण्ड स्वर आया—'ह बास्टड, आर यू मेकिंग लव ?"

युवक का चेहरा लाल हो गया। उस अशिष्ट गूज को सुनकर भी अनसुनी कर सुरगमा उसे धयवाद दे तजी से चली गई।

बाहर आई तो उस लगा, जूता की वही चरमराती पदध्वनि उसका पीछा कर रही है। एक प्रकार से दौड ही लगाती वह टेढी-मेढी गलियों से निकल इस प्रशस्त पथ पर हाफ रही थी कि खचाक् स एक कार आकर उसके सामने रुक गई। हे भगवान, तब क्या वह मदमत्त शराबियो की टोली उसे कार लेकर खीचने आ गई थी।

'सुरगमा, इतनी रात को यहा क्या कर रही हो ?" उसने चौंककर गदन उठाई, झण्डा लगी कार का द्वार खोल दिनकर ने आश्चर्य से उसके फक पड गए चेहरे को देखा—'आओ बैठो—मैं छोड दूगा, अकेले कैसे जाओगी ?"

"जी, मैं रिक्शा कर लूगी।"

ठीक करवा देंगे ” सुरगमा हाथ जोडकर चली गई, दिनकर चलती गाडी से सर झुकाए चली आ रही उन साहमी लडकी की पीठ को तब तक देखता रहा जब तक कार तेजी से आगे नहीं निकल गई।

मा की किस मित्र से मिलने गई थी वह ? जब वह सडक पर खडी विभ्रान्त दृष्टि से इधर-उधर देख रही थी, तब ही दूर से दिनकर ने उसे पहचान लिया था। खडी होने की वह भुवनमोहिनी मुद्रा और किसीकी हो ही नहीं सकती थी। रायबरेली के दौरे से वह थककर चूर होकर लौटा था सोच रहा था घर जाते ही सो जाएगा, और दूसरे दिन भी देर तक सोता रहेगा। पर नींद नहीं आई, जितनी ही बार क्लान्त आखें मूदता वीरान सडक पर खडी उस दुबली-पतली लम्बी लडकी का सफेद चेहरा उसकी पलकों पर उतार आता। कितनी देर वह ठण्डी हथेली उसकी मुट्ठी में बन्द रही थी और एक पल को भी उसने अपना हाथ छुडाने की दुर्बल चेष्टा भी नहीं की।

सुरगमा को उस दिन तकिये पर सर रखते ही गहरी नींद आ गई थी। ऐसी नींद उसे महीनों से नहीं आई थी। एक तो लालबा के उस बगले को ढूढने में इधर-उधर भटक वह बेहद थक गई थी, उसपर पिछली दो रातों से वह ठीक से सो नहीं पाई थी। आधी रात को न जाने कैसे उसका हाथ लग सिरहाने धरा पानी का गिलास टल से नीचे गिरा और वह चौंककर जग गई। उसे लगा, किसीने द्वार खटखटाया। क्या उसके कान बज रहे थे या सचमुच ही कोई द्वार खटखटा रहा था ? इस बार किसीने कुछ जोर से ही कुण्डी खटखटाई। रात को उस बगले के शराबी का फौजी चेहरा उसकी अधजगी आखों में तैर गया। उस सौम्य युवक को वह अपना नाम पता भी तो बता आई थी। द्वार की कुण्डी अब बडे अधैर्य से खडखडाने लगी थी—"कौन ?" इस बार सुरगमा ने बडे साहस से पूछा।

"सुरगमा, द्वार खोलो।"

इस आवाज को वह सैकडों गलों से निकली आवाज के बीच भी पहचान सकती थी पर इतनी रात को उसका रहा ? [illegible] घडी देखी, रात के ठीक ढाई बजे थे। "सुरगमा, पहचाना नहीं मैं दिनकर हू।" [illegible]कर वह उठ गई। जिस चादर को ओढकर सोई थी उसीसे [illegible] अपना [illegible]हीन [illegible]इटा को ढापा और द्वार खोल दिया। चार चार चिटखनियों-साकल खोलने में उसे कुछ समय लगा। जब द्वार खुला तब आने वाले ने पलक [illegible] ही चारों [illegible]खनियां चढा दीं, और बन्द

जब तक कार तेजी से आगे नहीं निकल गई।

मा की किस मित्र से मिलने गई थी वह? जब वह सडक पर खडी विभ्रान्त दृष्टि से इधर-उधर देख रही थी, तब ही दूर से दिनकर ने उसे पहचान लिया था। खडी होने की वह भुवनमोहिनी मुद्रा और किसीकी हो ही नहीं सकती थी। रायबरेली के दौरे से वह थककर चूर होकर लौटा था सोच रहा था घर जाते ही सो जाएगा, और दूसरे दिन भी देर तक सोता रहेगा। पर नीद नही आई, जितनी ही बार क्लान्त आखें मूदता वीरान सडक पर खडी उस दुबली-पतली लम्बी लडकी का सफेद चेहरा उसकी पलको पर उतार आता। कितनी देर वह ठण्डी हथेली उसकी मुट्ठी में बन्द रही थी और एक पल को भी उसने अपना हाथ छुडाने की दुर्बल चेष्टा भी नही की।

सुरगमा को उस दिन तकिये पर सर रखते ही गहरी नीद आ गई थी। ऐसी नीद उसे महीनो से नही आई थी। एक तो लालबाग के उस बगले को ढूढने मे इधर-उधर भटक वह बेहद थक गई थी, उसपर पिछली दो रातो से वह ठीक से सो नहा पाई थी। आधी रात को न जाने कैसे उसका हाथ लग सिरहाने धरा पानी का गिलास टन्न से नीचे गिरा और वह चौंककर जग गई। उसे लगा, किसी-ने द्वार खटखटाया। क्या उसके कान बज रहे थे या सचमुच ही कोई द्वार खटखटा रहा था? इस बार किसीने कुछ जोर से ही कुण्डी खटखटाई। रात को उस बगले के शराबी का फौजी चेहरा उसकी अधजगी आखो मे तैर गया। उस सौम्य युवक को वह अपना नाम पता भी तो बता आई थी। द्वार की कुण्डी अब बडे अधैर्य से खडखडाने लगी थी—"कौन?" इस बार सुरगमा ने बडे साहस से पूछा।

"सुरगमा, द्वार खोलो!"

इस आवाज को वह सैकडो गलो से निकली आवाज के बीच भी पहचान सकती थी पर इतनी रात को उसके यहा? उसने घडी देखी, रात के ठीक ढाई बजे थे। "सुरगमा, पहचाना नहीं मैं दिनकर हू।" [illegible]कर वह उठ गई। जिस चादर को ओढकर सोई थी उसीसे [illegible] अपनी वाहहीन [illegible]ष्टा को ढापा और द्वार खोल दिया। चार चार चिटखनियो-साकल खोलने मे उसे कुछ समय लगा। जब द्वार खुला तब आने वाले ने पलक [illegible] ही चारो [illegible] खनिया चढा दी, और बन्द

रहो। कभी कोई नही जान पाएगा कि मैं यहा आया था। दिनकर ऐसा मूर्ख नही है। पर सच कहो,सुरगमा, क्या तुम्हे मेरा यहा आना अच्छा नही लगा? अपने इस एकान्त म, एक हितैषी मित्र के रूप मे मुझे कभी-कभी स्वीकार करोगी? मेरी ओर देखो "

सुरगमा की छलछलाई आखो म वह चेहरा उस क्षण कितना करुण होकर प्रतिबिम्बित हुवा था! कितना उदास!

तुम नही जानती सुरगमा कण्ठ मे दिन रात शत-शत पुष्पहारो को धारण करने वाला प्रदेश का यह महिमामय मन्त्री कितना अकेला है, कितना अभागा। कभी-कभी लगता है—पत्नी पुत्री दुष्ट मित्र, सब मेरे मन्त्रीपद के इर्दगिर्द मंडराते नक्षत्रगण मात्र हैं। मैं अपने इन्हीं उदास रिक्त क्षणो को कभी कभी तुम्हारे साथ बिताना चाहता हू।"

आप क्या चाहते हैं मैं आपकी मिस्ट्रेस बनकर रहू?" सुरगमा छिटककर दूर हट गई, क्रोध से उसके पतले नथुने फडक रहे थे।

दिनकर जोर स हसा। क्यों, उसमे क्या दोष है? किसकी मिस्ट्रेस नही थी? कभी-कभी राजनीति के गरिष्ठ भोजन के बाद ऐसा पाचक भी अनिवार्य हो उठता है। रूज़वेल्ट नेपोलियन और कहो तो अपने देश की विभूतियो के नाम भी गिनवा दू?'

आपने मुझे समझा क्या है!' जवान चीते की-सी छलाग लगाकर सुरगमा ने द्वार खोल दिया—'जाइए आप इसी क्षण बाहर निकल जाइए!"

दिनकर को प्रेयसी की वह मुद्रा और मोह गई। अब वह बडी धृष्टता स हसकर कहने लगा। अच्छा जाता हू पर मिस जोशी, ज़रा अपना कघा दगी क्या? य बिखरे बाल तो सवार लू, कोई देखेगा तो सोचेगा आपने झोटा पकडकर बाहर निकाला है!" फिर बडे अधिकार से सुरगमा का तकिया खीच उसने हाथ के नीचे दाब लिया और अधलेटी मुद्रा म ही सिगरेट जलाने लगा। सुरगमा ने अब उसकी ओर पीठ फेर ली थी। बीच बीच मे विवश दबी सिसकी मे उठती गिरती उसकी पीठ देखकर दिनकर समझ गया, वह रो रही है।

सिगरेट का कश खीचता दिनकर धीरे धीरे उसीकी ओर आ रहा है यह वह जान नही पाई। अचानक उसके द नो कधे थाम दिनकर ने उसको अपनी ओर मोड लिया और एक ऊर्ध्वमुखी फूक का सचित धुआ उसके चेहरे पर फैला

रहो। कभी कोई नही जान पाएगा कि मैं यहा आया था। दिनकर ऐसा मूढ नही है। पर सच कहो, सुरगमा, क्या तुम्हे मेरा यहा आना अच्छा नही लगा? अपने इस एकान्त म, एक हितैषी मित्र के रूप मे मुझे कभी-कभी स्वीकार करोगी? मेरी ओर देखो"

सुरगमा की छलछलाई आखो म वह चेहरा उस क्षण कितना करुण होकर प्रतिबिम्बित हुआ था! कितना उदास!

तुम नही जानती सुरगमा कण्ठ मे दिन रात शत-शत पुष्पहारो का धारण करने वाला प्रदेश का यह महिमामय मन्त्री कितना अकेला है, कितना अभागा। कभी-कभी लगता है—पत्नी पुत्री इष्ट मित्र, सब मेरे मन्त्रीपद के इदगिद मडराते नक्षत्रगण मात्र हैं। मैं अपने इन्हीं उदास रिक्त क्षणो को कभी कभी तुम्हारे साथ बिताना चाहता हू।"

आप क्या चाहते हैं मैं आपकी मिस्ट्रेस बनकर रहू?" सुरगमा छिटककर दूर हट गई, क्रोध से उसके पतले नथुने फडक रहे थे।

दिनकर जोर स हसा। क्यों, उसमे क्या दोष है? किसकी मिस्ट्रेस नही थी? कभी-कभी राजनीति के गरिष्ठ भोजन के बाद ऐसा पाचक भी अनिवाय हो उठता है। रूजवेल्ट नेपोलियन और कहो तो अपने देश की विभूतियो के नाम भी गिनवा दू?'

आपने मुझे समझा क्या है!' जवान चीते की-सी छलाग लगाकर सुरगमा ने द्वार खोल दिया—'जाइए आप इसी क्षण बाहर निकल जाइए!"

दिनकर को प्रेयसी की वह मुद्रा और मोह गई। तब वह बडी धृष्टता स हसकर कहने लगा। अच्छा जाता हू पर मिस जोशी, जरा अपना कघा दगी क्या? ये बिखरे बाल तो सवार लू, कोई देखेगा तो सोचेगा आपने झोटा पकडकर बाहर निकाला है!" फिर बडे अधिकार से सुरगमा का तकिया खीच उसने हाथ के नीचे दाब लिया और अधलेटी मुद्रा म ही सिगरेट जलाने लगा। सुरगमा ने अब उसकी ओर पीठ फेर ली थी। बीच बीच मे विवश दबी सिसकी मे उठती गिरती उसकी पीठ देखकर दिनकर समझ गया, वह रो रही है।

सिगरेट का कश खीचता दिनकर धीरे धीरे उसीकी ओर आ रहा है यह वह जान नही पाई। अचानक उसके दोनो कधे थाम दिनकर ने उसको अपनी ओर मोड लिया और एक ऊर्ध्वमुखी फूक का सचित धुआ उसके चेहरे पर फेंका

यह।"

फिर आपने मुझे मिस्ट्रेस कहा।" वह तुनककर अपने को उस सशक्त बाहु-पाश से छुड़ाने लगती।

"तब क्या हेडमिस्ट्रेस कहूं जी?"

और वह फिक से हंस पड़ती।

कभी-कभी उसका वह साकी प्रेमी ज़िद कर उसे दुल्हन-सा सजा देता। जितनी ही बार वह आता, उसके लिए एक न एक दामी उपहार अवश्य लाता। न जान कितने मखमली डिब्बों से उसका सूटकेस भर गया था। सुरगमा कई बार उसे टोक चुकी थी "देखिए, अब आप कुछ लाए तो मैं उठाकर इसी खिड़की से बाहर फेंक दूंगी।"

"अच्छा ठीक है मैं भी देख लूंगा कैसे फेंकती हो—अगली बार आकर कहूंगा सुरगमा, यह है मेरा अन्तिम उपहार—स्वयं अपने को आज उपहार बनाकर लाया हूं। अब बोलो फेंक पाओगी मुझे?"

इसके बाद वह लगातार पूरा महीना बाहर रहा था। उस अवधि में सुरगमा को पहली बार लगा, वह अपने शतमुखी विनिपात के भवरजाल में गले तक डूब गई है और नियति उसे निरन्तर गहराई में खींचती चली जा रही है। मां के जीवन की मूकता ने भी शायद उसे इतना असहाय नहीं बनाया होगा। दिनकर के लौटने का समाचार वह अखबार में दो दिन पूर्व ही पढ़ चुकी थी, पर वह उसके पास क्यों नहीं आया? क्या उसने अपने क्षणिक आकर्षण की मरीचिका को पहचान लिया था या विनीताजी लौट आई थीं? फिर भी वह प्रत्येक रात्रि को उसकी प्रतीक्षा में व्यर्थ जागती रहती। आते ही वह गर्म काफी पीता था उसके एक जोड़ी धुले कपड़े अपने हाथों से इस्त्री कर सुरगमा अपनी साड़ियों के साथ सहेजकर रखती थी। हाथ-मुंह धोकर वह कपड़े बदलता। तख्त पर उसका प्याला धरा रहता। दोहरे तकियों की ऊंची ढलान पर लेटना ही उसे पसन्द था। उसकी प्रिय अगरबत्ती का धुआं भी आधी-आधी रात तक कमरे में व्यर्थ मंडराता रहता। फिर हारकर, बत्ती बुझाकर वह सो जाती। पांचवें दिन जब सुरगमा उसके आने की आशा छोड़ चुकी थी तब ही तीन बजे कुण्डी फिर खड़की। द्वार की दरार से झांककर उसने देखा और फुसफुसाकर पूछा, "कौन?"

"खोलो सुरगमा, मैं हूं दिनकर।"

फिर आपने मुझे मिस्ट्रेस कहा।" वह तुनककर अपने को उस सश
पाश से छुड़ाने लगती।

"तब क्या हेडमिस्ट्रेस कहूं जी?"

और वह फिक से हंस पड़ती।

कभी-कभी उसका वह साकी प्रेमी ज़िद कर उसे दुल्हन-सा सजा
जितनी ही बार वह आता, उसके लिए एक न एक दामी उपहार अवश्य लाता
जान कितने मखमली डिब्बों से उसका सूटकेस भर गया था। सुरगमा कई
उसे टोक चुकी थी "देखिए, अब आप कुछ लाए तो मैं उठाकर इसी खिड़की
बाहर फेंक दूंगी।"

"अच्छा ठीक है मैं भी देख लूंगा कैसे फेंकती हो—अगली बार आकर कहूं
सुरगमा, यह है मेरा अन्तिम उपहार—स्वयं अपने को आज उपहार बनाकर लाय
हूं। तब बोलो फेंक पाओगी मुझे?"

इसके बाद वह लगातार पूरा महीना बाहर रहा था। उस अवधि में सुरगमा
को पहली बार लगा, वह अपने शतमुखी विनिपात के भवरजाल में गले तक डूब
गई है और नियति उसे निरन्तर गहराई में खींचती चली जा रही है। मां के
जीवन की मूकता ने भी शायद उसे इतना असहाय नहीं बनाया होगा। दिनकर के
टने का समाचार वह अखबार में दो दिन पूर्व ही पढ़ चुकी थी, पर वह उसके
...ं क्यों नहीं आया? क्या उसने अपने क्षणिक आकर्षण की मरीचिका को
पहचान लिया था या विनीताजी लौट आई थी? फिर भी वह प्रत्येक रात्रि को
उसकी प्रतीक्षा में व्यग्र जागती रहती। आते ही वह गर्म काफी पीता था उसके
एक जोड़ी धुले कपड़े अपने हाथों से इस्त्री कर सुरगमा अपनी साड़ियों के साथ
सहेजकर रखती थी। हाथ-मुंह धोकर वह कपड़े बदलता। तख्त पर उसका प्याला
धरा रहता। दोहरे तकियों की ऊंची ढलान पर लेटना ही उसे पसन्द था। उसकी
प्रिय अगरबत्ती का धुआं भी आधी-आधी रात तक कमरे में व्यग्र मंडराता रहता।
फिर हारकर, बत्ती बुझाकर वह सो जाती। पांचवें दिन जब सुरगमा उसके आने
की आशा छोड़ चुकी थी तब ही तीन बजे कुण्डी फिर खड़की। द्वार की दरार से
झांककर उसने देखा और फुसफुसाकर पूछा, "कौन?"

"खोलो सुरगमा, मैं हूं दिनकर।"

दिनकर के जाने के बाद, सुरगमा को लगा कि उसने दृढ़ता से काम नही लिया तो वह अपने उस अविवेकी अधीर प्रेमी को कभी यहा आने से नही रोक पाएगी। उसे स्वय ही अब अपने उस प्रिय एकान्त परिवेश का त्याग कर अन्यत्र जाना होगा। जिस मुहल्ले मे वह पहले रहती थी, वहा उसके उदार मकान मालिक उसके मुह खोलते ही उसके लिए एक कमरा खोल देंगे और एक बार वहा पहुचने पर फिर दिनकर कितना ही दुसाहसी क्यो न हो, उस जनसकुल गली मे उसके लिए आ पाना असम्भव हो उठेगा। कुछ ही दिनो की तो बात थी फिर तो विनीताजी स्पष्ट चेतावनी दे ही गई थी उसे उठाकर वह कही दूर पटक देंगी। दिनकर चार-पाच दिन तो बाहर रहेगा ही, इस बीच ही उसे प्रेमी की अनुपस्थिति का लाभ उठा बोरिया बिस्तर बाधना होगा। सन्ध्या को बैंक से लौटते ही, वह अपने पुराने मकान मालिक के यहा जाने को तैयार होकर बाहर निकल ही रही थी कि सडक पर खडी परिचित कार को देखकर देहरी पर ही [illegible] गई। द्वार खोलकर विनीताजी उतरी दूर से ही क्रमश निकट आ रही उस तेजस्वी रौद्र मूर्ति को देखकर सुरगमा का हृदय किसी अनजान आशका से सहम गया। आज अकेले ही इस असमय वह उससे मिलने कैसे चली आ रही थी। विनीताजी निकट आइ तो उसने अपनी स्वाभाविक सरल मुस्कान से उनकी अभ्यर्थना की, 'आइए मिनी नही आई क्या ?"

'नही !" सक्षिप्त उत्तर के साथ ही वह स्वय कुर्सी खीचकर बैठ गइ।

सुरगमा को अब अपने ही कमरे मे पैर रखने म ऐसा भय हो रहा था जैसे फर्श पर दहकते अगारे बिछे हो। क्यो आई थी वह ? तब क्या उन्होने कुछ सुन लिया था ? कभी कसी मूर्खता कर बैठता था दिनकर !

सुरगमा तुम ऐसी नीचता पर उतर आओगी इसकी मुझे उम्मीद नही थी।" तेज चलने से उनकी विराट छातिया तराजू के पलडो सी उठ-गिर रही थी स्वर मे दबे रुदन का स्पष्ट आभास था।

सुरगमा के खडे होने की निर्भीक मुद्रा उन्हे फिर बौखला गई। वस तनकर खडी उन्हे देख रही थी, बेहया छोकरी जैसे कुछ किया ही न हो।

तुम्हे शर्म नही आई ?" इस बार उनके खीझे स्वर की कर्णकटु चीख कानो को पल्ताने लगी जो कुलटा किसीकी बसी बसाई सुखी गृहस्थी उजाडती है, उसे विधाता भी क्षमा नही करता। पर मैंने कभी सोचा भी नही था, कभी सोचा भी

दिनकर के जाने के बाद, सुरगमा को लगा कि उसने दृढ़ता से काम नही लिया तो वह अपने उस अविवेकी अधीर प्रेमी को कभी यहा आने से नही रोक पाएगी। उसे स्वय ही अब अपने उस प्रिय एकान्त परिवेश का त्याग कर ज यत्र जाना होगा। जिस मुहल्ले मे वह पहले रहती थी, वहा उसके दार मकान मालिक उसके मुह खोलते ही उसके लिए एक कमरा खोल देंगे और एक बार वहा पहुचने पर फिर दिनकर कितना ही दु साहसी क्यो न हो, उस जातसकुल गली मे उसके लिए आ पाना असम्भव हो उठेगा। कुछ ही दिनो की तो बात थी फिर तो विनीताजी स्पष्ट चेतावनी दे ही गई थी उसे उठाकर वह कही दूर पटक देंगी। दिनकर चार-पाच दिन तो बाहर रहेगा ही, इस बीच ही उसे प्रेमी की अनुपस्थिति का लाभ उठा बोरिया बिस्तर बाधना होगा। सन्ध्या को बैंक से लौटते ही, वह अपने पुराने मकान मालिक के यहा जाने को तैयार होकर बाहर निकल ही रही थी कि सडक पर खडी परिचित कार को देखकर देहरी पर ही ठिठक गई। द्वार खोलकर विनीताजी उतरी दूर से ही क्रमश निकट आ रही उस तेजस्वी रौद्र मूर्ति को देखकर सुरगमा का हृदय किसी अनजान आशका से सहम गया। आज अकेले ही इस असमय वह उससे मिलने कैसे चली आ रही थी। विनीताजी निकट आइ तो उसने अपनी स्वाभाविक सरल मुस्कान से उनकी अभ्यर्थना की, 'आइए मिनी नही आई क्या ?"

'नही !" सक्षिप्त उत्तर के साथ ही वह स्वय कुर्सी खीचकर बैठ गई।

सुरगमा को अब अपने ही कमरे मे पैर रखने मे ऐसा भय हो रहा था जैसे फर्श पर दहकते अगारे बिछे हो। क्यो आई थी वह ? तब क्या उन्होने कुछ सुन लिया था ? कभी कसी मूर्खता कर बैठता था दिनकर !

सुरगमा तुम ऐसी नीचता पर उतर आओगी इसकी मुझे उम्मीद नही थी।" तेज चलने से उनकी विराट छातिया तराजू के पलडो सी उठ-गिर रही थी स्वर मे दबे रुदन का स्पष्ट आभास था।

सुरगमा के खडे होने की निर्भीक मुद्रा उन्हे फिर बौखला गई। तन तनकर खडी उन्हे देख रही थी, बेहया छोकरी जसे कुछ किया ही न हो।

तुम्हे शर्म नही आई ?" इस बार उनके खीझे स्वर की कणकटु चीख कानो को पत्थाने लगी जो कुलटा किसी की बसी बसाई सुखी गृहस्थी उजाडती है, उसे विधाता भी क्षमा नही करता। पर मैंने कभी सोचा भी नही था, कभी सोचा भी

पीस लिए।

मैं यहां आए बिना भी तुम्हें तुम्हारे इस अक्षम्य अपराध का उचित दण्ड दे सकती थी। जिस चेहरे पर तुम्हें इतना गुमान है, जिस मासूम मान मुखड़े के चुम्बक से तुमने मेरे लौहपुरुष को खींचा है, उसे मैं तेजाब डलवाकर किसी कुष्ट रोगिणी के चेहरे-सा ही विकृत बना सकती थी। अपनी जिस यौवन-मदिरा दर का तुम्हें इतना गर्व है, उसे मैं एकसाथ बोतियों गुण्डों से नुचवाकर इसी मानिनी के गर्भ में सदा-सदा के लिए विलीन कर सकती थी। पर ऐसा कर भी देती तो शायद दिनकर मुखर जीवन भर प्रतिशोध लिप्त रहता।" फिर एक दम चुप रहकर वह अब उसे सुरमा की उपस्थिति भी भूलकर स्वगत बड़बड़ाने लगी ' वह खूब तुम्हें प्यार नहीं करता तो क्या अपनी राजनीतिक मर्यादा का भी एक दिन विसर जाता ? मैं अब उसे पलकों में मूंदकर रखूंगी। बाहर भीतर निरन्तर उसके छायाग्रास को भी निगलती रहूंगी।" एकाएक अपनी दृढ़ भावना के साथ वह उछलकर खड़ी हो गई और अपना तमतमाता चेहरा सुरमा के इतने निकट ले आई कि वह सहम कर पीछे हट गई। विनीतावती के उस एकदम ही मदान्ध हो रहे चेहरे की रगें फूल गई थीं, दांत भुट्टियां बांध वह फिर दांत पीसकर कहने लगी, "समय लिया है ना ?' उनकी दोनों आंखों से प्रतिशोध की ज्वलन्त चिनगारियां फूट रही थीं, क्रोध के वाष्प ने चश्मे का भीतरी लेंस धुंधला कर दिया उसे उतार आंचल से पोंछती वह फिर बड़बड़ाने लगी ' मैंने तुम्हारा पता भी लगा कर दिया है सात आठ दिन में ही यहां से तुम्हारा तबादला हो जायगा और तब तक तुम्हारे एक-एक कदम का हिसाब मेरे वहीं बैठे मिलता रहेगा।

हाथ का बटुआ सम्भाल उन्होंने जाने का पैर बढ़ाया ही था कि सुरमा के स्वर की दृढ़ता उन्हें चौंका गई, "रुकिए, आप अभी नहीं जा सकतीं।" विनीता जी का साहसी हृदय भी एक पल को धड़क उठा। क्या कह रही थी यह छोकरी ! क्या कहीं से छिपा रिवाल्वर निकालकर सीने के पास पर धर देगी ? उन्होंने भी तो कभी मूर्खता की थी, सकती हो पकड़ लाए, पर लाज न रखता था किसे ? अपनी लज्जा, अपने दुर्भाग्य का यह भवन ही एक मात्र रक्षा चाहती थी। उन्हें रुकने का दुःसाहस आदेश देकर सुरमा भीतर गई तो उन्होंने लपककर बत्ता जला दी और तेजी से बाहर निकल पड़ीं। दूर खड़ी कार को देख उन्हें कुछ तसल्ली हुई। कमरे की घुटन और तनाव के बाद बाहर की बयार ने उन्हें

प्रथम अनाडी चुम्बन, अधकचरे बाहुपाश का बेढगा ढीलापन, जिसे उसन कभी स्वय ही एक एव पेच कसकर अटूट बनाया था रवीन्द्रनाथ की कविता की आवलिया सब उसकी अश्रुमक्ति पलको पर दिवास्वप्न बनकर उतर आई। उन दिनो वह बार बार उसके कानो से अधर सटाकर चिढाता था

'गोपने प्रेम रय ना घरे
आलोर मत छडिए पड़े'

(प्रेम कभी गोपन नही रहता प्रकाश की भाति स्वय इधर-उधर छिटक जाता है।)

कब छिपाओगी अपने समाज से? मुझे स्वीकार करो विनीता"

आज कहा गया वह अनुराग वह प्रेम, वह आसक्ति? उस उत्कट उन्माद के क्षणो म भी उसने क्या कभी एक साडी या एक छल्ला उसे लाकर दिया था? विनीताजी की आखो से अविरल अश्रुधारा बहती जा रही थी। इन भुमको ने सुरगमा के कानो म झूलकर न जाने कितनी बार उसके पति के कपोलो का स्पर्श किया होगा, इन साडियो के आचल न जाने कितनी बार उसके आवारा सहचर के नग्न वक्षस्थल पर लहराए होंगे! रूमाल मुह मे डालकर उसने सिसकी रोक ली। निनी को दिल्ली छोडकर उसने कितनी बुद्धिमत्ता का काम किया था। वह आज यहा होती तो अनर्थ हो जाता। दिनकर दिनकर! तुमने क्यो ऐसा किया? क्यो? कार के खुले शीशे मे आ रहे तेज हवा के झोको के साथ बार-बार विनीताजी का मूक प्रश्न उन्हीकी छाती मे टकरा रहा था। उस प्रश्न का उत्तर अब उन्हे जीवन-भर नही मिल सकता था। हृदय के उस घाव को अब कितनी ही मृत्युञ्जयी चिकित्सा से भर लें उसका निशान अब कभी मिट नही सकता था। पति पत्नी का रिश्ता जब एक के चरित्र की दुर्बलता से टूटता है तब टूटे दर्पण की ही भाति फिर कभी सम्पूर्ण रूप से जुड़ता नही है।

सुरगमा की सारी रात उस दिन खिडकी के पास धरी कुरसी पर ही बठे-बठे कट गई थी। दूसरे दिन बैंक गई तो उसे लगा सब उसे ही घुर-घुरकर 'ख रहे हैं। अखबार उठाकर देखने म भी उसे न जाने कैसा भय हो रहा था। विनीताजी उसे बदली की धमकी दे गई थी, किन्तु इस अपमान म वह स्वय ही छुटकारा पाने का निश्चय ले चुकी थी।

प्रथम अनाडी चुम्बन, अधकचरे बाहुपाश का बेढगा ढीलापन, जिसे उसने कभी स्वय ही एक एक पेच कसकर अटूट बनाया था रवीन्द्रनाथ की कविता की आवत्तिया सब उसकी अश्रुसिक्त पलको पर दिवास्वप्न बनकर उतर आई। उन दिनो वह बार बार उसके कानो से अधर सटाकर चिढाता था

' गोपने प्रेम रय ना घरे
आलोर मत छडिए पडे '

(प्रेम कभी गोपन नही रहता प्रकाश की भाति स्वय इधर-उधर छिटक जाता है।)

"कब छिपाओगी अपने समाज से ? मुझे स्वीकार करो विनीता "

आज कहा गया वह अनुराध वह प्रेम, वह आसक्ति ? उस उत्कट उन्माद के क्षणो म भी उसने क्या कभी एक साडी या एक छल्ला उसे लाकर दिया था ? विनीताजी की आखो से अविरल अश्रुधारा बहती जा रही थी। इन भुमको ने सुरगमा के कानो म झूलकर न जाने कितनी बार उसके पति के कपोलो का स्पर्श किया होगा, इन साडियो के आचल न जाने कितनी बार उसके जावर-सहचर के नग्न वक्षस्थल पर लहराए होंगे ! रूमाल मुह म डालकर उसने सिसकी रोक ली। विनी ने दिल्ली छोडकर उसने कितनी बुद्धिमत्ता का काम किया था। वह आज यहा होती तो अनर्थ हो जाता। दिनकर दिनकर ! तुमने क्यो ऐसा किया ? क्यो ? कार के खुले शीशे म आ रही तेज हवा के झोको के साथ बार-बार विनीताजी का मूल प्रश्न उन्हीकी छाती मे टकरा रहा था। उस प्रश्न का उत्तर अब उन्हे जीवन-भर नही मिल सकता था। हृदय के उस घाव को वह कितनी ही मृत्युञ्जयी चिकित्सा से भर लें उसका निशान अब कभी मिट नही सकता था। पति पत्नी का रिश्ता जब एक के चरित्र की दुर्बलता से टूटता है तब टूटे दर्पण की ही भाति फिर कभी सम्पूर्ण रूप से जुडता नही है।

सुरगमा की सारी रात उस दिन खिडकी के पास धरी कुरसी पर ही बैठे-बैठे कट गई थी। दूसरे दिन बैंक गई तो उसे लगा सब उसे ही घुर-घुरकर 'ख रहे हैं। अखबार उठाकर देखने म भी उसे न जाने कैसा भय हो रहा था। विनीताजी उसे बदली की धमकी दे गई थी, किन्तु इस अपमान म वह स्वय ही छुटकारा पाने का निश्चय ले चुकी थी।

वता सग्रह 1981)

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

ता सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वता सग्रह 1981)

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

पता सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003